कबीर साहब.

॥ सत्य ॥

अर्पणपत्रिका ।

सत्याचार्य्य, अतुल्य प्रौढ प्रतापवान, सत्यक-वीर स्वरूप श्री १०८ हजूर पं. उग्रनाम साहवकी सेवामें ।

वंदीछोड ।

आपकीही कृपा कटाक्षसे, आपकेही शुद्ध प्रकाश की ज्योतिके प्रतापसे सत्यधर्मका सत्यराज फिरसे प्रभावशाली होने लगा है ।

आपके इसी प्रतापसे और दयारूपी डोरेसे खिंचा हुआ सेवक पिछले चैत्र मासमें आपकी सेवामें पहुँचकर आपके दर्शनोंसे कृतार्थ हुआथा । उसी आनन्दके स्मरणार्थ और कृतज्ञता प्रकाशके हेतु यह लघु ग्रन्थ छपाकर आपकी सेवामें सम-र्पण करता हूँ ।

अपना लघुसेवक जानकर स्वीकार कीजिये ।

आपका दासानुदास,

मकनजी कुबेर पेन्टर.

सत्यनाम ।

देवनागरी और गुजराती वर्णमाला ।

व्यञ्जन.

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
ક	ખ	ગ	ઘ	ઙ	ચ	છ	જ	ઝ	ઞ
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न
ટ	ઠ	ડ	ઢ	ણ	ત	થ	દ	ધ	ન
प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	श
પ	ફ	બ	ભ	મ	ય	ર	લ	વ	શ
		ष	स	ह	ळ	क्ष	त्र	ज्ञ	
		ષ	સ	હ	ળ	ક્ષ	ત્ર	જ્ઞ	

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ
અ	આ	ઇ	ઈ	ઉ	ઊ	ઋ	ૠ
ऌ	ॡ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
ઌ	ૡ	એ	ઐ	ઓ	ઔ	અં	અઃ

नोट—देवनागरी और गुजरातीकी बाराखड़ी

एक समानही होती हैं। संयुक्त अक्षर भी समानही हैं। देवनागरी अक्षर जाननेवालोंको गुजराती और गुजराती जाननेवालोंको देवनागरी सीखनेमें उपयुक्त वर्णमाला सीख लेना ठीक होगा।

स. कु. पेन्टर.
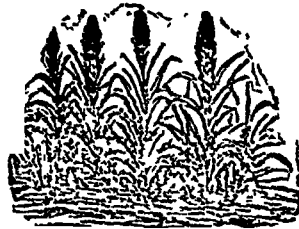
सत्यशब्द टकसार।

श्लोक-अपारे संसारे कथमपि समासाद्य नृभवम्, न धर्मं यः कुर्याद्विषयसुखतृष्णातरलितः। ब्रुडन्पारावारे प्रवरमपहाय प्रवहणं, स मुख्यो मूर्खाणामुपलमुपलब्धुं प्रयतते॥ पद-मोरी मानु कही मूरख गँवार। है मनुष जन्म नहिं बारबार॥ तज काम क्रोध तृष्णा अपार। पद परखि देखु टकसार सार॥ टे०॥ श्लोक-आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं तस्यार्धस्य परस्य चार्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः। शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते, जीवे वारितरङ्गबुद्बुदसमे सौख्यं कुतः प्राणिनाम्॥ पद-दुःखरूप सकल यह है प्रपंच। नहीं तीनि काल सुख जानु रंच॥ ताते तजु यह

सबलखि असार । पद परखि देखु०॥टे०॥१॥ श्लोक-आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं, व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते ॥ दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते, पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ॥ पद-वरणाश्रमको अभिमान धार, नहिं करत आत्माको विचार ॥ यह मूल अविद्याको विकार । पद परखि० ॥ २ ॥ श्लोक-स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिले, दत्तापि सर्वावनिर्यज्ञानां च कृतं सहस्रमखिला देवाश्च संपूजिताः ॥ संसाराच्च समुद्धृताः स्वपितरस्त्रैलोक्यपूज्योप्यसौ, यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात् ॥ पद-यह लोक लाज मरजाद फन्द । तजि कर्म धर्म सब

हो स्वछन्द ॥ एक नित्य अनित्यको करु विचार । पद परखि दे० ॥३ ॥ श्लोक–वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः शुष्कं सरः सारसाः । निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजंति गणिका भ्रष्टं नृपं मंत्रिणः । पुष्पं पर्युषितं त्यजंति मधुपा दग्धं वनान्तं मृगाः, सर्वः कार्यवशाज्जनोऽभिरमते कस्यास्ति को वल्लभः ॥ पद–सुत मात पिता तिरिया अनूप । अति होत सुखी लखि मूढ भूप ॥ ये स्वारथके हैं दिनाचार । पद पर० ॥४॥ श्लोक–यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो, यावच्चेन्द्रियपशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः॥ आत्मश्रेयसि तावदेव महता कार्यः प्रयत्नो महान्, संदीप्ते भवने तु कूपखनने प्रत्युद्यमः कीदृशः॥ पद-जिमि रंग पतंगको नाशमान।

तिमि यौवनको मद झूठ जान ॥ नहिं विगरत लागत तनक वार ॥पद पर०॥५॥

श्लोक-विदलयति कुबोधं बाधयत्यागमार्थम्,सुगतिकुमतिमार्गौ पुण्यपापे व्यनक्ति ॥ अवगमयति कृत्याकृत्यभेदं गुरुर्यो, भवजलनिधिपोतस्तं विना नास्ति कश्चित् ॥ पद-सतगुरु कवीर गुण गण गँभीर। दुख हरण-हेतु धार्‍यो शरीर ॥ निरद्रोह मोह मद निर्विकार। पद परखि देखु टकसारसार ॥ ६ ॥

॥ इति ॥

प्रस्तावना ।

गुरु धर्मदास साहबने सद्गुरु कबीर साहबसे पूछा हे साहेब ! आपका यह आगम ज्ञान जीवोंको कैसे समझमें आवेगा ? उनको कैसे समझाना होगा ? सो आप कहिये । तब सद्गुरु कबीर साहबने कहाथा कि—

सत्य कबीर वचन ।

तब कबीर अस कहयेलीन्हा । ज्ञान भेद सकल कहिदीना ॥ धर्मदास मैं कहौं विचारी । जिहित निहवे सब संसारी ॥ प्रथमे शिष्य होय जो आई । ताकहँ पान देहु तुम भाई ॥ जब देखहु तुम दृढता ज्ञाना । ताकहँ कहहु शब्द प्रमाना ॥ शब्द माँहि जब निश्चय आवे । ताकहँ ज्ञान अगाध सुनावे ॥

यह मति तो हम तुमको दीन्हा । विरला शिष्य कोइ पावे चीन्हा ॥ धर्म्मदास तुम कहो सन्देशा । जो जस जीव ताहि उपदेशा ॥ बालक सम जाकर है ज्ञाना । तासों कहहु वचन प्रमाना ॥

तुम कहँ शब्द दीन्ह टकसारा । सो हसनको कहो पुकारा ॥ शब्द सारका सुमिरन करिहैं । सहजे सत्यलोक निस्तरहैं ॥ सुमिरनका बल ऐसा होई । कर्म काट सब पल महँ खोई ॥

अमरमूल ॥

इसी प्रकारसे सर्व ग्रन्थोंमें सद्गुरुने गुरु धर्म्म दास साहबसे कहाहै । जबतक प्रथम टकसार और सुमिरनमें जीवकी प्रवृत्ति न होगी तब तक गुरु-मतका पाना वैसेही कठिन है जैसे एक बालकका पहाड उठाना ॥

यद्यपि कबीरपंथमें सद्गुरु कबीर साहबकी दया और गुरु धर्म्मदास साहबकी कृपासे ग्रन्थोंकी कमती

नहीं है । धर्मतत्वके सब विषयके ग्रन्थ अनन्त भरे पडे है परन्तु समयके प्रभावसे वे ग्रन्थ ऐसे लुप्त होगये हैं कि, उनसे उनके श्रद्धालुओंको लाभ होना तो अलग रहा—उन्हें उनका दर्शन तक नहीं होता था ! परन्तु धन्य हैं पं० श्रीहजूर साहबको जिनके उग्रप्रकासमें अब सत्य पंथके पुस्तकोंका आविर्भाव होने लगा है । यह पुस्तक भी पं० श्री हजूर साहबकी ही कृपाका फल है । इस पुस्तकमें क्या है ? सो ग्रन्थ देखनेसेही प्रगट हो जावेगा ।

यद्यपि इसग्रन्थके विषय सत्य धर्म्म ग्रन्थोंहीकेहैंतथापि इन सब विषयोंका भिन्न २ ग्रन्थोंसे और स्तोत्रोंको भिन्न२ स्थानोंसे संग्रह करनेमें **श्रीयुगलानन्दजी कबीरपन्थी भारत पथिकने** पूर्णपरिश्रम उठायाहै छपते समय प्रूफ आदिके देखने, विषयोंके क्रम स्थित करने आदिमें अपना बहुत कुछ समय लगायके मुझे सहायता दीहै, इस कारण वे, मेरे तथा इसग्रन्थ

से लाभ उठानेवाले सर्व सज्जनोंद्वारा धन्यवादके पात्र है ।

यदि इन्हींके समान और २ महाशय गणभी मान बडाई और रागद्वेष छोडकर प्रयत्न करेंगे तो स्वधर्म्मोन्नतिमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं रहेगा ।

इसके प्रथम **कबीर स्तुति, कबीर मुक्तसार** संग्रह गुजराती अक्षरोंमें और **कबीरमन्शूर** देवगिरी अक्षरोंमें सद्गुरुकी दयासे प्रगट कर चुका हूँ जिसमेंसे कबीर स्तुति तो धमार्थ वितरण होगई, अब उसकी प्रति शेष नहीं है परन्तु शेप दोनों पुस्तकें मेरे पास मौजूद हैं ।

यद्यपि कबीरपंथकी पुस्तकें सर्व हिन्दी भाषा और देवनागरी अक्षरोंमें है परन्तु आजकल प्राय: देवनागरी और गुजराती दोनों अक्षरोंमें पुस्तकें प्रकाशित होने लगीहै । जिससे जो पुस्तकें गुजराती अक्षरोंमें

छपीहैं उनको केवल देवनागरी अक्षर जानने वाले नहीं वाँच सक्ते औंर जो देवनागरीमें छपीहैं उनको गुजराती वाले नहीं बाँच सक्ते ॥

यद्यपि देवनागरी और गुजराती वर्णमालाकी बाराखडी और संयुक्त अक्षरोंकी बनावट सब एक समानही है तथापि अक्षरके स्वरूपमें थोडासा भेद है इसकारण मैंने विचार कियाहै कि, इस पुस्तकमें— दोनों (गुजराती और देवनानरी) अक्षरोंकी वर्ण-माला दे दूं जिससे हमारे स्वधर्मबन्धुओंको छपीहुई सर्व पुस्तकोंके पाठका लाभ प्राप्त हो ।

मनकजी कुबेर पेन्टर.

अनुक्रमणिका ।

द्वितीयविश्राम ।

तृतीयविश्राम ।

चतुर्थविश्राम ।

पंचमविश्राम।

सप्तमविश्राम ।

अष्टमविश्राम ।

सुमिरनरत्नाकर ।

नवमविश्राम ।

दशमविश्राम ।

स्तुति रत्नाकर ।

सन्ध्यावन्दन स्तुति–

विज्ञान स्तोत्र ।

दयासागर ।

चितावनी ।

प्रभातस्तुति ।

मध्यान्ह दिनकी स्तुति ।

स्तोत्र ।

उग्रनाम स्तुतिपंचक।

एकादशविश्राम।

विनयरत्नाकर।

आरती।

विनय रत्नावली ।

अर्जनामा प्रारम्भः ।

विनय शब्दावली प्रारंभः ।

इति कबीरोपासना पद्धतिकी
अनुक्रमणिका समाप्त ।

सत्य.

सद्गुरुभ्यो नमः ।

श्री कवीर धर्मदासाय नमः ।

सत्य सुकृत, जादिअदली, अजर अचिन्त, पुरुष, मुनिन्द्र, करुणामय, कवीर, सुरति योगसंतान, चर गुरु, धनी धर्म्मदास, वंशव्यालीसकी दया ॥ मुक्तामनि नाम, चूरामणि नाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रमोध गुरुवाला पीर, केवलनाम, अमोल नाम, सुरति स्नेही नाम, हक्कनाम, पाकनाम, प्रगटनाम, धीर्य्यनाम, पंश्री उग्र नाम साहब, पंश्री दया नामसाहब की दया, सर्वसन्त महंतनकी दया ।

मंगलाचरण ।

दोहा ।

सद्गुरु चरण वन्दन करूं,
बन्दूं गुरु धर्मदास ।
उग्र आचार्य्य वन्द हूँ,
सत्य दया विश्वास ॥ १ ॥
गुरु के चरण वन्दन किये,
मंगल सब विधि काज ।
गुरु उपासना वर्ण हूँ,
राखो सद्गुरु लाज ॥ २ ॥

अथ कबीरोपासनापद्धति ।

प्रथम विश्राम ।

अनुबन्ध वर्णन ।

जिसके द्वारा स्वेष्टदेवको अपने हृदयमें धारण करनेकी शक्ति होती है, उसे कहते हैं उपासना; उस उपासनाको प्राप्त करनेका जो मार्ग, उसे कहते हैं उपासनापद्धति । और सद्गुरु कबीरसाह-

बकी भक्ति कीजावे जिस मार्गसे, उसे कहिये "कबीरोपासना पद्धति"

इस ग्रन्थमें सद्गुरु कबीर साहबको प्राप्त होनेके उपासनाके मार्गका वर्णन है । स्वात्माके कल्याणकी कामनावाले सर्व मनुष्योंको सद्गुरुकी प्राप्तिकी आवश्यकता है, इस प्रकारसे सामान्यतः मनुष्यमात्र इस ग्रन्थके अधिकारी है तथापि जो लोग सत्यगुरु कबीरसाहबको अपना इष्टदेव मानते हैं और कबीरपन्थी कहलाते है; कबीरसाहबनिर्मित आचार्य गुरु धर्मदाससाहबके वंशको अपना आचार्य मानते हैं, वे इस ग्रन्थके विशेषरूपसे अधिकारी हैं । इस ग्रन्थद्वारा नित्य नैमित्तिक अवश्य कर्त्तव्यका ज्ञान होकर उसके आचरण करनेसे, क्या फल प्राप्त होता है उन सबका ज्ञान प्राप्त होगा ।

ग्रन्थ और विषयका प्रतिपाद्य प्रतिपादकभाव सम्बन्ध है; अधिकारी और फलका प्राप्य प्रापकभाव

संबन्ध है; अधिकारी और विचारका कर्तृकर्तव्य-भाव संबन्ध है; ग्रन्थका और स्व नित्यनैमित्तिक कर्त्तव्यज्ञानका जन्य जनकभाव संबन्ध है। इसीप्र-कारसे अनेक संबन्ध होसकते हैं।

प्रवेश..

लौकिक पारलौकिक अर्थात् शारीरिक और आत्मिक सर्वप्रकारके सुखोंके प्राप्त करनेका मूल साधन आचार अर्थात् टकसार है।

यद्यपि आत्मिक सत्य सुखकी प्राप्ति पारखसे होती है; तथापि पारख प्राप्त करनेके हेतु सद्गुरुकी विशेष कृपा अपेक्षित है; परन्तु सद्गुरुकी कृपा उसीको मिलती है जिसको सद्गुरुमें अटल श्रद्धा और विश्वास होता है; श्रद्धाभी उसीको प्राप्त होती है जिसको सद्गुरुके चरणोंमें अटल भक्ति होती है, भक्ति उसी अन्तःकरणमें विराजती है जिसमें; तमो-गुणी आसुरी सन्ततिका वास न हो; इन्ही तमोगुणी

आसुरी संपत्तिका वास न हो, इन्हीं तमोगुणी आसुरी सम्पत्तिका नाम पापहै इसीको मल भी कहते हैं ।

इससे यह सिद्ध हुआ कि, प्रथम अन्तःकरणसे तमोगुणी आसुरी संपत्ति अर्थात् मलका दूर करना अत्यन्त आवश्यक है। और अन्तःकरणके मलको दूर करनेके लिये नित्य नैमित्तिक कर्त्तव्यकी अत्यन्त आवश्यकता है इसीको टकसारभी कहते हैं। और इसीका नाम आचार है ।

इसी प्रकारसे लौकिक सुखकी प्राप्तिभी उसीको होती है जिसका व्यवहार आचार शुद्ध होता है, जिसका शरीर आरोग्य होताहै उसीको शारीरिक सुख प्राप्त होताहै;शरीर आरोग्य रखनेके लिये नित्य नैमित्तिक व्यवहारको नियमपूर्वक करनेकी अत्यंत आवश्यकता है; शरीरकी आरोग्यतासेही लौकिक पारलौकिक सर्वसाधन होसक्ताहै; चित्तकी स्वस्थतासेही अन्तःकरणकी शुद्धता द्वारा सत्यज्ञान प्राप्त होता है;

सो चित्तकी स्वस्थता तभी प्राप्त होती है जब यह प्राणी अपने शारीरिक और मानसिक कर्मोंको नियमसे रखता है; उपरोक्त शरीर व अन्तःकरणकी आरोग्यता और शुद्धताको प्राप्त करनेके लिये जो कर्त्तव्य किया जाय उसीको आचार कहते हैं । यही आचार धर्म्मकी प्रथम सीढी होनेके कारण साक्षात् धर्म्म-रूपसे माना जाताहै ? अब इसी आचारका स्व-रूप रूपांतरको प्राप्त होकर इसका लक्षण यह होताहै, कि,

"देशदेशके महानुभाव ईश्वरस्वरूप महात्मागणोंने अज्ञानी जीवोंके कल्याणके अर्थ जो निश्चय, नियम और कर्म्मविधान अर्थात् कर्त्तव्य वर्णन किया और बतलाया है, उसे धर्म्म कहतेहै."

इसी प्रकार उन्होंने जिस कर्मोंके करनेको निषेध किया है उन्हें "अनाचार अथवा अधर्म्म कहते हैं" ।

उपरोक्त प्रकारसे दैवी सम्पत्ति करि युक्त ईश्वर स्वरूप महात्माओंने जो कुछ विधान कियाहै; देशकाल और गुणका विचारकर, प्राणीके सुख प्राप्तिके लिये वर्णन किया है, जो मनुष्य उन नियम बन्धनोंको तोडकर चलताहै अथवा अन्य देशियों परधर्मियोंके नियमको बरतता है वह अवश्य आधि व्याधिसे ग्रस्त हो दुःखका भागी होताहै, और वारम्वार जन्ममरणको प्राप्त हो चौरासी भोगता है ।

क्योंकि प्राणी मात्र अपने पूर्वके गुणकर्मानुसार अमुक देश और लोकमें जन्म लेतेहैं, जन्म लेने पश्चात् सहवास, संगति और बुद्धि, नीतिके अनुसार, वहुत करके अपने लोकके जैसाई होताहै उसमें भी यदि उसके वर्ण आदिकी व्यवस्था बदल, दूसरे वर्ण और धर्म्ममें उसके प्रवेश कराया जावे तो, उस्से जन्मसे पढ

हुआ स्वभाव सर्वथाही छूटना तो असम्भव है और नवीन धर्म्मका सर्व नियम धारण होना भी असम्भव है ।

इसहेतु स्वधर्मकी ही श्रद्धा सतेज होनी चाहिये ।

स्वधर्मकाही आचरण करके मनुष्य परलोक और इसलोकका सच्चा सुख प्राप्त करसक्ता है ।

स्वधर्माचरणसेही आयु, स्वधर्म्माचरणसे ही सन्तान, स्वधर्म्माचरणसेही अर्थ काम, और मोक्ष प्राप्त होता है ।

धर्माचरणके प्रथम पगको आचार कहते हैं । शास्त्र और लौकिक बुद्धिसे धर्माचार तीन प्रकारका है ।

१ अपनी ओर अपना कर्तव्य ॥
२ दूसरोंके लिये अपना कर्तव्य ॥
३ ईश्वरके लिये अपना कर्तव्य ॥

इन तीनोंका परस्पर ऐसा ओत प्रोत सम्बन्ध है कि, कोई कार्य्य भी इन तीनोंके बिना नहीं है ।

शारीरिक धर्म्म, आत्मिक धर्म्म, सामाजिक धर्म्म, गुरु धर्म्म, ग्राम धर्म्म, देश धर्म्म, राज धर्म्म—

आदि सबही इन्हींका रूपान्तर है, विवेकीको सर्व विचारपूर्वक ग्रहण करना उचित है ।

इस ग्रन्थमें-जो स्वधर्मपद्धतिका वर्णन किया जावेगा उसके आचरणसे सर्वही धर्म्मका आचरण होजावेगा । इसीलिये सर्वसाधारणके लाभार्थ अत्यन्त सरल भाषामें ग्रन्थ लिखा जावेगा ।

इति कबीरउपासनापद्धतिप्रथमभागान्तर्गत
धर्मव्याख्या-और अनुबन्धवर्णनं नाम
प्रथमो विश्रामः ।

अथ द्वितीय विश्राम प्रारम्भ।

नित्यकर्तव्यवर्णन ॥

प्रातःकालिक कर्म।

(प्रातः उत्थान)

स्वस्थ (आरोग्य) मनुष्य अपने शरीर, आयु, धर्म अर्थात् लौकिक पारलौकिक सर्व कर्तव्योंको पूर्णकर सर्व प्रकारके सुखको प्राप्त करनेके लिये, और स्वधर्मकी रक्षाके लिये; ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर, अपने इष्टदेवका स्मरण करे; सो रात्रिके पिछले याम अर्थात् पहरके तीसरे मुहूर्तको ब्राह्ममुहूर्त जानना अर्थात् साढेचार बजे रात्रिसे ब्राह्ममुहूर्त प्रारम्भ होता है। इसी समयमें मनुष्यको नित्य उठना चाहिये। इस समयमें उठनेका अभ्यास रखनेसे शरीरकी आरोग्यता बढती है, दिनमें बहुत

अवकाश मिलनेसे अपने काम काजमें सिद्धि पाकर सम्पत्ति तथा श्रेयकी प्राप्तिहोतीहै । और स्वधर्मके नियमोंको भली प्रकार पालनेका अवसर मिलताहै । जो इस समयमें नहीं उठताहै उसके लिये, रत्नावलिकारका वचन है कि,

"ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा
सा पुण्यक्षयकारिणी ।" रत्नावल्याम् ।

अर्थ-ब्राह्म मुहूर्तकी निद्रा पुण्यक्षय करनेवालीहै ।

साखी ।

पांच घडी बाकी रहै, पिछली पहरीरात ।
भोर तहांतक कहतहैं, सूरज जब उगिजात १
भोरहि उठि हरनाम ले, काम काजले ठान।
ऐसे घर दारिद्र हो, झूठा वेद पुरान ॥ २ ॥
प्रात दिवा सोयाकरे, ऐसी जिसकी बान ।
उसकोसुखसम्पति मिले, झूठा वेद पुरान ३

इस प्रकार अतिशय सहज और अत्यन्त लाभ कारक, ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठनेकी आदत डालना प्रथम कर्तव्य है ।

उपरोक्त ब्राह्ममुहूर्त (साढें चार बजे) में उठकर सर्व विघ्नोंकी शांतिके लिये सद्गुरुका स्मरण करे। प्रथम सद्गुरुके स्वरूपके ध्यानका श्लोक पढकर उसके अर्थका भी चिन्तन करे।

श्लोक ध्यान।

ध्यायेत् सद्गुरु श्वेतरूपममलम्, श्वेतांबरं शोभितम् । कर्णेकुण्डलश्वेतशुभ्र मुकुटम्, हीरामणिमंडितम् ॥ नाना माल मुक्तादि शोभितगला, पद्मासने

इसी विषयके ऊपर अंग्रेजीमें भी कहावत है कि
Early to bed and early to rise.
Makes the man healthy wealthy
and wise.

स्वस्थितम् । दयाब्धिधीर सुप्रसन्नवदनम्, सद्गुरुं तन्नमामि ॥ १ ॥ द्वै पदम् द्वैभुजम् प्रसन्न वदनम् द्वै नेत्रम् दयालम् । सेली· कण्ठ माल उर्द्धतिलकं, श्वेताम्बरीमेखला ॥ चक्रांकित शिर टोपं रत्नखचितम्, द्वै पञ्चताराधरें वंदेत् सद्गुरु योग दण्ड सहितम्, कबीर करुणामयम् ॥ २ ॥

और आंख खुलनेपर बायां अथवा दहिना जो स्वर चलता हो उसी हाथको देखकर, मुखपर वही हाथ फेरता हुआ उठे अथवा सुषुम्ना अर्थात् दोनों स्वर चलता हो तो दोनों हाथोंको देखे और मुख-पर फेरे।

यदि मलमूत्रका वेग न आया हो तो थोडी देरतक बिछावन पर ही बैठा २ "रविज्ञानगोमुक्ति-

---

१ देखो इसी ग्रन्थके स्तुतिरत्नाकर नामक विश्रामको उसीमें ये स्तुति मिलेगी वहांसे स्मरण करलो ।

हस्त'' इस स्तुतिको पाठ करे। यदि इसके पाठ करलेनेपर भी मलका वेग न आया हो तो ''कबीर भानु उदय सवैया'' का भी पाठ करे। परन्तु इनके पढनेके लालचसे मलमूत्रके वेगको कदापि न रोके। मलके और मूत्रके वेगको रोकनेवालेको अनेक रोग हो जाते हैं जिससे सब भजन स्मरणमें विघ्न पडता है।

मलके वेगको रोकनेसे पेटमें गुडगुडाहट शब्द, शूल तथा गुदामें कतरनेकीसी पीडा, मलरोध, बहुत डकारोंका आना, मुखमार्गसे मलका निकलना आदि अनेक विकार होते हैं।

और मूत्रके रोकनेसे मूत्र मार्गमें शूल, मूत्रकृच्छ्र, मस्तकशूल, शरीरका न वजाना, जंघाकी जडमें पीडा आदि अनेक घातक रोगकी उत्पत्ति होती है।

-मलमूत्रके वेगको जैसे बलात्कारसे अटकानेसे रोगकी उत्पत्ति होती है उसी प्रकार वेग आये

बिना बलपूर्वक मल मूत्रके त्याग करनेसे अनेक दुःख प्राप्त होते हैं । इस वास्ते बुद्धिमानको उचित है कि जिस समय मल मूत्रका वेग आवे उसी समय बिछावन छोडकर, जो स्वर चलता हो प्रथम वही पग उठा कर (प्रातः उठनेका सुमिरण पढता हुआ) बिछावनको छोडे, यदि शयन घरमें गुरु आचार्य्य अथवा किसी भी महानुभावका चित्र आदि हो उसका अथवा अपने दोनों हाथों तथा गृहस्थ अपना और अपनी स्त्रीका मुख देखकर घरसे बाहर निकले ।

घरसे बाहर निकलनेपर प्रथम २—शुभ और उत्तम पदार्थोंको देखना चाहिये । माता, पिता, गुरु, आचार्य्य अथवा दही, घृत, दर्पण, सपेद

---

१ सर्व प्रकारका सुमिरण एकत्रही अष्टम विश्रामसे मुखाग्र कर लेना चाहिये । मुखाग्र करनेकेही सुभीतासे एकत्रही रक्खा है ।

सरसों, बेल, गोरोचन, फूलमाला, घोडा, हाथी, गौ, साधु, सन्त, ज्ञानी, हलदी और बांस वा दूब इनको-देख, इनका दर्शन और स्पर्श करना शुभ है। इस लिखनेका यह प्रयोजन है कि, दुष्ट स्त्री, पुरुष, कुत्ता, बिल्ली, व्याघ्र आदि हिंसक और दुष्ट प्राणियोंको न देखे।

सोके उठनेपर चित्त शांत और स्वस्थ होता है इस कारण प्रथम जैसे पदार्थके ऊपर दृष्टि पडती है वृत्ति समस्त दिन वैसी ही बनी रहती है। इस कारण ऐसे पदार्थ और मनुष्यका प्रथम दर्शन करना चाहिये कि, जिससे चित्तमें प्रसन्नता बनी रहै और समस्त दिनका लौकिक पारलौकिक कार्य्य आनन्दपूर्वक समाप्त हो।

मलमूत्र त्यागन विधि।

(उपवीत)

उपवीत धारण करनेवाले अर्थात् जिनके गलेमें जनेऊ है वे जनेऊको इस प्रकार धारण करें॥

यज्ञोपवीतको मूत्रके समय वायें कानमें और मल त्यागनेके समय बायें कानमें धारण करना चाहिये। और मैथुनके समय ज्योंका त्यों रहने देवे । अथवा अनेक मत और देश देशकी परिपाटी हैं, इस कारण जिस देशमें रहता हो वहांहीके सदाचारी विद्वान् मनुष्योंकी रीति देखकर धारण करे ।

(पात्र)

मल परित्यागके पश्चात् गुदादि शुद्ध करनेके लिये जल लेजानेका पात्र इतना वडा होना चाहिये कि,जिसमें कमसे कम पक्का सवासेर जल समासक्ता हो।उस पात्रमें जल लेकर यदि ग्राममें हो तो ग्रामसे बाहर जितनी दूर बलवान् पुरुषके हाथका तीर जा सक्ताहै अर्थात् कमसे कम आठसौ गजकी दूरीपर जाकर, एकान्त स्थानमें शौच फिरने को बैठे ।

मलमूत्र खडे २ कदापि भूलकरभी त्याग न करे क्योंकि, ऐसा करनेसे मल मूत्रका छींटा अवश्यही

पैरोंपर पडेगा; धूप अथवा साधारण मार्ग तथा भयवाले स्थानमें शौच करनेको न बैठे ।

शौच करनेके प्रथमही जलके साथ २ मिट्टी का ढेलाभी ले जावे ।

जलपात्रको शौच फिरते समय यदि हाथमें लिये रहे तो वह जल मूत्रके समान होजाताहै; इस कारण सन्मुख कुछ दूर पर रखकर शौचको बैठे ।

शौच फिरनेके समय आधी रातसे आधे दिन तक उत्तर मुख और आधे दिनसे आधीरात तक दक्षिण मुख अथवा प्रातःकालसे दोपहर दिन तक पश्चिम मुख और दोपहरसे सायंकाल तक पूर्व मुख, मध्याह्नमें उत्तर मुख और रातको दक्षिण मुख बैठे ।

हलसे जुते हुये खेतमें, जलमें, ईंट आदिसे वनाये-हुये अग्निके स्थानमें, पर्वतपर, पुराने देव-स्थानमें, वांवीमें, मार्गमें, भस्म तथा गौओंके स्थानमें, जीवों सहित गढहामें, नदीके, किनारे,

पर्वतके शिखर, चलता हुआ, खडा हुआ, अग्नि, ब्राह्मण, (साधु, गुरु,) सूर्य्य, जल और गौको देखता हुआ, कभी भी मलमूत्रका त्याग न करे ।

दिनमें तथा दोनों सन्ध्याओंमें उत्तर मुख और रात्रिमें दक्षिण मुख करके मलका त्याग करे रात्रिके समय छायामें अथवा अन्धकारमें, दिनमें छाया तथा कुहिर आदिके अन्धकारमें, दिशा विशेषका ज्ञान न होनेपर और चोर व्याघ्र आदिसे उत्पन्न प्राण नाशके भयके समय इच्छापूर्वक मुख करिके मलमूत्र का त्याग करै ।

काष्ठ,ढेला,फूस और सूखे पत्तों आदिसे भूमिको ढाँकिके, मौनहो, शरीरको वस्त्र आदिसे लपेटे हुये, शिरमें वस्त्र बाँधिके मलका त्याग करे ।

शहरमें वास करनेवालोंको यथा प्राप्त सण्डास आदिकोंके हेतु कोई विशेष नियम नहीं है उनको जैसा प्राप्त हो वैसेही करना परन्तु जलतो सवासे-रसे कम न लेना ।

अग्नि, सूर्य्य, चन्द्रमा, जल, ब्राह्मण, (साधु, गुरु) गौ, पवन इनके सन्मुख मल मूत्र त्याग करनेसे मनुष्यकी बुद्धिका नाश होता है।

उपरोक्त रीतिसे मलत्याग करता हुआ, अपने धर्म्मानुसार मल मूत्रत्यागनेके मंत्र (सुमिरण[1]) का मनही मन स्मरण करता जावे।

मल मूत्र त्याग करने के समय कदापि बोलना उचित नहींहै। मल त्याग करनेके पश्चात् गुदाको, मिट्टीके ढेलेसे तीन अथवा सातबार जिस्से मल पुछ जावे, पोंछकर जलसे शुद्ध करे; जलसे गुदा शुद्धि करते समय गुदा धोनेका सुमिरण[2] पाठ करता जावे। शुद्धि करते समय चुल्लूसे जल लेलेकर गुदा अथवा लिंग धोवे, पात्रसे धार गिराकर कदापि शुद्धि न करे।

१–सब प्रकारका सुमिरण अष्टम विश्राममे देखना चाहिये। २ सुमिरण अष्टमविश्राममें देखो।

शौच कर लेनेके पश्चात् दहिने हाथसे धोतीका पछोडा खोंसकर, जल पात्रको दहिने हाथसे ही लेकर वहांसे हटे ।

प्राय:देखा जाताहै कि, साधारणत: लोग बायें हाथसेही पात्रको ले आतेहैं और हाथ धोनेके प्रथम लोटाकोही धोने लगजाते हैं । यह बात बहुत बुरी है । इस आदतको छोडना चाहिये । शौचजानेके पश्चात् लोटा दहने हाथसेही लाना चाहिये ।

पश्चात् नदीके तटपर, तालावके किनारे, अथवा कूआँ तथा घरमें, शुद्ध मिट्टीके साथ प्रथम हाथको इतनेबार धोवे जिस्से अपने और पराये मनकी ग्लानि दूर होजावे ।

.मूषाकी खोदी हुई, पुरानी दीवारकी, जलके भीतरकी, कूराकुरकट जहां फेंका जाताहै ऐसे अशुद्ध स्थान आदिकी मिट्टी न लेवे । वरन शुद्ध और स्वच्छ स्थानकी मिट्टी लेकर शुद्धि

करे; हाथ मटियाते समय सुमिरेण पाठ करता जावे।

गुदादि जो मलमूत्रके मार्ग है उनके स्वच्छ रखनेसे कांति तथा वल बढता है; हाथ पैरोंको मिट्टी लगाकर धोनेसे शुद्धि होती है, मल श्रम और रजोगुण दूर होता है। नेत्रका तेज बढता है।

तदुपरान्त जलपात्र आदि किसी धातुका हो तो जल और मिट्टीसे भीतर वाहर मलीप्रकार मलकर और धोकर शुद्ध करे और यदि तूम्बा हो तो जलसे भीतर वाहर मलकर साफ करे। धातु पात्र और तूम्बाका अलग २ सुमिरण है सो वोलता जावे।

इसप्रकारसे जलपात्र शुद्धकर हाथ पैरोंको धोवे और वारह वार अथवा जितनेसे ग्लानि दूर हो उतना कुल्ला करके ऊपरसे मुँह धोवे; मुँह धोनेका सुमिरेण पढता जावे।

१ सुमिरण अष्टम विश्राममें देखो।
२ सुमिरण अष्टमविश्राममें।

दातौन विधि ।

शौच फिरकर हस्त पादादि शुद्ध करने पश्चात् दन्तधावन करे ।

बारह अंगुल लम्बी, कनिष्ठिका उँगलीके बराबर मोटी, नरम और गांठ रहित, भीतरसे पोला न होवे ऐसी दतौन लेकर उसे चबाकर अथवा कुचलकर कूचीके समान बनाकर धीरे २ एक एक दांतोंको रगडे, दांतके मांसोंको सदा बचाकर घिसे यदि होसके तो सोंठ, मिरच, पीपल, तेल, सेन्धानिमक, इनका चूर्ण बनाकर नित्य दांत घिसे ।

मीठी दतौनमें महुआ, तीक्ष्णमें कञ्ज, कडवियोंमें नीम और कसैलियोंमें खैर श्रेष्ठ है । समय दोष और प्रकृतिको विचार कर योग्य शक्तिवाले वृक्षकी लकडीकी दातौन करे । इस प्रकार दातौन करनेसे मुखकी विरसता और दांत जीभ तथा मुखके रोग

नष्ट होतेहैं । स्वच्छता और शरीरमें हलकापन होता है ।

आककी दातौन करनेसे शक्ति, वडकी दतौन करनेसे दीप्ति, करंजकी दतौन करनेसे जय, पीपलकी दतौन करनेसे धनकी सम्पत्ति, बेरकी दतौनसे मिष्ट भोजन, खैरकी दतौन करनेसे मुखमें सुगंध, बेलकी दतौन करनेसे अत्यन्त धन, गूलरकी दतौन करनेसे वचनकी सिद्धि, आमकी दतौन करनेसे आरोग्यता, कदम्बकी दतौनसे धैर्य्य, तथा स्मरण शक्ति, चम्पेकी दतौन करनेसे वाणी तथा कानकी दृढता, शिरसकी दतौन करनेसे कीर्ति, सौभाग्य, आयुकी वृद्धि, तथा आरोग्यता; चिरचिटे (चिरचिटी अपामार्ग,) की दतौन करनेसे धैर्य्य तथा धारणशक्ति; विजयसारकी दतौन करनेसे बुद्धिकी शक्ति दाडिम (अनार)की दतौन करनेसे

सुन्दरता; और चंवेली, तगर और सन्दारकी दतौन करनेसे खोटे स्वप्न नहीं दीखते ॥

निषिद्ध[1] दातन ।

सुपारी, ताल, हिंताल, केतक, बृहत्तृण(वांस) खजूर और नारियल ये सात तृणराज कहलाते हैं । इनका दातन कदापि न करे। किसी २ देश जाति और धर्ममें वड, पीपल आदि कितने विशेष वृक्षोंकी दतौन आदि ग्रहण नहीं करते, वहाँके लोगोंको देशाचार होनेके कारण स्वस्वदेशकी चालको स्वीकार करना चाहिये ॥

उपरोक्त रीतिसे निषिद्ध वृक्षोंको छोडकर विधि वृक्षोंके निकट जाकर प्रथम सुमिरण[2] पढे पश्चात्

---

१ गुवाकतालहिंतालौ केतकश्चापिबृहत्तृणः। खर्जूरं नारिके-रंच सप्तैते तृणराजकः ॥ तृणराजसमुत्पन्नं यः कुर्याद्दन्त-धावनम् ॥ सचाण्डालयोनिः स्याद्यावद्गंगां न पश्यति ॥ बृहन्निघण्टुरत्नाकर ॥

२ सुमिरण अष्टम विश्राममें ।

दातौन तोडे और उपरोक्त विधिसे उसे सुधारकर दातौन करताहुआ सुमिरैणका पाठ करता जावे ।

दांत घिसलेने पश्चात् जीभका मैल उतारनेके लिये सोना, चांदी, तांबेकी यथाप्राप्त जीभीसे अथवा सर्व साधारण जैसा करते हैं वैसे दातौनको चीरकर अथवा नरम हत्तेसे जीभका मैल उतारे । दश अंगुल लंबी नरम और स्वच्छ जीभीसे जीभका मैल उतारना चाहिये । जीभी करनेसे जीभका मैल, मुखकी विरसता, दुर्गंध और जडता दूरहोती है ।

दांतन और जीभी पूर्व उत्तर मुख होकर करना चहिये। पूर्व उत्तरसे आशय ईशान कौन है।

यदि दांतन न मिले तथा कोई पर्व दिन होवे अथवा किसी प्रकारका रोग हो तो, निमक और तेल मिलाकर अर्थात् दन्तशोधन चूर्णसे, मांस

१ सुमिरण अष्टम विश्राममें ।

बचाये हुये, दांतोंको भलीप्रकार मलकर, धातुकी जीभीसे अथवा वारह कुल्लीकर उंगलीसे जीभको शुद्धकरे । जीभी करते समय जीभीका सुमिरण भी बोलता जावे ॥

कमसे कम २४ मिनटतक अवश्यही दतौन चाहिये ।

दाँतन निषेध ।

गल, तालु, होठ, जीभ, दाँत रोगी, मुखपाक, सूजन, खांसी, श्वास, वमन, तथा दुर्वल, अजीर्ण रोगी, भोजन किया हुआ. हिचकी, मूर्च्छा, मद, मस्तकशूल, प्यासा, मिहनत किया हुआ, रास्ता चलता हुआ, ग्लांनियुक्त, वातव्याधि युक्त, कानके शूलवाला, नेत्ररोगी, नवीन ज्वर युक्त और हृदय रोगी इन सबोंको दतौन करना वर्जित है ।

दांत घिसनेके और जीभी करनेके उपरांत जलसे वारंवार कुल्ला करे। शीतल जलके कुल्लेसे कफ, तृषा तथा मल नष्ट होकर मुखके भीतरकी शुद्धि होती है। कुछ गरम जलसे कुल्ला करनेसे कफ, अरुचि, मुखका मैल, दांतोंका जकडना नष्ट हो मुख हलका होजाताहै। परन्तु विष और मूर्च्छाके मदसे पीडित श्वास रोगी, रक्त पित्तयुक्त, जिसके नेत्र दुखते हों, बलक्षीण हो गया हो, तथा रूक्ष हो, उसे गरम पानीसे कुल्ला नहीं करना चाहिये।

कुल्ला करनेके पश्चात् शीतल जलसे मुखको धोवे। मुख धोते समय सुमिरण[1] पाठ करे।

आंख, कपाल और गाल डाढी आदि मुखके भागोंको तथा नासिकाके भीतर बाहरके मलोंको निकालकर अच्छी तरह धोवे। इस प्रकार शीतल

---

१ सुमिरण अष्टम विश्राममें मिलेगा।

जलसे मुख धोनेसे रक्त पित्तमुखकी फुन्सियां (वरें) शोष, नीलिकाझांई आदि नष्ट होतीहैं अथवा किंचित् उष्ण जलसे मुख धोनेसे कफ तथा वात दूर होताहै, स्निग्धता होती है और मुखका शोष नष्ट होता है ।

पश्चात् नाक, कान और आंखकी स्वस्थताके लिये यथाशक्ति तैलका नस्य और अंजन सुरमा आदिकाभी व्यवहार करना उचित है जिसका विधान ग्रन्थोंसे देख लेना चाहिये ।

स्नानविधि ।

दन्तधावन करलेनेके पश्चात्, देशकालका विचारकर, गृहस्थ पुरुष तेल उबटन आदि, यथाप्राप्त और ऋतु अनुसार लगाकर; स्नान करनेके लिये गृहमें जल लेकर अथवा तालाब आदि जलाशयोंको जावे ।

तेल लगानेकी विधि और गुण।

संपूर्ण अंगोंमें नित्य तेल मले, तेलका लगाना पुष्टिकारक है.. विशेष कर शिरमें कानोंमें और पावोंमें तेलकी मालिश करे, सरसोंका तेल, अग्निके संयोगसे अगर आदि सुगंधित पदार्थोंका निकाला हुआ तेल (अर्थात् चम्पा, चंबेली, वेला, जूही, मोतिया तथा मदनवाण आदिका तेल) पुष्पोंसे सुगंधित कियाहुआ तेल सदा हितकारी है। अपवाद समयके अतिरिक्त तेलका मर्दन कदापि हानिकारक नहीं है। शिरमें मलाहुआ तैल सम्पूर्ण इंद्रियोंको तृप्त करता है; दृष्टिको वल देता है. शिरके, त्वचाके रोगों के, शिरके दर्दको, दूर करता है। तेल मर्दन करनेसे वात तथा कफ और थकावट दूर होती हैं; सुखकी और वलकी प्राप्ति होती है, निद्रा भले प्रकारसे आती है; शरीरका वर्ण सुन्दर हो जाता है, कोमलता आजाती है; आयुकी वृद्धि तथा देहकी पुष्टि होती है। केशोंमें

तेल लगानेसे केश बढते हैं; लम्बे नरम दृढ और काले होजाते हैं, तथा शिरमें भरे रहते हैं ।

पांवोंमें तेल मलना पांवोंकी स्थिरता करता है; निद्रा और दृष्टिको प्रसन्न रखता है, स्नानके समय तेलका उपयोग किया जावे तो रोमकूपकी शिराओंके समूह और धमनियोंके द्वारा सम्पूर्ण शरीरको तृप्त करता और अत्यन्त बल देताहै । जिस प्रकार वृक्षकी जडको जलके सींचनेसे पत्रादिककी वृद्धि होतीहै उसी प्रकारमनुष्योंके शरीरको तेलसे सींचनेसे सर्व धातुओंकी वृद्धि होती है । परन्तु नवीन ज्वरवालेको, अजीर्णयुक्त, जिसने जुल्लाव लिया हो, जिसकी निरूहवस्ती करी हो उनको तेल कदापि मलना नहींचाहिये इसी प्रकार उबटन आदि मलना और कानमें तेल आदि देना अत्यन्त लाभदायक है जिसका विधान भावप्रकाशादि वैद्यक ग्रन्थोंमें पूरा २ मिलेगा ।

इस प्रकार तेलादि लगानेके पश्चात् स्नान करे। स्नानके हेतु यदि नदी तालाब आदि जलाशयोंमें जावे तो जलमें प्रवेश करनेका सुमिरण पढकर प्रवेश करे, यदि कूपसे जल भर कर स्नान करना हो तो जल भरनेका सुमिरण पढकर जल भरे। और यदि जल घरमेंही तैयार मिले तो जल भरनेवाले सुमिरणको पाठ करनेका काम नहीं है।

जलमें प्रवेश कर अथवा घरमें स्नान करते हुये स्नान करनेके सुमिरणको बोलता जावे। स्नान करनेसे अग्नि दीप्त होता है, शक्ति आयु और तेज बढता है, उत्साह तथा बल प्राप्त होता है, खुजली, मैल, परिश्रम, पसीना, आलस्य; तृषा, दाह तथा पाप; इनको दूर करता है। शीतल जल आदिके सीचनेसे शरीरके बाहरकी गरमी दबा कर भीतर जाती है। इसीसे जठराग्नि प्रबल होती है, भूख

१–सुमिरण अष्टम विश्राममें देखो।

लगती है । शीतल जलके स्नानसे रक्तपित्त दूर होता है, उष्ण.जलसे स्नान करनेसे बल बढता है, वात तथा कफका नाश होता है; शिरसे गरम जलसे स्नान अत्यन्त हानिकारक है परन्तु वात और कफका प्रकोप हो तो हितकारी है ।

स्नान वर्जित ।

ज्वर, अतिसार, नेत्र और कानके दर्द वाला वात रोगी, जिसका पेट अफरा होय, पीनस रोगवाला और अजीर्णरोगवाला, इन सबको स्नान करना नहीं चाहिये; भोजनके पश्चात् भी स्नान ठीक नहीं ।

स्नान करनेके अनन्तर नरम अंगोछेसे शरीरको पोंछ लेवे परन्तु गरम जलसे जिसने स्नान किया हो उसे सूखे ही अंगोछेसे देह पोंछना चाहिये ।

सूचना-स्नान करनेमें प्रायः यह देखा जाता है कि, लोग या तो प्रथम, पगपर या कमरपर अथवा मस्थेपर जल डालकर शरीर मलने लग जाते हैं

और शिरपर सबके पीछे जल डालते हैं सो यह आदत बहुत हानिकारक है; इस प्रकारसे अनेक रोगोंमें ग्रसित होना पडता है; मस्तकमें गरमी वढजाती है; इसकारण उचित है कि, प्रथम शिर पर पानी डालकर पश्चात् कन्धा कमर और पैर पर जल डालकर स्नान करे। विना किसी विशेषकारण के गरम जल भी शिरपर कभी न डाले।

वस्त्रधारण।

स्नान करनके पश्चात् वस्त्र धारण करै सतोगुणी और स्वास्थ्यकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको लँगोटी अवश्य धारण करनी चाहिये। लँगोटी धारण करनेके समय कौपीन धारण करनेका सुमिरेण[1] पढे और उसके अर्थ पर भी ध्यान देवे।

लँगोटी पहिरकर यथाप्राप्त शुद्ध और उज्ज्वल वस्त्र धारण करे; श्वेत वस्त्र न शीत है न उष्ण है

१ नोट–सुमिरण अष्टम विश्राममें मिलेगा।

इस कारण सदा ही धारण करना योग्य है । शीत गुण है रजोगुणका और उष्णता तमोगुणका, इस कारण श्वेतवस्त्र समशीतोष्ण होनेसे मुमुक्षुओंको वही धारण करना चाहिये इसी कारण स्वधर्मानु-सार सब स्थानमें श्वेत रंगको ही प्रधान माना है ।

और भारतवर्ष जैसे समशीतोष्ण अ सतो·र्थात् गुणी देशमें तो श्वेतवस्त्र अत्यन्त ही उपयोगी है यद्यपि ऋतु ऋतुमें भिन्न भिन्न रङ्गोंके वस्त्र धारण करनेका विधान वैद्यक शास्त्रमें पाया जाता है तथापि सबमेंश्वेतवस्त्र कोही प्रधानता है ।

नवीन वस्त्र यशकर्ता,कामोद्दीपक,आयुष्यकरता, लक्ष्मी और आनन्दका वढाने वालाहै तथा हितावह, वशीकरण कर्ता और रुचि प्रगट करताहै यह गुण उज्ज्वल धुले हुये अथवा नवीन वस्त्रका है ।

वुद्धिमान् पुरुषोंको मैला कपडा कभी भी धारण करना नहीं चाहिये,क्योंकि मैले वस्त्रसे खुजली,कृमि,

हानि, अलक्ष्मी (दरिद्रता) होतीहै अर्थात् मेलसे खुजली होवे, जूएं पड जावें जिसके पास जाके बैठे उसको ग्लानि हो। इसीसे धनकी अप्राप्ति होनेसे दरिद्री होवे। यदि किसीके पास नवीन वस्त्र धारण करनेको न हो गरीव हो तो यथा प्राप्त पुराने वस्त्रको भी धुलाकर अथवा साबुन आदि से अपने हाथसे धोकर साफ रखे। वस्त्र धारण कर लेनेके पश्चात् तिलक लगावे।

तिलक लगानेकी विधि।

शीत कालमें केशर, चन्दन और काली अगर मिलाकर तिलक करे क्योंकि, ये गर्म हैं, वात, कफको मेटने वाले हैं। गरमियों में चन्दन कपूर और सुगन्धवालाको मिलाकर लेपकरे क्योंकि, ये सुगन्धित हैं और अत्यन्त शीतल हैं। वर्षा कालमें चन्दन, केशर, और कस्तूरीको मिलाय-कर लेप करे क्योंकि, ये न गरम हैं न शीतल है।

तिलक करनेसे, मूर्छा, दुर्गंध, पसीना और दाह दूर होतीहै और भाग्यशालीपण तेजस्वीपणा, त्वचाका वर्ण, प्रीति, उत्साह तथा बल बढता है ।

जिन लोगोंके लिये स्नान वर्जित है उनके लिये तिलक भी करना निषेध है ॥

यद्यपि वैष्णव सम्प्रदाय, (स्वधर्ममें) सफेद मिट्टीका तिलक ही प्रधान किया है, सो विशेप कर विरक्त साधु अथवा घरसे बाहर गये हुये, व्यवहारमें लगे हुये, कम अवकाश पाने वालोंके लिये जान पडताहै । क्योंकि चन्दन आदिके लिये वहु मूल्य केशर, कस्तूरी आदि की आवश्यकताके अतिरिक्त होरसा आदिके एक सामग्रीकी आवश्यकताहै जो, विरक्त और अत्यन्त व्यवहार परायण पुरुषके लिये आपत्ति और भाररूप है और गोपीचन्दनका टुकडा पास रखने और समय पर हाथ पर घिसकर लगा लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है, इस कार-

णसे जिसको जो प्राप्त होसके उसीसे अपना निर्वाह करे ।

तिलक घिसलेने पर सुमिरण[1] पढते हुये शरीरके बारह अंगोंपर तिलक लगावे इसीको द्वादश तिलक कहते हैं ।

तिलकके द्वादश स्थान ।

१ नासाग्रसे आरम्भ कर ब्रह्मरंध्र (मस्तक) तक सीधीरेखाके समान तिलक लगावे । इसी प्रकार २ दोनों आंख, ४ नाभि, ५ हृदयमें ७ दोनों भुजा, ९ दोनों छातीसे लेकर मोंढे-तक घूमा हुआ, १० पीठ १२ दोनों कान । यही स्वधर्मानुसार तिलक करनेके द्वादश स्थान है ।

---

१ सुमिरण अष्टमविश्राममें देखो ।

तिलक लगालेनेके पश्चात् सत्याचार्य्य वंश[1] गुरु की सेवासे गुरु द्वारा अथवा स्वयम् प्रसाद स्वरूप पाये हुये चरणामृत महाप्रसादको सुमिरण[2] बोलकर पानकर जावे ।

पश्चात् सुमिरण पढकर उत्तर मुख बैठकर कबीर साहबका ध्यानकर बन्दगी करे ।

१–वंश गुरुको सत्याचार्य्य इसकारणसे लिखा कि, कबीर पंथके जितने ग्रंथ हैं सबमें गुरु धर्मदास साहब के अतिरिक्त किसी को भी पंथ चलाने की आज्ञा नहीं दी है और सब ग्रंथोंमें यह भी प्रमाण है कि, गुरु धर्मदास साहबके वंशके अतिरिक्त कबीर पंथकी गुरुआई आचार्य्य पणा अन्य किसीको कबीर साबने दिया नहीं है । वंशके छापके विना कोई गुरुआई करने का अधिकारी नहीं, वंश के पंजा परवाना विना जो गुरुआई करते, अथवा आचार्य्य कहलातेहैं वे कबीर पंथके ग्रन्थानुसार आचार्य नहीं । इसके विशेष वृत्तान्त अनुरागसागर आदि सर्व ग्रंथों तथा "कबीर मन्शूर" "कबीर भानु प्रकाश" आदि ग्रन्थोंमें पूरा २ मिलेगा ।

२. सुमिरण अष्टमविश्राममे मिलेगा ।

प्राय: वर्त्तमान कालके महात्मागण नियम विरुद्ध उत्तर दिशाको छोड केवल वन्दगीही नहीं आरति आदिभी पूर्व और दक्षिण दिशाओंकी ओर मुख करके करते हैं। सो केवल स्वधर्म्मानुसार ही नहीं—वरन्—विज्ञान शास्त्र के साथ साथ प्राय: सर्व धर्मोंके विरुद्ध है। शास्त्रीय श्रौतस्मार्त कर्ममें भी प्राय: उत्तर दिशाकोही प्रधान रखा है, यद्यपि संध्या आदिकोंमें सवेरे पूर्व, मध्याह्न उत्तर और सायं सन्ध्याका पश्चिम दिशा लिखाहै तथापि विज्ञानवेत्ता लोग उत्तरदिशाके गुणको भली प्रकार जानते हैं।

यहां इन विषयोंके लिखनेका स्थान नहीं है इस कारण विशेष नहीं लिखता हूँ।

वन्दगी करलेने पश्चात् निकट निवास करतेहुए गुरु, साधु और श्रेष्ट पुरुषोंके पास जाकर वन्दगी करके चरणामृतके लिये विनय करे, तब वे महापु-

रुप चरणामृत देनेका सुमिरणबोलते हुये चरणामृत देवें उसे बडे प्रेम और श्रद्धाके साथ पान करजावे पान करते समय चरणामृत पान करनेका सुमिरण मनही मन स्मरण करलेवे।

इसी प्रकार पुत्र पिताका, गुरु शिष्यका, स्त्री पतिका चरणामृत यथाशक्ति नित्य ग्रहण करे।

यद्यपि मानापमान रहित सच्चे विरागी साधु संत लोग अमान होनेके कारण चरणामृत महाप्रसाद आदि देनेके इच्छुक नहीं होते हैं तथापि, विवेकी गृहस्थ और साधुओंको अपने कल्याणके हेतु, उनमें श्रद्धा रखनी, उनकी सेवा भक्ति करनी अत्यन्त आवश्यक है।

परन्तु गृहस्थोंको तथा मठधारी महंत और साधुओंको लोकाचार, कुलाचार और देशाचारका ध्यान रखकर; सदा मर्यादसेही वर्तना चाहिये।

१–सुमिरण अष्टम विश्राममें मिलेगा।

यद्यपि कितने दम्भी और पाखण्डी विवेकविचार शून्य मानके अभिलाषी लोगोंका चरणमृत न लेनेसे वे वहुत क्रोधित होकर अपशब्द और शापका प्रहार करने लग जाते हैं और भोले भोले विचारे श्रद्धालु-ओंको, उनकी गीदड भवकीसे घरके लोक और मर्यादाके विरुद्ध कार्य्य कर अनेक आपत्तियोंमें फसना पडताहै । इससे विचारवानोंको सत्यगुरुके इस वचन का ध्यान रखकर सदा मर्यादासेही वर्त्तना चाहिये ।

साखी ।

कर वन्दगी विवेककी,
भेष धरे सब कोय ।
वह वन्दगी वहि जानदे,
जहाँ शब्द विवेक न होय ॥ वीजक ।
जाकी मर्यादा जौन विधि,
वरते सोइ प्रमान ।
जमा माहि कछु फेर नहीं;

उज्ज्वल धर्म ओ ज्ञान ॥ गुरुबोध ।

इतनेही नहीं वरन् सब ग्रन्थोंमें इस प्रकारका बहुत प्रमाण मिल जावेगा । और प्रत्यक्ष श्री १०८ सत्याचार्य्य वंश गुरूकी सेवामें रहकर जिसने वहां की रहनी और वहांका टकसार देखाहै वह कदापि नास्तिक बनकर मर्यादाके बाहर नहीं चलेगा । जो विचार विवेकहीनहैं उनकी तो कोई बातही नहींहै ।

हां किसी भी प्राणीका हृदयसे अपमान करना अथवा उसका बुरा देखना किसीको भी उचित नहीं है; वरन् इससे लौकिक व्यवहार और मर्यादाको कोई सम्बन्ध नहीं है, । सत्यगुरुका वचन है ।

साखी ।

हम वासी वाहि देशके, (जहँ)
जाति वरण कुल नाहिं ।
शब्द मिलावा होय रहा,
देह मिलावा नाहिं ॥

सब संग रसिये सब संग बसिये,
सबका लीजै नाम ।
हांजी २ सबकी कीजे,
रहिये अपनी ठाम ॥
सत्य शब्द टकसार ॥

इस प्रकारसे नित्यक्रियाको शीघ्रतासे समाप्त कर प्रभात सन्ध्या अर्थात् भजन स्मरणके लिये बैठे।

शीघ्रतासे समाप्त करनेका कोई यह अर्थ न समझ लेवे कि, कुछ कियेकराये विनाही दश पांच मिनटमें इधर उधर कर शिरका भार उतारे, जिनके करनेसे लौकिक पारलौकिक कोईभी लाभ नहीं है। परन्तु शीघ्रता करनेका आशय दीर्घ सूत्रताको त्याग देना। जो पुरुष ५ मिनटके काममें दश मिनट अर्थात् योग्य समयसेभी अधिक समय लगाता है उसे दीर्घसूत्री कहते हैं। सो सब कृत्य अपने योग्य अवसर पर करना उचितहै। शक्ति रहते हुए आलस

करना अथवा मर्यादासे विरुद्ध दीर्घसूत्रताको सदाही त्यागना चाहिये ।

इति द्वितीयविश्रामः प्रातःकालिककर्मविधिः समाप्तः ।

अथ तृतीयविश्रामप्रारम्भः ।

प्रभात सन्ध्या (उपासना)

स्वस्थ चित्त हो एकाग्र चित्तसे सद्गुरुके भजन स्मरणके लिये सिद्धासन अथवा सुखासनसे बैठे ।

आसन ।

पवित्र देश अर्थात् शुद्ध स्थानमें जहां शीतल, मन्द और शुद्ध वायु आता हो और उसकी चारों ओर किसी प्रकारका दुर्गंध न हो, पुष्प, चन्दन, अगर और कपूर आदिकी सुगंधि हो, भूमि न अति ऊँची हो न अति नीची न खडबड हो । घरमें, अथवा वाटिका (बगीचा फुलवारी) मंदिर अथवा

नदीके तटपर हो । तहां कुशासन, तिसपर कंबल और उसके ऊपरसे वस्त्र बिछाकर सिद्धासनसे बैठे।

सिद्धासन ।

गुदा और उपस्थके मध्यमें जो स्थान :है उसे योनिस्थान कहते है, उसी स्थानमें बायीं एडीको लगाकर, दहिनी एडीको पडूरर लगावे दोनों पैरोंकी अँगुलियोंको जंघा और पिंडलियोंके मध्यमें पकड रखे । और हृदयके ऊपर चार अंगुलपर ठुढीको लगाकर, मनको रोककर संसारी विषय वासनाको भुलाकर त्रिकुटीके ऊपर दृष्टिसे देखता हुआ बैठे।

आचमन और मार्जन और न्यास आदि क्रिया-के समय नीचेका पग तो ज्योंका त्यों रहने दे और ऊपरके हस्तादि भागोंसे सब क्रिया करे ।

यदि इसप्रकार आसन न लगासके तो सहज आसनसेही बैठे, सहज आसनकोही सुखासन भी कहते हैं, इसमें कोई विशेष विधि नहीं है । पलाटी मारकर जैसा सुखसे बैठा जावे तैसाही बैठे ।

इसप्रकार बैठकर प्रथम आचमनके सुमिरणको पढकर आचमन करे । पश्चात्-गुरुसहस्रनामके पाठ करनेके हेतु करन्यास और अंगन्यास करे । फिर ध्यानका श्लोक पढकर-मनही मन उसके अर्थका चिन्तनकर उसके अनुसार स्वरूपका मानसिक ध्यान करे । फिर गुरुसहस्र-नामका पाठ करे । इसके पश्चात् क्रमशः, गुरुशतक सार नाम,-नित्य :पाठकी एकोत्तरी,-प्रभातगायत्री,-ध्यान गायत्रीका-पाठ और विचार कर जलसे आंख और मुखको सिञ्चकर गुरु-मन्त्र .का , यथाशक्ति ध्यान और : जपकरे पश्चात्-ज्ञान ;गुदडी और प्रातःस्मरणीय स्तोत्रोंका पाठ करता हुआ प्रातःसंध्याको समाप्त करे।

फिर बन्दगीकर गृहस्थ हो तो भोजन आदि

१-देखो अष्टम विश्राममें ।

२-नवमविश्राम ।

कर अपनी संसार यात्राके कार्यमें लगे और साधु विरक्त हो तो स्वधर्मके शास्त्रोंके पठन पाठनमें लगे। अथवा मठधारी हो तो आये गये के आगत स्वागत और भोजन छाजनकी चिन्तामें लगे ॥

गृहस्थोंकी प्रातःसंध्या अधिक अधिकसे छःबजे तक समाप्त हो जाना चाहिये—क्योंकि सारा दिन भजन स्मरणमें रहना तो गृहत्यागी साधु वैरागियोंकाही काम है, गृहस्थोंका नहीं क्योंकि, भले,बुरे छोटे, बडे, साधु, वैरागी, संन्यासी, पशु पक्षी, देवता तथा उसका परिवार आदि सर्व हजारों जीव फोकट खानेवाले गृहस्थोंकेही आश्रय हैं। गृहत्यागी साधु पुरुषोंके आश्रय नहीं, उलटा साधु ही गृहस्थकीही आशा करते हैं। इसी हेतु दान, यज्ञ, सेवा आदिके अनेक धर्म्म गृहस्थोंके पीछे लगे हैं। सो सब द्रव्य विना कदापि सिद्ध नहीं हो सक्ते और खेती व्यापार नौकरी हुन्नर आदि व्यवहार

विना धन कहीं आकाश से नहीं गिरजाता, आज तक किसीको देखा नहीं गया कि बैठा २ आकाशसे धन गिरगयाहो। इस हेतु जो गृहस्थ व्यवहार न करै और सारे दिन भजनमेंही लगारहे तो उसका धर्म्म कैसे पूरा होवे ॥

इस हेतु गृहस्थोंको उचित है कि, मृत्युकी याद पूर्वक सत्य संभाषण आदि सद्गुणोंको धारणकर असत संभाषण आदि असद्गुणोंका निज शक्ति अनुसार त्यागकर, अपने गुरुपरम्परा धर्म्म अनुसार, गुरुदत्त नाम उच्चारण आदि सहित उपरोक्त विधिसे संध्याको छःबजेतकही समाप्तकर देवे ।

और त्यागी साधुओंको अपने पेटकी भी चिन्ता से रहित होकर स्वधर्मकी उन्नति और सत्योपदेके प्रचार और सांसारिक जीवोंको सत्योपदेश देनेके अतिरिक्त विशेष व्यवहारमें फँसना कलंक है ॥

इति तृतीयविश्रामः प्रातःसन्ध्याविधिः समाप्तः

अथ चतुर्थ विश्रामप्रारम्भः ।

जानने योग्य आवश्यक बातें ।

स्नान सन्ध्या आदिके पश्चात् यदि कोई बाधा न हो और अवकाश हो तो कुछ व्यायाम अर्थात् कसरत करना चाहिये ।

व्यायाम करनेसे शरीरमें हलकापन और काम करनेकी सामर्थ्य होती है, शरीर सुन्दर तथा दृढ होता है; कफादि दोषोंका क्षय और अग्निकी वृद्धि होती है । जिसका शरीर व्यायाम करके दृढ होगया हो उसको कोई रोग नहीं होता; विरुद्ध अन्न जो पेटमें भलीभाँति नहीं पच सकता मिहनती कसरती पुरुष उसे भी पचा लेता है । व्यायाम करनेवालेका शरीर शीघ्र वृद्ध नहीं होता। भारी पदार्थ खानेवालेको व्यायाम सदा ही हितकारी है । साधारणतःवसन्त ऋतु और शीतकालमें व्यायाम अत्यन्त लाभदायक होता है ।

वर्त्तमान कालमें व्यायामकी परिपाटी प्रायः अपढ और मूर्खोंमें रह गई है, और सतोगुणी लोगोंका वचन है कि, दण्ड मुद्गर आदि व्यायाम विशेष करनेसे तमोगुणकी वृद्धि होती है इसकारणसे भी अनेक रोगोंकी प्रवृत्ति उससे हट गई है; और आज कल दरिद्रताका विशेष राज्य फैलनेसे भारतवासियोंको उदर पूर्तिके लिये कठिन परिश्रम करना पडता है इसकारण वे विशेष व्यायाम करनेमें प्रवृत्त नहीं होते और उनको विशेष आवश्यकता भी नहीं परन्तु जिन लोगोंको किसी प्रकारका विशेष परिश्रम नहीं करना पडता जैसे प्रायःमठोंके महंत साधु अथवा सेठ साहूकार तथा जिनको मानसिक परिश्रम लिखना पढना विचार करना, पुस्तक रचना नई २ बातें शोधना आदि करना पडता है उन लोगोंको अपने २ अवकाशानुसार कुछ न कुछ व्यायाम अवश्य करना चाहिये और कुछ न होसके

तो सांझ सवेरे खुले मैदानोंकी हवामें माइल दो माइलतक टहलनेही निकल जावें ।

चतुर्द्दशवेग ।

विदित होकि, मनुष्य प्राणियोंके शरीरमें चौदह अतः वेग होते हैं । जिनको अनुचित रीति पर उत्पन्न करने और उत्पन्न हुए वेगको रोकनेसे अत्यन्त हानि होती है ।

वेगोंको रोकनेसे, बाहर निकलने योग्य पदार्थ शरीरके भीतर रह जानेके कारण अनेक दुखदायी रोगोंकी उत्पत्तिद्वारा अत्यन्त दुख उठाना पडता है । फिर रोगी और दुखी मनुष्यसे भजन स्मरणकी आशा ही क्याहै ? इस कारण उन उचित वेगोंके और अनुचित वरतावका वर्णन कर उनके लाभ हानिको जाननेके हेतु थोडा लिखताहूं।मल और मूत्रके वेग रोकनेके हानि लाभका थोडासा वर्णन द्वितीय अध्याय में होचुका है । शेषका यहां लिखता हूं ।

१ भूख—जब पेटमें आहार नहीं रहता है तब जठराग्नि प्रदीप्त होती है—उसीको भूख कहते हैं। यदि भूख लगनेपर आहार शरीरको न मिले तो शरीर शक्ति हीन होजाता है और अंग भंग, (शरीरका टूटना अर्थात् शरीरका दुखना) अरुचि, ग्लानि, श्रम, तन्द्रा, नेत्रोंमें दुर्बलता और रुधिर मांस आदि शरीरके धातुओंका दाह होता है। इस कारण भूख लगनेपर आहार अवश्य ग्रहण करना चाहिये।

भूख शरीरके पोषणमें परम उपयोगी होनेपर भी यदि इसका अनुचित वेग उत्पन्न किया जावे, (जैसा प्रायः बुद्धिसागर लोग भंग आदि निषेध पदार्थोंको खाकर भूख प्रज्वलित करनेका यत्न करते है) तो उससे अत्यन्त हानि होती है।

२ प्यास—लगने पर जल अवश्यही पीना चाहिये जो प्यास लगनेपरभी जल नहीं पीते उनको

कण्ठ सूखने, मुख सूखने, रुधिर सूखने, हृदयमें व्यथा और दाह तथा बधिरापनसे दुखी होना पडता है।

रूखे और गरम वस्तुओंके खानेसे प्यास विशेष रूपसे उत्पन्न होनेपर और अधिक जल पीनेसे भी दुख उठाना पडता है। इस हेतु ऐसे पदार्थोंके सेवनसे बचना चाहिये।

३ अधोवात–अर्थात् अपान वायुके वेगको रोकनेसे, गुल्म, उदावर्त, शूल, ग्लानि, वायुबन्ध, मूत्रबन्ध, मलबंध, दृष्टि और अग्निका नाश तथा हृदय रोग आदि उत्पन्न होते हैं।

४ छींक–के रोकनेसे शिरमें शूल, इन्द्रियों को दुर्बलता घबराहट और वातरोग आदि दुखः दायी रोग उत्पन्न होते हैं।

५ नींदके रोकनेसे, मोह, शिरका भारीपन, नेत्रोंका भारी होना, जंभाई, अंगोंका टूटना, तन्द्र

और अन्नका न पचना आदि अवगुण उत्पन्न होकर महा दुखदायक होजातेहैं ।

६—वमन—के रोकनेसे, विसर्प, कोढ, खाज, पांडुरोग, ज्वर, खांसी, श्वास आदि कठिन रोगों की उत्पत्ति होती है ॥

७—खांसी—के रोकनेसे खांसीकी वृद्धि, श्वास, अरुचि, हृद्रोग, शोष, हिचकी आदि उत्पन्न होकर दुखदाई होतेहैं ।

८—जम्भाई—के रोकनेसे भी छींकरोकनेके समानही दुख होता है ।

९—आंसू—के रोकनेसे पीनस, नेत्ररोग, शिरःशूल, हृदय शूल, अरुचि, भ्रम, गुल्म इत्यादि रोग उत्पन्न होतेहैं ।

१०—श्रम—के वेगको रोकनेसे गुल्म, हृद्रोग और मोह उत्पन्न होता है ।

११-श्वास-के वेगको रोकनेसे श्रम भी रोक-
के समानही दुखदायक होताहै ॥

१२-काम-के वेगको एकदम रोकनेसे अनेक
मेह आदि कठिन रोगोंकी उत्पत्ति होतीहै और
समें अत्यन्त लुब्ध होनेसे अनन्त कष्ट और दुख
उठाना पडताहै इस कारण यत्न पूर्वक गृहस्थ स्व-
र्म मर्यादासे इसका सेवन और-त्यागी व्रत, उप-
ास और मिताहार आदि द्वारा इसको जीतकर
वेवेक विचार द्वारा इसको अपने वशमें रक्खै।
उपरोक्त१२ और मलमूत्र२ मिलकर१४वेग हुये।

इनके अतिरिक्त, जल, अन्न, घर आदि आव-
श्यकीय पदार्थ कैसा और किसी प्रकार काममें
लाना चाहिये इसका पूरा विवरण वैद्यकशास्त्रोंसे
देखकर निश्चय करना चाहिये।

इति चतुर्थविश्रामः।

अथ पञ्चमविश्रामप्रारम्भः ।

भोजन विधि ।

प्रथमं भक्ष्याभक्ष्यपदार्थनिर्णयः ।

चौपाई ।

दूजे भोजन कर्म सुधारे ।
अंकुरज भक्षे जीव प्रतिपारे ॥
जीव अजीवहिं करे विचारा ।
जड चेतन जोहिं संसारा ॥ १ ॥
जहाँ जीव तहँ चेतन होई ।
दुख सुख सब विधि जाने सोई ॥
जैसे उष्ण अनलको कर्मा ।
सदा शीतहै जलको धर्मा ॥ २ ॥
सूर प्रकाश भिन्न नाहिं दोई ।
ऐसे जीव धर्म चिद् होई ॥

जल थल पावक पवन अकाशा।
सो सर्व सर्ग जीवनको वासा ॥३॥
सकल पसारा जडका होई।
पाँचो तत्त्व कहावै सोई॥
जैसे केश उष्मज है देहा।
ऐसे अंकुरज पृथ्वी नेहा ॥ ४ ॥
शून्य सुषुप्ति अस्ति समाना।
तेहि आश्रित अंकुरज उतपाना॥
पूरण अस्ति पिंड ब्रह्मण्डा।
भरे अवस्था खंड औ पिंडा॥ ५ ॥
जागृत स्वप्न जहाँ व्यवहारा।
नहीं तहाँ अंकुरज पसारा॥
हरे सुखे जो शंका होई।
ताकर भेद तुम लेहु बिलोई॥ ६ ॥
चिकुर बढाये बहु विधि बाढे।
अनल बढाये छिनमें डाढे॥

अनल दीपको तेल अधारा ।
पवन थीरमें करत बिहारा ॥ ७ ॥
पवन झकोर ते जाइ बुझाई ।
अंधार पाय पुनि देर रहाई ॥
लेहु चर्म है चिकुर अधारा ।
जल पृथ्वी अंकुरजको सारा ॥ ८ ॥
पांच तत्त्वको उधमज आहीं ।
इनके भक्षे दोष कछु नाहीं ॥
नानारूप जीव क्रिम होई ।
जल थल अंकुरज रहा समोई ॥ ९ ॥
दुख दिये ते बड अपराधा ।
दयाविचार ते होखे बाधा ॥
दया धर्म्म हृदय जेहि नाहीं ।
मुये नरक सो यमपुर जाहीं ॥ १० ॥

साखी ।

अंकुरन भखे सो मानवा,
मांस भखे सो श्वान ।
जीव बधे सो काल है,
सदा नरक प्रमाण ॥ १ ॥
जीवत जीव मुर्दा करे,
कर्महिं भया कसाई ।
मरी खाय चमार भया,
अधम कर्मके दाई ॥ २ ॥

मानुष विचार ॥

उपरोक्त वचनोंका अर्थ स्पष्ट है ।

संक्षेप आशय यह है कि, मनुष्यको चलने, फिरने, श्वास लेनेवाले, जागृत और स्वप्न अवस्थाको प्राप्त होनेवाले प्राणियोंकी रक्षा करना और अंकुरन पदार्थोंका अपने कार्य्यानुसार ग्रहण करना

चाहिये अर्थात् अंकुरज जो जड पदार्थ हैं उन्हींका भक्षण करना चाहिये, परन्तु केवल इतने ही स्थूल बातोंको जानकर और इसीका प्रमाण देकर, जिह्वालम्पट मूर्ख लोग अंकुरजके नामसे अनेक अभक्ष्य पदार्थोंका ग्रहण करते हैं और तिस परभी अपनेको वैष्णव और मत्स्य मांसत्यागी बतलाते हैं इसी कारणसे उपरोक्त वचनोंमें यह वचन भी कहा है कि—

नानारूप जीव कृमि होई।
जल थल अंकुरज रहा समोई॥

जिसका आशय है, कि, जीव अर्थात् सुख दुखका अनुभव करनेवाला चेतन नाना प्रकारके कीट पतंग आदि शरीरको धारण करके अंकुरजमें वास करता है सो सदा दया विचार द्वारा उनकी रक्षा करनी चाहिये उनको कदापि भी दुःख देना नहीं चाहिये।

चौपाई।

मद्यमांस भक्ष मलिन बखानी।
ताहि न ग्रहण करै नर ज्ञानी॥
निज २ हिरदय विचारो येही।
मल अरु मूत्रकी जेती देही॥
सकल अभक्ष घिनाव सोई।
चहूँ खानि जल मल ते होई॥
शुद्ध अशुद्ध ताहि पहिचानी।
जल कृत शुद्ध अशुद्ध मलानी॥
मलकृत जो जीवजन्तु उपाये।
हो अज्ञान ताहिके खाये॥
जलकृत जो फल अन्न अंकूरा।
ताते भूखको दुःख कर दूरा॥
नर पशुजीव जंतु खग नाना।
सबको दुख सुख एक समाना॥

नर पशु खग जो मांसके भक्षक ।
सो नहिं कबहूं जीवके रक्षक ॥
जिनके हृदय दाया नाहीं ।
सोई अधोगति मांहिं समाहीं ॥
मांस अहारिके कस दाया ।
एक खाय बहु मारि गिराया ॥
जो कोइ काहूको दुख देहैं ।
बदला तासु आप शिर लैहैं ॥
सुरापान अरु मांस अहारी ।
नरकधाम सो अवश्य सिधारी ॥
कबीर भा० प्र० ॥

यद्यपि संसारमें कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है जिसमें किसी न किसी शरीरसे जीव वास न करता हो तथापि स्थूल दृष्टिसे प्रत्यक्ष हिंसायुक्त देख पढने-वाले कुछ अंकुरज और जड पदार्थोंका वर्णन करता हूँ—जैसे—

वेडका फल, पीपलका[2] फल, पाकडका[3] फल, कठूमरका[4] फल, और गूंलर[5] का फल, सदा अभक्ष्य है कारण कि, इन पांचो फलोंमें असंख्य सूक्ष्म कीडे भरे होते है। जिनकी गिनती सामर्थ्यसे बाहर है। एक फलके खानेसे जिसमें अगिनतीं जीवों की हत्या होवे उसे विवेकी कब स्वीकार करेगा। यदि भूखसे प्राणान्त तकका समय आगयाहो तब भी इनको कदापि न खावे।

इसी प्रकारसे, मदिरा, मांस, मधु और माखन भी अभक्ष्य है; इनका भिन्न२ वर्णन करता हूँ।

१—वटको वडभी कहते हैं गुजरातीमें भी यही नाम है।

२—पीपलको गुजरातीमें पीपलो कहते हैं।

३—पाकडको उत्तर भारतमें पिलखन और गुजरात में पीपये (पापये) कहते हैं।

४—कठूमरको बिहार प्रदेशमें कोठाडूमर और गुजरात में कालो ऊंमरो कहते हैं।

५—गूलरको गुजरातमें ऊंबरो कहते हैं।

मादक पदार्थ ।

१ मद्यनाम है मादक पदार्थका जिनके खाने अथवा पीनेसे नशा उत्पन्न हो, बुद्धि अथवा शारीरिक आरोग्यता आदिमें बाधा उपस्थित हो ऐसे मादक पदार्थों को कदापि भक्षण न करे ऐसे पदार्थों में मदिरा, गांजा, भङ्ग चरस, तम्बाकू, अफीम और माजूम आदि हैं । इन सब पदार्थों को खाने पीनेसे अनन्त जीवोंकी हत्या के अतिरिक्त इनके धारण करने वालों को प्रत्यक्ष अनन्त दुख और कष्ट उठाना पडता है । जैसा—

यद्यपि ये मादक पदार्थ औषधीरूपसेअनेकरोगोंकी औषधी स्वरूपहैं;परन्तु बिना रोगके अत्यन्त आवश्यकता बिना इनका सेवन मनुष्य की बुद्धिको ऐसा स्थूल बना देताहै कि, उनकी बुद्धि सूक्ष्म विचारमें कदापि प्रवेश नहीं कर सकती, मादक पदार्थके सेवन करने

वालेके मनमें सदाही नाना प्रकारके बुरे संकल्प उठा करते हैं । उन्हीं संकल्पोंके अनुसार बहुधा उनकी प्रवृत्ति भी हुआ करती है, जिस करके अनेक उपद्रवों द्वारा विपत्तिमें फसकर उनको कष्ट भोगना पडता है। मादक पदार्थ सेवन करनेवाले उन्मत्तके समान अव्यवस्थित होते हैं यदि उनको ज्ञान विवेककी बात सुनाई जावे तो वे उनको प्रथम तो सुनतेही नहीं यदि दैवसंयोगसे सुनभीलें तो उसे समझते नहीं, यदि समझ भी लें तो उसको व्यवहृत करना उनके लिये अत्यन्त दुस्तर है। क्योंकि मादक पदार्थ स्वभावतः अपने सेवन करनेवालेको ऐसा अपने वशमें करलेते हैं कि, उसे कहीं का भी नहीं रखते। मादक पदार्थ सेवन करनेवाले मनुष्यसे उसके साथके रहनेवाले, उसके घर अथवा

मठके पुत्रादि या शिष्यादि लोग सदा भयभीत रहते हैं। बाहरके, उनसे किसी प्रकारसेभी, सम्बन्ध

---

१ प्रायः यह बात देखनेंमें आतीहै कि, तम्बाकू पीने-वाले जब सवेरे सोकर उठतेहैं तो भजन स्मरणकी बात तो अलग रही उठनेके साथही लगे हाथों शिष्योंको पुकारकर कहते हैं "ओ! फलाने तम्बाकू लाओ, सूखा लाओ, गूंढाकू,लाओ" यदि उनके हाँक मारने पर हां साहब लाताहूँ कहकर शिष्य उठा और उनने देखलिया तब तो कुशल है, लगे कुछ एकाध साखी अथवा प्रभाती आदि बोलने परन्तु अभी साखी भी पूरी नहीं हुई कि, तम्बाकूकी तलब हुई और सब भूलकर फिर पुकारा। यदि तम्बाकू सामने आगया तो कुशलहै नहीं तो अब क्या था लगा सच्चा भजन होने दशबीस गाली और होसकतातो दशपांचलप्पड लुप्पड लगाकर साधक विचारेकी खबर ले ली। बस भजन पूरा हुआ! इसीप्रकार गृहस्थ लोगभी अपनी स्त्री पुत्र और नौकरोंकी खबर लेकर प्रभात स्मरणको पूरा करतेहैं, यह तो बात हुई अपने स्थानपर रहने वालोंकी परन्तु जब ये लोग परदेशमें विशेषकर जब अकेल हों तब देखनेका मजा

रखनेवाले भी त्रास पाते हैं । मादक पदार्थ सेवन करनेवाले स्वभावसेही निरुद्योगी और आलसी होते हैं इसी कारणसे उनके शिर : दरिद्रताकी पगडी बँधती हैं और दीनता उनकी गलेकी हार होती है । दरिद्रता आनेपर जब उन्हें इच्छानुसार मादक पदार्थ प्राप्त नहीं होता है तब वे द्रव्यप्राप्तिके लिये

आताहै, जिसके पास दियासलाई है वह तो प्रभातही उठ कर कपडोंको फाडकर जलाताहै और तम्बाकूके वशमें पडा हुआ उसकी दुर्गन्धीकोभी अतरके समान मानता है; जिसके पास यह सामग्री नहीं है वह इधर उधर धुआँ उठनेवालोंके घर जाकर उनसे आग माँगनेपर झिडकियाँ और गालियाँ सहता है, दश पांच जगह गाली सहकर यदि किसी जगह आग मिलगई तो अब अपने को पूर्ण भाग्यशाली मानकर हँसते हुए मुँहसे दुर्गन्ध धुआं निकालते हुए अपने को चक्र वर्ती राजा समझताहै, यह तो केवल तम्याकूवालोंकीही सूक्ष्म दुर्दशा बताई गांजा आदिके व्यवसनियोंकी तो इसस भी अधिक दुर्गति होती नित्य देखी जातीहै ॥

अनेक कुवृत्तिमें फसकर निर्लज्जतासे अपनी इच्छा पूर्ण करनेका यत्न करते हैं। अन्तमें उसीमें उनका अन्त होता है और मादक पदार्थके प्रभावसे अनेक घृणित कठिन रोगोंमें फसकर अपना जीवन नष्ट करते हैं। मादक पदार्थका व्यसन ऐसा कठिन रोग है कि उससे छूटना अत्यन्त कठिन है। प्रायः तो इस रोगसे मुक्त होतेही नहीं क्योंकि, लगा हुआ व्यसन अपने व्यसनीको ऐसा जकडकर बन्धनमें डालता है कि, उसे छोडनेकी सामर्थ्य नहीं रहती, मादक पदार्थ सेवन करनेवाले विद्वानोंके बीचमें बैठकर सभ्यतासे बात करना तो अलग रहे केवल बैठकर श्रवण करनाभी नहींजानते मादक पदार्थके सेवन करनेवालोंकी बातका कुछ ठिकाना नहीं रहता इसी कारणसे उनका कोई विश्वास नहीं करता; केवल मूर्ख दिहाती और

दूसरे व्यसनियोंके वीचमें वैठकरशिर पैरविना गपाटा मारना और उन्हींपर असभ्य घुडकियों द्वारा प्रभाव जमाना जानते हैं। मादक पदार्थ सेवन करनेवाले वहुत खानेवाले और क्रोधी होते हैं, इस कारण से वाप दादा अथवा गुरु द्वारा, प्राप्त मठ और घरके सव द्रव्योंका तत्कालही नाश होजाता है। मादक पदार्थ सेवन करनेवालेको अधिक निद्रालु होनेके कारण घर वाहर सर्वत्रही चोरोंको उन्हें लूटनेका वडा अवसर मिलता है, मादक पदार्थ सेवन करने वाले प्रायः नीच दुष्ट और नीच कर्म करने वाले हुआ करते हैं इस कारणसे मादक पदार्थका व्यसनी. उनकी संगति करके अनन्त नीच कर्मका कर्त्ता वनताहै, मादक पदार्थके प्रतापसे कितने नीच स्थानोंमें गिरते, गहरे पानी आदि प्राणघातक स्थानोंमें जाकर अथवा राजनीति विरुद्ध कार्य्य करके प्राणान्तकके दण्डको भोगते है।

इसी प्रकारसे मादक पदार्थके सेवन करनेके औगुणका वर्णन कबीर मन्शूर, साखी, कबीर भानु प्रकाश आदि ग्रन्थोंमें भलीप्रकार सत्यगुरुकबीर साह-बकी श्रीमुख वाणीके प्रमाण सहित लिखाहै, सत्यमार-गीको वहांसे भी देखना चाहिये और उसीके ऊपर चलनेका प्रयत्न करना चाहिये । जो लोग सद्-गुरुका दम भरतेहैं, सद्गुरु कबीर साहबका नाम लेकर जीवन व्यतीत करते हैं, उन्हें सत्यगुरुके वचनका अनादर करके भी अपनेको कबीरपन्थी कहने कहलानेमें लज्जा करनी उचित है । इस हेतु कहता हूँ प्यारे ! और पूज्य सत्य धर्मावलम्बियो, मादक पदार्थोंका सेवनकर अपने जीवन और धर्मको नष्ट मत करो, उत्तम मनुष्य शरीररूप रत्नको कौडीके मोल व्यर्थ खराब मत करो ।

मांस।

मांसकी प्राप्तिके लिये जीवित प्राणियोंको वध करनेकी आवश्यकता पडती है, जिस कारणसे मांसाहारियोंको जीव वधरूप महान हिंसाका भागी होना पडता है और जीव वध करना काम कसाई (बूचडों) का है इसी कारणसे गुरु कहते है कि,

दोहा।

जीवत जीव मुर्दा करै,
कर्महि भया कसाइ।

इस कारणसे मांस खाना नहीं चाहिये। परन्तु कितने जिह्वालम्पट नानाप्रकारकी मिथ्या वितण्डासे सिद्ध करनेका प्रयत्न करते है कि हम मारते नहीं विकता हुआ लेकर खाते हैं, उनको प्रथम यह विचारना चाहिये कि जीवधारियोंमें कौन २ प्राणी मांसके खानेवाले हैं और संसारमें सामान्य रीतिसे उनकी प्रतिष्ठा कहांतक होती है।

पशुओंमें व्याघ्र आदि, पक्षियोंमें गिद्ध और काग आदि और मनुष्योंमें चमार आदि नीच जातिके लोग ही मुर्दाको उठाकर लेजाते और खाते हैं। यदि भला आदमी भी वही काम करने लगजाय और स्वयं मारकर खाने लगजावे तो व्याघ्र कुत्ता लोमडी और बाज आदि अथवा कसाईके पदको प्राप्त होवे और मारे अथवा मरेहुएका मांस खाकर चमारके पदको प्राप्त होताहै । इसी वास्ते उपरोक्त साखीकी पूर्ति करते हुए गुरु कहतेहै कि,

(शेष अर्द्ध दोहा)

मरी खाय चमार भया ।
अधम कर्म्मके दाइ ॥

उत्तम कुल और बुद्धि पाकरके भी जो मनुष्य जीव हिंसा करते हैं और मांस खाते हैं वे अपने नीच कर्मके प्रभावसे जीवहिंसा कर प्रथम कसाई

पश्चात् उसको खाकर चमार होजाते हैं इसकारण किसी मनुष्य अथवा पशु, पक्षी अथवा क्रिमि, कीट तथा मत्यादि जलचर इत्यादि किसी भी श्वासधारी प्राणीको मारने रूप हिंसा कदापि करना उचित नहीं । मारना तो अलग बात है अपने कल्याणकी कामनावाले मनुष्यको किसी भी जीव-धारीको किसी भी प्रकारसे अपने जाननेमें दुखाना नहीं चाहिये, सोचना चाहिये कि, यदि अपनेको कोई मारने अथवा दुख देने आवे तौ कैसा दुख होता है, इसी प्रकार यदि हम किसीको मारेंगे अथवा दुःख देंगे तो उन्हें भी वैसेही दुःख होगा। किसी भी चलने फिरनेवाले श्वासधारी जीवोंको मारने और दुख देनेका नाम ही हिंसा है। हिंसा किया हुआ कदापि क्षमा नहीं होता अवश्य इसका फल भोगना होता है। जो जानकरके हिंसा करता

है, उसका संस्कार उसके हृदयमें बीजरूप होकर रहता है, सो शरीरके नाश होते समय जीवनमें किये यावत् शुभ अशुभ कर्म है सबका स्मरण होता है; इसी स्मरणमें शरीर छूटकर अन्य शरीर प्राप्त होनेपर, जिस प्रकारसे बीजसे वृक्ष और उसमें फल उत्पन्न होता है, उसी प्रकार अपने किये हुए कर्मरूप बीजद्वारा, शरीररूप वृक्ष उत्पन्न होकर, शुभ अशुभ कर्मोंका परिणामरूप सुख तथा दुख-रूप फल उत्पन्न होता है। और वह उनके कर्त्ताको अवश्य भोग करना पडता है उसी भोगको यमयातना कहते है; इसी प्रकारसे एक जन्मका किया हुआ हिंसादि पाप कर्म्म अनेक जन्मोंमें भोग करना पडता है। इस हेतु विवेकी पुरुषोंको सदा ऐसा कार्य्य करना चाहिये जिससे स्व और परमात्माको सुखकी प्राप्ति होवे । इसीको परमार्थ कहते हैं और यही कल्याणका मार्ग है ।

कोई कोई हठी तर्कवादी मांसभक्षी लोग सिंह गिद्ध आदि हिंसक प्राणियोंका दृष्टांत देकर कहतेहैं, कि, यदि मांस अथवा जीवहत्या अभक्ष्य अथवा पाप उत्पादक होते तो उन प्राणियोंको भी पाप लगता सो उनको विचारद्वारा यह समझना और हठ त्याग करके विवेक करना चाहिये कि उन क्रूर तामसी प्राणियोंका प्रकृतिने वही भक्ष्य रचाहे और उनका वैसेही स्वभाव बनाकर उन्हें उनके उपयोगी सामग्री दे दी है, उन्हें उन पाशविक धर्मोंको जाननेके सिवाय सारासार विचारिणी बुद्धि जिससे मनुष्य सर्व प्राणियोंमें श्रेष्ठ कहलाता है, दीही नहीं है ।

इस कारण उनकी बराबरी न करके विवेकी मनुष्योंको कदापि उनके समान बननेकी इच्छा करनी नहीं चाहिये। कोई२ महाशय वेदादिके आश्रय

यज्ञादि कर्मोंमें हिंसा करना सिद्ध करनेके लिये फाँफाँ मारते हैं सो उनका केवल दुराग्रह और छल तथा वितण्डारूप है। वेदमें जो यज्ञादिकोंमें भी पशुओंको स्पर्श करता हुआ अपने आत्माके समानही माननेको कहा है जैसा ऋग्वेदमें आश्वलायन शाखा की दूसरी पंचिकाके—आठवें खण्डमें यह कहा है कि,

"पुरुषं वै देवाः पशुमालभंत तस्मादालब्धा-न्मेधउदक्रामततस्मात्एतेषांनाश्नीयात्"

इसका आशय है कि, यज्ञोंमें प्राणियोंके हृदयको स्पर्श कर "अपनी नाडी रूप धमनीके समान उस की धमनीहै" ऐसा जाने इसीको आलभन कहते हैं। भला जिन यज्ञोंमें पशुके अंगोंसे अपने अंगकी समताकर उनको अपने समान माननेको लिखाहै उनमें हिंसाकर उनके मांसोंका खाना कितना पा

रूप होगा ? ऐसेही श्रीमद्भागवतके एकादश स्कंध के अन्तर्गत पांचवें अध्यायके तेरहसे पन्द्रहवें श्लोकमें यज्ञका वर्णन करते हुए कहाहै,कि, "तथा पशोरालभनं न हिंसा" इत्यादि वचन कहा है। यज्ञमें जो२ प्राणी ग्रहण किये जाते हैं उन२ पशुओं को लेकर उनका आलमन अर्थात् स्पर्श करके किसी चिह्न से चिह्नित करके छोड देवें।

स्वासयुक्त प्राणियोंसे ग्रहण करने योग्य केवल दुग्ध ही है वह भी उनके बच्चों की रक्षा पूर्वक ही ग्रहण करना चाहिये। यज्ञादिकोंमें अथवा किसी अवस्थामें भी मांस खाना सदा ही अपवित्र और राक्षस आदि अपवित्र प्राणियों का कर्तव्य है क्योंकि जगतमें प्रत्यक्ष देखनेमें आताहै कि, व्याघ्रादि मांसभक्षी पशु क्रूर और निरुपयोगी होते हैं। गाय भैंस, घोडा, ऊंट, हाथी, बकरा, बकरी आदि पशु मांस भक्षण नहीं करते केवल अंकुरज वन-

स्पति आदिके ऊपरही जीवन निर्वाह करते हैं वे कैसे शान्त और सौम्य होते हैं । मनुष्योंके अत्यंत उपयोगी होते है ।

यह प्रत्यक्ष मांसभक्षी, और वनस्पति भक्षी पशुओंके स्वभाव का भेद सबको ज्ञात और अनुभव है। इसी प्रकार जो मनुष्य भी मांस ग्रहण नहीं करेगा वनस्पति नाज आदि पदार्थोंको खावेगा तो उपरोक्त उपयोगी प्राणियोंके समान सर्वको सुखदायक और अपने आत्मा का उद्धारक होगा जो इससे विरुद्ध करेगा वह उपरोक्त मांसाहारी पशुओंके समान हिंसक और निरुपयोगी होगा । मांसभक्षी प्राणियों के हृदयमें दया का तो मूल ही नहीं होता । उनका मुखसे दया प्रगट करना अथवा वेष बनाना वैसे ही है जैसा "कोई बिल्ला साधु वेप बनाकर चूहों की रक्षाकी प्रतिज्ञा करे " सो ये सब बातें कपट मात्र ही हैं ।

मनुष्य सर्व प्राणियोंका राजा है ऐसा सर्व धर्मवालोंने माना है अरबीमें भी इसे " अशरफुल मखलूकात" कहते हैं, राजानाम है प्रजा की रक्षा करने वाले का अथवा–"अशरफ" कहते हैं सर्व में श्रेष्ठ होवे उसको। यदि मनुष्य राजा और श्रेष्ठ होकर भी प्रजाको अथवा अपनेसे दीन दु· खियोंको दुख देवे अथवा मारकर खावे तो उसको श्रेष्ठ कैसे कह सकेंगे। इस हेतु जो मनुष्य कहलाने का अभिमान रखता हो अर्थात् अपने को मनुष्य कहता हो उसे उचित है कि मांस कभी भक्षण न करे, किसी प्राणीको दुख न देवे वरन् प्राणियों को दुख देने वाले और उनकी हिंसा करने वालों को युक्ति पूर्वक उन दुष्ट कर्मोंसे रोकने का यत्न करे। तभी उसके श्रेष्ठ और राजपद की रक्षा हो सकती है। नहीं तो निर्दई राक्षस के सिवाय इस

का दूसरा क्या नाम हो सकता है। इस हेतु कभी मांस खानां उचित नहीं।

ईश्वर की आज्ञा अर्थात् प्राकृतिक नियम (Nature) द्वारा भी यह मनुष्य मांसाहारी बनाया गया हो सो नहीं जान पडता है। क्योंकि जिस समय मनुष्य की उत्पत्ति होती है उस समय इसके पास न तो कोई हथियार होता है न इसको मांसादि खाने की सामर्थ्य होती है। अर्थात् इसके शरीरकी बनावट द्वारा प्रत्यक्ष सिद्ध है कि, यह मांस खाने और शिकार करने योग्य नहीं बना है। केवल स्वयं उत्पन्न हुवे अंकुरज पदार्थों को उखाडकर अथवा अन्य फल मूलादि हाथसे तोडकर खानेके योग्य ही इसके हाथ और दांत आदि अवयव बनेहै। यद्यपि अब खेती आदि द्वारा यह उन्हीं नाजों को उत्पन्न करता है और उनके

उपयोगी नाना प्रकारकी सामग्री हल आदि भी इसने वनाया है। परन्तु प्राकृतिक नियम द्वारा तो केवल स्वयम् उत्पन्न वनस्पति के ही खाने योग्य वनाया गया है। यदि सर्व प्रकार की सामग्री इससे छूट जावे और केवल यही जङ्गलमें रह जावे तो उस समय यह अपने हाथों द्वारा फल फूल आदिको ग्रहण कर जवडोंसे चवा कर भक्षण करेगा।

इस प्रकारसे ईश्वरीय नियम द्वारा यह मनुष्य मांसाहारी कि, शिकारी उत्पन्न नहीं हुआहै इस वातका विचार वारम्वार करनेसे भली प्रकार सिद्ध हो जावेगा कि - मांस खाना मनुष्य की प्रकृति (Narute) के विरुद्ध है।

मनुष्य सव प्राणियोंमें केवल विचारशक्ति के कारण ही श्रेष्ठहै।इसलिए विचार करही सदा कार्य करना इसका परम धर्म है। यदि मनुष्य अपने

शरीर अथवा पुत्रआदिकी रक्षा अथवा सुखके लिए निर्दई होकर पर प्राणियोंको दुख देगा अथवा उन का मांस खायगा तो हिंसक पशुओं और राक्षसों में और इसमें क्या भेद होगा। क्योंकि, व्याघ्र आदि हिंसक पशु और राक्षस आदि हिंसक प्राण- धारी भी अपने शरीर और अपनी सन्तानके मोह में रह कर अपने और अपने सन्तानकी रक्षा करते है और अन्य गाय आदि प्राणियों तथा उनकी सन्तान के ऊपर दया नहीं रखते उन्हें मारकर खाते और अपने बच्चोंको खिलाते है। इस हेतु मनुष्यों को सदा दयायुक्त रहना चाहिये। जिसके हृदय में दया नहीं है वह सर्व प्राणियोंमें "आत्मवत् सर्वभूतेषु" की दृष्टि कदापि स्थापित नहीं कर सकता। और ऐसे हुये विना गुरू की भक्ति होनी कदापि सम्भव नहीं। गुरू की भक्ति बिना भयका छूटना अत्यन्त

दुस्तर है और मनुष्य शरीरमें यदि यह पद प्राप्त नही हुआ तो मनुष्य जन्म ही निष्फलहै ।

इस कारण मनुष्य जन्म की सार्थकता के हेतु मनुष्य को अवश्य दयावान् और सौम्य होना चाहिये । सो मांस त्यागे विना दया और सौम्यता का आना दुस्तर है ।

कितने मूर्ख यह कहते हैं कि इस जगत में पशु की वृद्धि हो जानेसे मनुष्यको दुखदाई हो जावेंगे इस हेतु इनको मारकर खाना चाहिये । सो यह कहना अत्यन्त मूर्खता भरी बात है क्योंकि ईश्वरीय नियम ही ऐसा नहीं है कि, किसी की मर्य्यादा से अधिक वृद्धि हो जावे परन्तु परमात्मा की सृष्टिमें कोई पदार्थ भी मर्यादा से बाहर नहीं जाते । जहां जिसकी वृद्धि होती है वहां ही उस का नाश भी हो जाता है । देखो महाभारत के पश्चात् यादवों की अत्यन्त वृद्धि हुई तो उनका

नाश भी ऐसा हुआ कि, फिर नाम लेवा पानी देवा तक भी कोई नहीं रहा । वर्तमान में भारत-वर्षमें मनुष्योंकी वृद्धि विशेष हो रही थी तो ईश्वर ने प्लेग और अकाल आदि द्वारा इनका संहार करके इनकी गिनती को बराबर करने का विचार किया है ।

इस हेतु हे विचारवानों यदि आपको अपने कल्याण की इच्छा हो तो सर्व कुतर्कों को त्यागकर मांस मदिरा आदि अभक्ष्य पदार्थों से दूर रहिये ।

जिन धर्मशास्त्रों और धर्म ग्रन्थोंमें हिंसा करना मांस खाना अथवा किसी प्रकार से भी मद्यमांस का उपयोग लिखा हो उनको धर्म ग्रन्थ कदापि नहीं जानना वरन्, ऐसा जानना कि मांस खाने के लालची, मर्यादाहीन, अज्ञानी, नास्तिक, वाम-मार्गी और पशुओं के वैरी मिथ्या विषय में रमण

करनेवालों ने लिखा है, उनकी धूर्तता में कदापि मत आना और ऐसी बात यदि वह वेद की गाथा-ओंमें अथवा साक्षात् सद्गुरू के नाम की छाप सहित वाणी में मिले तो उसे भी अत्यन्त तुच्छ जानकर सदा ही त्याग करना ।

माखन यदि निकालने के पश्चात् तत्काल ही खा लिया जावे तो कोई हर्ज नहीं परन्तु माखन निकाल कर दोचार घडी तक रक्खा रहे और वह न काम में लाया जावे न तपा लिया जावे तो तीन घडी अर्थात् सवा घन्टे पश्चात् उसमें ऐसे सूक्ष्म और सजीव परिमाणु आकर इकठे हो जाते हैं कि जिससे तपाये विना उनका उपयोग करनेसे अनेक विकार उत्पन्न होने का भय है । उसमें उत्पन्न हुए सूक्ष्म जन्तुओंकी हिंसा द्वारा महापाप होना सम्भव है, इस कारणसे माखनको छाछसे निकालकर तत्काल ही खा लेवे अथवा तपाकर उसका घी बनाकर खावे ।

माखनमें ऐसे अवगुण होनेके कारण उसे अभक्ष्य कहा है ।

मधु ।

मधु—की प्राप्तिमें अनेक जीवोंकी हत्या होती है और हाडविना अनेक मक्खियां उसमें निचोडी जाती हैं जिससे उनके शरीरका अर्क भी मधुमें आजाताहै इस कारण उसके भक्षण करनेसे अनेक हत्याओंका सम्भव है । इसी हेतु इसको अभक्ष्य कहा ।

इसीप्रकार—सिरका, बर्फ, बनौरी आदि पदार्थ—तथा जिन वनस्पतियोंमें कीडे पडे हों, जो सड गये हों, दुर्गंधि आती हो; ठंढा भात—(चावल) ठंढी रोटी, दाल और शाक आदि जिनको बनेहुये बहुत देर होगई हो, जिनका रस ठंडा पड गया हो ऐसे भी पदार्थ अभक्ष्यहैं ।

देखो भावप्रकाशमें माखनका गुण इस प्रकार लिखाहै—

नवीननवनीत गुणाः।

नवनीतमिदं नवमेव हितं हिमशुक्रबला-
नलकांतिकरम्। ग्रहणात्मकमार्दितपित्तमरु-
द्गुदजक्षतजक्षयकासहरम्॥

अर्थ—ताजा माखन—हितकारी, शीतल, शुक्र-जनक, बलकारक, अग्निप्रदीपक, कांतिकारक, तथा संग्रहणी, लकवा, पित्त, वात, गुदरोग, क्षत-रोग, क्षयरोग और खांसीको दूर करता है और पुराना अर्थात् १ घंटेके पश्चात्का नवनीत—

सक्षारकटुकाम्लत्वाच्छर्द्यर्शःकुष्ठकारकम्।
श्लेष्मलं गुरु मेदस्यं नवनीतं चिरंतनम्॥

अर्थ—पुराना माखन खारा, चरपरा, खट्टा, वमनकारक, बवासीरको उत्पन्न करनेवाला, कुष्ट कारक, कफकारी, भारी और मेदको उत्पन्न करनेवाला है।

यह तो संक्षेपसे भक्ष्याभक्ष्यका विचार लिखा. अब यहांसे भोजन बनाने और खानेको थोडासा वर्णन करूँगा ।

भोजन बनानेका स्थान ।

सबसे प्रथम भोजन बनानेके स्थानको शुद्ध और स्वच्छ रखना चाहिये ।

सूर्य्य निकलनेके प्रथमही घरके दास, दासी अथवा घरकी अपनी स्त्री अथवा मठ और मन्दिरोंमें जिनको झाडू बुहारू और चौकेका काम सुपुर्द किया गया है, उठकर सब घरोंको बराबर देखकर सुमिरन[1] पढते हुए झाडू देना चाहिये । कितने निर्दई ऐसे होते हैं कि, चौका आदि स्थानोंमें जूठन आदि गिरनेके कारण अथवा गच आदिकी ठंढीके कारणसे चीटीं आदि सूक्ष्म कीडे इकट्ठे होजाते हैं, उनकी

1-सर्व प्रकारका सुमिरण अष्टम विश्राममें देखो ।

ओर दृष्टि न देकर अधाधुन्ध बुहारते हैं, जिससे सहस्रों जीवोंकी हत्या होती है सो झाडू देनेवालों, लीपने और—चौका देनेवालोंको उचित है कि, खूब सावधानीके साथ अपना काम करें । झाडू देने और लीपनेके समय सुमिरेण बोलते जावें । बरतनोंको भी मिट्टी और राखसे पानीके साथ खूब धोना और स्वच्छ करना चाहिये । लकडी अथवा छाना (कंडा) आदि जलावन कामलाते समय खूब देख लेना चाहिये । जो सावधानीसे जलावनको देखकर नहीं जलाते उनको अनन्त जीवोंकी हत्याका पाप लगता है ।

जल स्वच्छ और दुर्गन्धिरहित लेना चाहिये। जल भरते समय जलका सुमिरण बोले फिर जलको

१—सर्व प्रकारका सुमिरण अष्टम विश्राममें देखो ।

लेकर छान लेवे—जल छानते समय भी जल छान-
नेका सुमिरण बोलना चाहिये ।

चावल, आटा, दाल, शाक आदि भोजनकी
सर्व सामग्रियोंको भली प्रकारसे अमनिया कर
लेना अर्थात् उनमेंसे घुन, कीडा तथा कंकरी
आदि भलेप्रकारसे चुनकर साफ करलेना चाहिये ।

चूल्हा बारते समय, चूल्हा फूकनेका सुमिरण
पढना चाहिये । पश्चात् पाककी विधिसे खूब
सावधानीपूर्वक रसोई बनानेका सुमिरण बोलता
हुआ रसोई बनाना आरम्भ करे ।

बडी सावधानीके साथ भी गृह व्यवहार करने
पर गृहस्थ (मठधारियों) के घरमें अथवा जो
रसोई बनानेवाले हैं उनसे पांच पाप अवश्य होते
हैं; जैसा कि,

साखी ।

चौके चींटी चूल्हे घुन,
क्रिम बहुत जो नाज ।
कहैं कबीर आचार यह,
जीवको होय अकाज ॥

सत्य कबीरकी साखी पृ० ॥ २६१ ॥

यथा ।

कण्डनी पेषणी चुल्ली,
उदकुंभी च मार्जनी ।
पञ्च सूना गृहस्थस्य,
ताभिः स्वर्गं न विंदति ॥

अर्थ ।

चक्की चौका चूल्ह महँ,
झाड़ू अरु जल थान ।

गृह आश्रमी को नित्त है,
पाप पञ्च विधि जान ॥
कवीर भा० प्र० ॥

अर्थ—गृहेस्थ पुरुषोंके गृहविषे—नित्य पांच स्थानोंमें हिंसा हुआ करती है;

१ ऊखल और ढेकीके कूटनेसे हिंसा होती है।

२ चक्कीमें अन्न पीसनेसे जीवोंकी हिंसा होती है ।

३ रसोई बनानेके हेतु चूल्हेमें अग्नि बालनेसे हिंसा होती है ।

४ जल भरनेमें, जल रखनेके स्थानमें वर्त्तन मांजने और कपडा आदिके धोनेमें ।

---

१ मठ आदि भी गृह हैं और वहां भी यह पञ्च पाप नित्य होते हैं इसकारण मठधारियों अथवा यों कहा जावे कि, जो रसोई बनावें उन्हें भी इन पापोंका भागी होना पड़ता है ।

५ मिट्टी आदिसे घरको लीपने अथवा झाड़ू आदिसे वुहारनेमें।

ये पांच पाप गृहस्थों के घरमें नित्य होते हैं। और ये पाप ऐसे हैं कि, चाहे मठधारी महात्मा हो अथवा गृहस्थ कोई भी क्यों न हो घरमें रहने और रसोई वनानेसे ही उसे यह पाप लगेंगे। इसका निवारण भी शरीर रहते नहीं हो सकता। इस कारण—

इन पापोंसे वचनेके लिये नित्य वलिवैश्वदेव आदि पंच महायज्ञ करनेका विधान पूरा २ कवीर मंशूरके पृष्ट ११०४ से ११०८ तक देखो।

उनमेंसे प्रधान यह हैं।

साखी।

भोजन पाक निहारिकें,
इत उत द्वारे झांक।
अभ्यागत भूखानिरखि,

आरे ता छन हाक ॥
भूखा साधु भिखार कोइ,
जब आवे नहिं द्वार ।
ताते मन पछताइ बड,
करत अकेल अहार ॥

क० सा० प्र०

आशय यह है कि, जब गृहस्थ अथवा मठधारियोंके घरमें भोजन तैयार हो जावे तब प्रथम साधु अभ्यागतोंको भोजन करावे पश्चात् आप भोजन करे। यदि कोई साधु अभ्यागत स्वयम् घरपर नहीं आयाहो अथवा एक दो दिन पहलेका आया हुआ हो तब भोजन तैयार हो जाने पर द्वारपर खडा होकर इधर उधर चारों ओर, यदि कहीं भूखा दीन दुखिया अथवा साधु देख पडे तो उसे प्रेमके साथ बुलाकर लावे और

भोजनसे तृप्त करावे। जो गृहस्थ अथवा मठधारी ऐसा किये विना अपने ही लिये भोजन बनाकर पाजाता है वह पापका भागी होता है। भोजन तैयार होजानेपर अतिथिको अवश्य भोजन करना चाहिये। अब अतिथि किसे कहते हैं उसे जानना चाहिये।

जो आदमी दूर मार्गसे चलकर आया हो, थका हो, भोजन समय आया हो, उसे अतिथि जानना। ऐसे अतिथियोंमें यदि चोर, चांडाल, शत्रु, पितृघाती, नास्तिक कैसा भी क्यों न हो? भोजन समय आनेहीसे अपने पुण्योंका फल जानकर; उसको जाति, गोत्र, वर्ण, आश्रम धर्म आदि कुछ न पूछे वरन् भोजन करा देवे।

इस प्रकार जो गृहस्थ अथवा मठधारी अथवा मार्ग चलते भी रसोई बनानेवाला—प्राप्त हुए अतिथिकी सत्कार पूजा नहीं करता है केवल अपने

उदर भरनेहीके लिये अन्न बनाता है उसे दुष्ट और पापी जानना—इसी प्रकारसे एक पङ्गतिमें बैठकर भेद करता है अर्थात् स्वयम् अथवा अपने सम्बं- धियोंके आगे तो उत्तम २ पदार्थ रख लेता है और दूसरोंके आगे उससे न्यून धर देता है वह पापी भी दुष्टोंकी पंगतिमें गिना जाता है इस कारण पंक्तिभेद भी कदापि नहीं करना।

जिस दिन कोई भूखा, गरीब, भोजन कर- नेको न मिले उस दिन अकेला भोजन करनेके कारण पश्चात्ताप करे और कुछ तैयार भोजनमेंसे लेकर गौ, कुत्ता आदि प्राणियोंके हेतु निकाल देवे। अतिथि न मिलना अपने किसी जन्मके पापका उदय समझकर हृदयसे विनीत भावके साथ सद्- गुरुके आगे प्रार्थना करके अपना अपराध क्षमा करावे।

———

सदा छल कपट और बनावट दम्भको त्याग कर साधु अभ्यगतोंको भोजन कराया करे। जब साधु अभ्यगतोंको भोजन कराने लगे तब उनकी ओर देखकर अथवा किसी प्रकारसेभी ग्लानि अथवा घृणा मनमें उत्पन्न न होने देवे। भोजन करनेवालेको तुच्छ न समझे। यदि मनमें किसी प्रकारकी ग्लानि अथवा घृणा लावेगा अथवा भोजन करने वालेको तुच्छ समझेगा तो उसके सर्व सुकृत नाश होकर पापका भागी होना पडेगा। मनमें कभी यह अभिमान न लावे कि, मैं इन्हें भोजन कराता हूँ अथवा अमुकको मैंने इतना कुछ खिलायाहै वरन् अपने मनमें उस भोजन करनेवालेका कृतज्ञ होवे कि, उसने कृपाकरके भोजन स्वीकार किया। सर्व धर्म्मोंके साधू और भूखोंको भोजन देना उचित है। और स्वधर्म्मके साधु और दुखियोंके लिये कहनाही क्या है उनकी मदद सर्वप्रकारसे करनी चाहिये॥

उपरोक्त रीतिसे अतिथि सत्कार करलेने पश्चात् सुन्दर कांसे आदिके वर्तन अथवा पात्रमें सुमिरण मनही मन बोलता हुआ पारस करे ।

प्रथम अपने इष्टदेवको स्मरण करता हुआ अर्पण करनेका सुमिरण मनही मन बोले ।

चुल्लूमें लेकर अर्पण करे पश्चात् गुरुका ध्यान कर जहां तक होसके शांतिके साथ मौन धारण कर भोजन करे । भोजन वहां तक होसके एकान्त अथवा अपने इष्ट मित्रोंके वीचमें वैठकर करना चाहिये । दुष्ट, शत्रु हिंसक आदि प्राणियोंके सन्मुख भोजन करना उचित नहीं । यथेष्ट मिताहारके नियमानुसार भोजन करके सन्तुष्ट होनेपर सुमिरण पढता हुआ जल पीवै पश्चात् सुमिरण पढके आच-मन करे। फिर शांतिके साथ, धीरे धीरे उठ कर

१-नोट-सुमिरण देखो अष्टम विश्राममें ।

हाथ मुखको अच्छी तरह धोकर—सुमिरण पढता हुआ अपने इष्ट देवको वन्दगी करै।

पश्चात् यदि पान सुपारीकी आदत होवे तब पान पाने और सुपारी मोरनेका सुमिरण बोलकर इनकोभी पावे।

अब भोजन सम्बन्धी आवश्यकीय वातों को लिखकर इस विश्रामको समाप्त करूँगा।

एक प्रहरमें दो वार भोजन न करे, और दो प्रहर तक भूखा न रहे। क्योंकि, प्रथम प्रहरमें, भोजन करनेसे उत्तम रसकी उत्पत्ति होती है। दोप्रहर तक भोजन न करनेसे वल घटता है। असली तो भोजनका समय वहीहै जिस समय भूख लगे, तथापि नित्य सवेरे और सांझको भोजनका समय नियत करलेनेसे वहुत लाभ है।

नियत समयपर और भूख लगेरहनेपर भोजन करनेसे—बल बढता है, तृप्ति कांति और सुख प्राप्त

होता है; संक्षेपतः यह है कि, आहार प्राणोंकी रक्षा द्वारा संपूर्ण पदार्थोंका देनेवाला है ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राणाः संस्थितिहेतवः
तान्निघ्नता किन्न हतं रक्षता किन्न रक्षितम् ॥

सत्यगुरु कहते हैं ।

साखी ।

पांचों कुतिया रामकी,
करत भजनमें भंग ।
ताको टुकडा देइके,
पाछो करो सत्संग ॥

यद्यपि भोजन द्वाराही प्राणोंकी स्थिति है इथापि जिस प्रकार आहार यथोच्चित रीतिसे किया हुआ प्राणकी रक्षा करनेवालाहै उसी प्रकारसे बिना भूखके अथवा मिताहारके नियमोंके विरुद्ध--प्राणको नाना

प्रकारके रोगों द्वारा कष्ट देने और कभी २ नाश करनेका भी कारण होता है ।

उपर्युक्त साखीमें सत्यगुरुने भोजनकी साधनाका वर्णन किया है । क्योंकि भोजनकी साधना प्रधान साधना है, भोजनहीसे देह प्रतिपालित होतीहै. और भोजनहीके गडबड होनेसे मनुष्य मरभी जाता है । इस कारणसे सर्व लौकिक पारलौकिक सुखोंकी कामना रखनेवाला, मोक्षकी इच्छा करनेवाला पुरुष सबसे पहले—मिताहारको धारण करे । मिताहार करनेसे सदा आरोग्यता बनी रहती है । मिताहार करने वाले मनुष्य को वैद्यकी आवश्यकता नहीं है ।

मिताहार ।

शुद्ध, सुन्दर, मधुर (जो खाने में मीठा हो) स्निग्ध (जिसमें रूखाई न होवे) सुरस (जिसका रस खराब न लगे) ऐसे भोजन को अमने

कल्याण का चाहने वाला प्रीति पूर्वक प्रसन्न चित्त होकर ग्रहण करे ।

पेट के चार भाग करके आधा तो अन्नसे, चौथाई जल से भरे और एक चौथाई वायु के संचार के लिये छोडदें । इस प्रकार भोजन करने वाला पुरुष सदा तपस्वी है । और आरोग्यता तो उसके घरकी प्रधान दासी होती है । मिताहार के अतिरिक्त विषम आहार अर्थात् इतना थोडा जिस से तृप्ति न होवे अथवा इतना अधिक जिससे अजीर्ण आदि विकार उत्पन्न हों सदा ही दुःख-कारी होनेके कारण वर्जित है ।

आहारमें सदा ध्यान रखने योग्य चार बातें ।

१ आहार की सामग्री अत्याचार और अन्याय से प्राप्त न की गई हो ।

सारवी ।

जैसा अन्न जो खाइये,
तैसी ही बुधि होय ।
जैसा पानी पीजिये,
तैसी वाणी सोय ॥

सत्य कवीरकी साखी ।

२ अभक्ष्य पदार्थ न हो ।

३ प्रकृति, काल, देश; धर्म्म और समाज के विरुद्ध न हो ।

४ रुचिकारक होवे ।

भंडारीके ध्यान देने योग्य चार बातें ।

१ नमक मसाला अन्दाज से हों ।

२ भोजन के पदार्थ शुद्ध और स्वच्छ हों ।

३ वाल अथवा तृण आदि से शुद्ध हों ।

४ वर्तन, चौका, पीढा, मकान आदि सब स्वच्छ हों ।

भोजनके समय ध्यान देने योग्य २६ बातें

१ भोजन का आरम्भ सदा ही सत्य पुरुष परमात्मा का नाम लेकर करना चाहिये और समाप्ति पर भी धन्यवाद करना चाहिये ।

२ यदि पाहुना हो तो पंगतमें वैठकर प्रथम ग्रास न उठावो और यदि वारिक हो तो स्वयम् अथवा अपने श्रेष्ठोंसे ग्रास उठवावे ।

३ भोजन करते समय पूरी सावधानी रक्खे कि कपडा आदिके ऊपर जूठा और जल आदि न गिरे, अथवा अपने हाथ अथवा अपने आगे से एक दाना अथवा कुछ पदार्थ दूसरों की ओर न जावे जिससे वह क्रोधित होवे ।

४ हाथ और मुख अथवा दाढी तथा जल पात्र आदि असभ्यतासे जूठनसे न भरले ।

५ ग्रास बहुत बड़ा न उठावे ।

६ ग्रास लेते समय मुँह अधिक न खोले।

७ भोजन से मुँह भरकर गाल फुलाकर हाउ के समान न बनावे।

८ ग्रास मुँहमें रखकर शीघ्रताके साथ निगल न जावे। उसे यथायोग्य चबाकर कण्ठ से उतारे क्योंकि ऐसा करनेसे आंत को दांत का काम करना पडता है जिससे भोजन बराबर न पच कर अजीर्ण हो जाता है अथवा मल पड जाताहै।

९ उंगलियों और हथेली को न चाटे तथा थाली अथवा पत्तल को धोकर अथवा पोंछकर न खाने लग जावे। क्योंकि यह चिह्न अकाल पीडित भूखे; भिखमंगे और दरिद्रोंके हैं।

१० भोजन की सर्व सामग्री दाल, शाक, चावल, आदि सब पदार्थोंको घोल अथवा मिलाकर न खावे क्योंकि ऐसा करनेसे पास के बैठे हुये दूसरे मनुष्यों को घृणा उत्पन्न होती है।

११ नाक से लगाकर भोजन के पदार्थों को न सूंघे क्योंकि यह स्वभाव पशुओं का है ।

१२ कोई बडी वस्तु रोटी आदि समूचीकी समूची उठाकर दांत से काटने न लग जावे वरन हाथसे तोड कर मुखमें डालकर खावे ।

१३ पत्तल या थालीमें बचे हुये जूठनको खाने की नियत से न रक्खे वरन्, भूख दरिद्री दुखियों को देदेवे क्योंकि अपनेसे अधिक बचा-हुआ पदार्थ उन्हीं के भाग्य का है।

१४ एक पदार्थ दूसरे पदार्थसे मिलने न देवे वरन् सबैको भिन्न २ रक्खे ।

१५ दूसरोंके आगे धरे हुए भोजन पर दृष्टि न डाले ।

१६ औरोंके आगेकी वस्तु अपनी ओर न खींचे । न अपने पत्तलसे कोई पदार्थ दूसरोंके आगे डाले ।

१७ किसी फलादिकी गुठली आदिको इधर उधर न फेंक कर अपने निकटही पत्तल अथवा थाली से वाहर जमा करता जावे और भोजन् कर लेनेपर योग्य स्थानपर फेंक देवे।

१८ भोजन ऐसी रीतिसे करे कि, पीछेसे बचें हुए जूठनके खानेवालोंको घृणा न होवे।

१९ यदि पाहुना हो तो सबके साथ २ स्वयं भी भोजनसे हाथ वंद करलेवे परन्तु औरोंके खाते हुए अपना हाथ खानेसे रोक लेना अथवा सबके पाकर हाथ खींच लेनेपर आप पाते रहना ये दोनों ही वातें मूर्खता और अज्ञानताके चिह्न हैं परन्तु यदि आपही खिलानेवाला(वारिक)हो तो अवश्यही देरतक पाता रहे जिससे सब अच्छी तरह सन्तुष्ट होजावें।

२० पाते समय ऐसा मुँह न चलावे कि, उसका शब्द दूसरोंके सुननेमें आवे क्योंकि यह लक्षण कुत्ते विल्लियोंके हैं।

२१ मुखमें ग्रास लेकर किसीसे बात न करे । भोजन करता हुआ हँसी मसखरी अथवा क्रोध करना मूर्खता है ।

२२ जल पीते समय मुख और गर्दन आका-शकी ओर न उठावें, न इस प्रकारसे जल पीवे जिससे इसके मुख और कंठका शब्द दूसरोंको सुन पडे । एकदम भी जल न पीवे बरन ठहर ठहर कर पीवे । वर्तन जहांतक होसके पात्र मुँहसे लगा कर पीये, ऊँचा रखके न पिये । जल मुँहमें हिला कर न पिये ऐसा करनेसे मुँहका मेल अन्दर जाकर विकार करता है ।

२३ आवश्यकता विना शर्बत आदि पदार्थ केवल हौस से ही न पीवे । क्योंकि स्वाभाविक भोजन के अतिरिक्त जो कुछ है सब औषधि है सो औषधि रोग विना ग्रहण करना स्वयम् रोग है ।

मदिरा, भंग आदि निषिद्ध पदार्थों का कभी सेवन न करे। ऐसे पदार्थों के सेवन करने वालों की संगति की सदाही उपेक्षा करता रहे।

२४ भोजन करनेके पश्चात्–हाथ, मुँह, नख, दांत होठ और दाढीआदिको अच्छी तरह साफ करे, पानी गिरा कर घर और सूखी जगहको गन्दी न करे।

२५ हाथ धोनेके समय (यदि एक ही जगह हाथ धोना हो) तो सब के आगे निकल कर पहले आपही धोनेकी असभ्यता न दिखलावे।

२६ पान और सुपारी आवश्यकताके समय खावे, सदाही मुँहमें दबाये न रहे। न बैलोंके समान मुँह चलाता रहे। गुरु, पिता आदि शिष्ट-पुरुष अथवा अन्य किसी भी प्रतिष्ठित पुरुष के सम्मुख न खावे। पान की पीक अथवा थूक आदि से दीवार अथवा स्वच्छ स्थानोंको मैला न बनावे।

इसके अतिरिक्त इन बातोंकाभी ध्यान रक्खे भोजनके पूर्व भक्षणीय ।

भोजन आरम्भ करनेके प्रथम, सैंधा निमक और अदरख खानेसे भोजनमें रुचि बढती है भूख तेज होतीहै तथा जीभ और कंठका शोधन होताहै ।

भोजनका क्रम ।

भोजनमें प्रथम रोटी आदि कठिन पदार्थ घीसे चुपडे, अथवा मोहन भोग (शीरा) आदि घी वाले पदार्थ, खाने चाहिये । मध्यमें भात, दाल आदि जैसे पदार्थोंके पश्चात् छांछ मही अथवा दूध पीवे । इस प्रकारसे भोजन करनेसे बल और आरोग्यता कभी भी नष्ट नहीं होती किन्तु सदैव ही बनी रहती है ।

भोजन करते समय आगे आये हुये पदार्थों में जो जो वस्तु बहुत स्वादिष्ठ हों उनको पीछेसे खावे

अति गरम अन्न बलका नाश करता है और शीतल पदार्थ पचनेमें वहुत देरी लगाता है और अत्यन्त गीला अन्न ग्लानि उत्पन्न करता है इस कारण योग्यायोग्य विचारकर भोजन करना चाहिये।

अत्यन्त देरी अथवा अत्यन्त जल्दीमें भोजन करना नहीं चाहिये क्योंकि देरीसे भोजन करनेसे रसोई ठंडी और स्वादरहित हो जातीहै :और जल्दी पा लेनेसे, एक तो भोज्य पदार्थका स्वाद और गुण दोष नहीं मालूम होता है और न वह अच्छी तरह चबायाही जाताहै जिससे उसको पचानेमें जठराग्नि को कठिनता पडती है ।

जल ।

अत्यन्त जल पीनेसे अन्न का पाचन नहीं होता और विना जल पिये भी पाचन नहीं होता. इस कारणसे भोजनके समयमें प्यास लगने पर

थोडा२ जल पीवे । परन्तु भोजनके प्रथम ही जल पीनेसे शरीरमें दुवलापन और मंदाग्नि होती है और अन्तमें जल पीनेसे शरीर मोठा होता और कफ वढता है और मध्यमें जल पीनेसे पाचन शक्ति बढती है इस कारण मध्यमें जल पीना सवसे उत्तम और आदिमें जल पीना सदा निषेध और अन्तका अपनी आदतके अनुसार है ।

तृषा अर्थात् जिस समय प्यास लगी हो तो जलके बदले भोजन न करे और भूख लगनेमें भोजनके बदले जल न पीवे क्योंकि प्यासमें भोजन करनेसे गोलेका रोग होता है और भूखमें जल पीनेसे जालन्धरका रोग होता है ।

नित्य एक ही प्रकारका भोजन न करे, नित्य२ कुछ परिवर्तन करता जावै । भोजनके अन्तमें दही न खावे दूध पीने का हर्ज नहीं, दही खाना हो तो प्रथम ही पावे ।

भोजन कर लेनेके पश्चात् भली प्रकारसे कुल्ला करके मुख और दांतोंमें लगे अन्नके कणोंको निकालकर मुख स्वच्छ कर लेवे । यदि कुल्ला करने पर भी दांतोंमें लगेहुए अन्नके कण न निकलें तो तिनकेसे उन्हें निकाल देवे परन्तु तिनका करते समय मसोडोंका विचार रखे ।

दाख आदि मेवे, फल, ईख, दूध, कन्द, घृत, दही, पान, औषधि और विशेष घीके संयोगसे बने हुए मोहन भोग आदि पदार्थोंको भक्षण करने पश्चात् न तो जल पिये न बहुत कुल्ला करे क्योंकि ऐसा करनेसे श्वासकासादि रोगोंका भय रहता है ।

भोजन करने पश्चाद् हाथोंको धोकर गीले हाथोंसे नेत्रोंको स्पर्श करे और बायाँ हाथ पेट पर फेरै ।

पश्चात् पान आदि यथा प्राप्त खाकर अपने कामोंमें लगे परन्तु पान सुपारीकी आदत न डाले ।

कथा कीर्तन करनकी, जाकी निशिदिन री-
ति। कहैं कबीर वा दाससों, निश्चय कीजे
प्रीति ॥ कथा कीर्तन छांडिके, करै जो और
उपाव। कहैं कबीर ता साधुके, पास कोई
मति जाव ॥ कथा कीर्तन रातदिन, जाके
उद्यम एह। कहैं कबीर ता साधुके, चरण
कमलकी खेह ॥ कथा करो कर्तारकी,
निशिदिन सांझ सकार। काम कथाको
परि हरो, कहै कबीर विचार ॥ काम कथा
सुनिये नहीं, सुनिके उपजे काम। कहैं
कबीर विचारके, विसरि जाय हरिनाम ॥
कथा करो कर्तारकी, सुनो कथा कर्तार।
आन कथा सुनिये नहीं, कहैं कबीर विचार॥
अन्य कथा अन्तर पडे, ब्रह्म जीवमें सोय।
कहैं कबीर यह दोष बड, सुनि लीजै सब

कोय । कथा कीर्तन कलि विषे, तरबे को उपकार । सुने सुनावें और को, यहि उपदेश हमार । कथा कीर्तन करनको, जो कोइ करे सनेह । कहै कबीर ता दासको, भक्त नहीं सन्देह ॥

सत्य कबीरकी साखी ।

साधुको कथा कीर्तनद्वारा सदा 'अपने तथा संसारके कल्याणका उपाय करना चाहिये । जो संत इस प्रकार अपने धर्मको समझते हैं वे सदा कथा कीर्तन, भजन, स्मरण और विवेक वैराग्यमें ही अपना जीवन बिताते हैं । और जो अत्यन्त विरक्त हैं वे भी अधिकारी जनोंका संसारसे तारने और उपदेश करनेका कार्य्य कदापि त्याग नहीं करते । ऐसे महापुरुषोंकी सेवा भक्ति गृहस्थोंको सदा उचित और अवश्यमेव कर्तव्य धर्म है ।

जो गृही सन्तोंकी सेवा नहीं करता और जो साधु भजन अनुराग, और संसारको कालके जालसे छुडानेके प्रयत्नमें नहीं रहता, दोनोंही अपने धर्मसे भ्रष्ट होकर नरकगामी होते है।

साखी।

गिरहीको चिन्ता घनी, वैरागीको भीख॥ दोनोंका तिहि बिच जीव है, देहु न सन्तो सीख॥ वैरागी तो विरक्त भला, गिरही चित्त उदार। दोऊ चूकि खाली पडे, ताको वार न पार॥ घरमें रहै तो भक्ति करु, नातंर करु वैराग। वैरागी होय बन्धन करै, ताका वडा अभाग। धारा तो दोही भली, गिरही कै वैराग। गिरही दासातन करे, वैरागी अनुराग॥ अजर धान अतीतका, गिरही करे जो अहार। निश्चयही हो दारिद्री, कहैं कवीर विचार॥

भावार्थ यह है कि गृहस्थको सदा उचित है कि सन्तोंकी सेवा किया करे, अपनी आमदनीमेंसे कुछ भाग केवल सन्तोंकेही हेतु निकालकर नित्य उनकी सेवामें लगा रहे । जो गृहस्थ सच्चे सन्तोंकी सेवा नहीं करता है उनका भागभी स्वयम् चटकर जाता है । कबीर साहब कहते हैं कि, वह निश्चय करके दरिद्री होता है । और साधु जो विचारपूर्वक खाद्याखाद्यका विचार नहीं करता, द्रव्यके लोभसे न ग्रहण करने योग्य द्रव्य और अन्नको ग्रहण कर लेता है; और भीख मांगनेमें अपनी सार्थकता समझता है वह साधुही नहीं है । उसके हेतु गुरुसाहब कहते हैं ।

साखी ।

जैसा अन्न जो खाइये, तैसाही मन होय ।
जैसा पानी पीजिये, तैसी वानी सोय ॥

माँगन मरन समानहै,मत कोइ मांगोभीख॥ मांगन ते मरना भला, यहि सतगुरुकी सीख ॥ मांगन मरन समान है, सीख दई मैं तोहि । कहैं कबीर सतगुरु सुनो, मतिरे मँगावो मोहि ।

मांगनेवालोंके लिये ऊपरकी साखी है परन्तु जो सच्चे विरक्त हैं, प्रवृत्तिसे जिन्होंने मुँह मोडा है. निर्वाहमात्र भिक्षाका उन्हें दोष नहीं है– परन्तु काया, मन और वाणीसे सदा लोकोपकार करना भी उनका परम कर्तव्य है । ऐसे विरक्त पुरुषोंकोअपने हाथसे भोजन बनाना निषेध है अर्थात् यदि वे भोजन आदिके झंझटमें पडजावेंगे तो परमार्थकेकार्यमें हानि होवेगी इस कारण जब भिक्षा ले आवें तो यदि अकेले हों तो कहीं नदी तालाव आदि निर्जन स्थानोंमें बैठकरभक्षण करलेवें, नहीं तो मंडलीके गुणवृद्धके आगे रख वह यथाधिकार सबको बांट देवे ।

भिक्षाके विषयमें सद्गुरुकी आज्ञा।

साखी।

उदर समाता माँगिले, ताको नाहीं दोष।
कहैं कबीर अधिका गहै, ताकी गति न मोष॥
उदर समाता अन्नले, तनहि समाता चीर।
अधिकहिं संग्रह ना करे, तिसका नाम फकीर॥ अन माँगा मिले अति भला, माँगि लिया नहिं दोष। उदर समाता कह मिले, निश्चय पावे मोष॥ भीख तीन प्रकारकी, सुनहु संत चित लाय। दास कबीर प्रकट कहे, भिन्न २ अर्थाय॥ अनमाँगा उत्तम कह्यो, मध्यम माँगि जो लेय। कहै कबीर निकृष्ट सो, पर घर धरना देय॥ उत्तम भीख जो अजगरी, सुनि लीजो निज वैन। कहै कबीर ताके गहे, महा परम सुख चैन॥

भँवर भीख मध्यम कही, सुनो सन्त चित लाय । कहैं कबीर जाको गही, मध्यम माँहिं समाय ॥ भीखहिं गदहाकी कहूं, निकृष्ट कहावे सोय । कहै कबीर इस भीखमें, मुक्ति न कबहूं होय ॥

अपने पासमें द्रव्य आदि रहते हुए अथवा पूर्ण विरक्ताई अथवा लाचारीके आये विना भीख माँगना निर्लज्ज और मूर्खोंका काम है ।

मध्याह्नसन्ध्याविधि ।

अपने आश्रम धर्म्मकी रक्षा करता हुआ मनुष्य मध्यान्ह होनेपर मध्यान्ह सन्ध्यास्मरणमें प्रवृत्त होवे।

प्रथम प्रातःसन्ध्याके समान ही (शुद्धि आदि करके) गुरु सहस्र नामका विधि पूर्वक पाठ करे; मध्य दिनकी स्तुति और सवैया द्वारा प्रार्थना करे। छोटी नित्य पाठकी एकोत्री और मध्याह गायत्री

अर्थसहित पाठ कर लेनेपर, यथा अवकाश गुरुमंत्र-
का जप करे । जप करलेनेपर—ज्ञान गुदरी और
कबीर चालीसा अथवा कबीर पंचासिकाका पाठ-
करके मध्यान्हसन्ध्या समाप्त करे, पश्चात् आचम-
न करके वहाँसे उठे ।

व्यवहारमें फँसे हुये गृहस्थोंसे यदि मध्यान्ह संध्या
विधिपूर्वक न होसके तो मध्यान्ह दिनकी स्तुति और
ज्ञान गुदरी तो अवश्यही पाठ करलेवे । इतना
करना कोई भारी बात नहीं है क्योंकि, काम करते
हुए भी लोग अनेक बातें किया करते हैं; यदि
थोडीदेरके लिये उन व्यर्थ गपाटाओंको छोड़कर
गुरुस्तुति कर लेंगे तो अनन्त पुण्यके भागी होंगे ।

इति श्री कबीरोपासनान्तर्गत मध्यान्ह संध्या-
विधिवर्णनं नाम षष्ठो विश्रामः ।

अथ सप्तमविश्रामप्रारम्भः ।
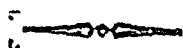
मध्यान्ह संध्या करलेने पश्चात् गृहस्थ तो अपनी संसारयात्राके कार्य्यमें लगे और साधु, विरागी अपने २ भजन; स्मरण, आत्मचिन्तन तथा उप॰ देश और स्वधर्मपुस्तककी कथा, विचार और प्रचा॰ रमें लगे । यद्यपि स्वधर्मकी उन्नतिके ओर ध्यान देना क्या गृहस्थ क्या साधु त्यागी, सर्वका ही मुख्य धर्म्म है तथापि साधु और वैरागियोंको तो इसके अतिरिक्त दूसरा कोई कार्य्य ही नहीं है । क्योंकि, जिस प्रकार सेवकका मुख्य धर्म सेवा करनेका है उसी प्रकार साधुका धर्म तो सदा "उपदेश और स्वधर्म उन्नतिमें ही लगा रहना है"। इस कारणसे साधु सन्तों और महंतों तथा सच्चे धर्मपरायण

सद्गृहस्थों और अपने धर्म्मके हेतु सद्गुरुके नाम-पर अर्पण होनेवाले सर्व सज्जन, स्वधर्म प्रचार और उन्नतिके कार्य्यमें लगें ।

उपरोक्त रीतिसे अपने २ धर्म मर्यादाके कार्य्य करते हुए जब ढाई घड़ी अर्थात् १ घंटा दिन शेष रहे तब आवश्यकीय शौच आदि क्रियाओंको समाप्तकर सायंसन्ध्याके लिये बैठे ।

सायंसन्ध्याविधि ।

सायंसन्ध्याके लिये आसनपर बैठने पश्चात् प्रथम गुरुसहस्रनामका पाठ विधिपूर्वक समाप्त करके;क्रमसे सायंसन्ध्या, गायत्री, नित्य पाठकी एकोतरी, गुरु-शतकसार नाम तथा सायंसन्ध्यावन्दनस्तोत्र तथा सवैया आदिका ध्यानपूर्वक पाठ करे–पश्चात् १ घड़ी दिन शेष रहते उठकर मंडलीके साथ २ सन्ध्या सुमिरणको बैठें ।

सूर्य्य अस्त होनेतक सतगुरुकी स्तुति और विनयसे पूर्ण गौडी गाता हुआ दिनका अन्त करे और सायं होजानेपर क्रमसे ।

१ संध्या सुमिरणकी साखी बोले ।

२ आरती गाकर आरती उतारे फिर

३ सत्त सत्तका भया प्रकाश-से आरम्भ होनेवाली स्तुति ।

४ सतके नाम सत्यसागर भरा

५ गुरुदयासागर " " "

६ अर्जीनाम " " "

७ ज्ञान गुदरी " " "

इसके उपरान्त स्वश्रद्धानुसार अवकाश पानेपर मङ्गल आदि गाकर सायं सन्ध्याको समाप्त करे ।

सत्संगमाहात्म्य ।

सायंसन्ध्या होजानेपर सर्व साधु, महंत, सती, सेवक आदिको उचित है कि, जितने लोग स्वव-

र्म्मके, उस नगर अथवा स्थानमें रहते हों, सब लोग इकट्ठा बैठकर स्वधर्म्म विषयक विचार और पूछ पाछ करें ।

ऐसा करनेसे, स्वधर्म्मका ज्ञान बढताहै; परस्पर प्रीति और सहानुभूति बढती है । स्वधर्मकी उन्नति होती है, स्वधर्ममें दृढता होती है । इसीका नाम सत्संग है, जिसकी महिमाको वर्णन करते २ वेदने पार नहीं पाया है सर्व धर्मोंके ग्रन्थोंमें सत्संगसे बढकर अन्य उत्तम परमार्थका साधन नहींहै? केवल परमार्थ ही नहीं बरन् संत संगतिद्वारा लौकिक पार-लौकिक सर्व सुखके साधनका मार्ग बतानेवाला सच्चा और उत्तमपथदर्शक दूसरा कोई नहीं है । सत्य गुरुका वचन है ।

साखी ।

कलह काल औ कल्पना,
सत संगतिसो जाय ।

दुख वासो भागा फिरे,
सुखमें रहे समाय॥
कबिरा संगति साधुकी,
नितप्रति कीजे जाय।
दुर्मति दूर बहावसी,
देशी सुमति बताय॥

सत्यकबीरकी साखी।

भावार्थ—सद्गुरु कहते हैं कि, कलहकाल और कल्पना सत संगतिसे मिट जाती हैं। सत संगतिसे सुखकी प्राप्ति होती है और दुख दूर होजाता है। अब सतसंगका स्वरूप बतलाते हैं।

सतसंग अर्थात् सच्ची संगति होय उसे सतसंग कहते है। जहाँ सच्चे संत महात्मा अहर्निशि सत्यात्मा सत्य पुरुषकीही चर्चा करते हों उसे सत्संग कहते है।

जहां सत्य पदार्थके निर्णयके लिये प्रश्नोत्तर-द्वारा शंकासमाधान होताहै उसे सत्संग कहते हैं ।

जहां सद्गुरुकी कथा, कीर्ति और वाणीका कीर्तन होता है उसे सत्संग कहते हैं ।

जहां अध्यात्म विद्या अर्थात् अपने स्वरूपके जाननेका विचार होता है उसे सत्संग कहते हैं ।

जो संतमहात्मा आत्मकथाके निरन्तर प्रवाह चलानेवाले हैं, जिनकी वाणी द्वारा संसारका बंधन छूटता है; ऐसे साधुकी संगति नित्य करनी चाहिये । ऐसों की संगतिसे दुर्बुद्धि नष्ट हो जाती है और शुद्ध बुद्धि प्राप्त होती है. जिसके द्वारा निवृत्ति मार्गका ज्ञान होकर मुक्ति प्राप्त होती है ।

जो संत साधु अथवा महंत लोग स्वधर्मकी पुस्तकों और सद्गुरुकी वाणीका विचार करते हैं, उसीके ऊपर चलते हैं, कभी सद्गुरुकी वाणी की अवज्ञा नहीं करते, ऐसे संत साधु और

महंतोंकी संगति करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होकर सत्य गुरुकी भक्तिका मार्ग मिलता है। ऐसे संत महंतोंके पास जाकर ज्ञान सुनने और अपने मन की शंकाओंको निवृत्त करनेसे अपूर्व कल्याण प्राप्त होताहै अर्थात् अपने शुद्ध स्वरूपका ज्ञान प्राप्त होता है।

जिसको सत्संग और विवेकरूपी दो नेत्र नहीं हैं, वह अन्धा है। जिस प्रकार अन्धा पुरुष यदि सीधी सडक पर भी चढा दिया जावे तथापि वह अपने अन्धापनके कारण गढहेमें गिर पडता है। इसी प्रकार सत्संग और विवेक जिसको नहीं है यदि वह संसार भरकी सब विद्याको मुखाग्र करले अथवा सदा तीर्थ ही स्नान करता रहे, चान्द्रायण आदि व्रतों द्वारा अपने शरीरको सुखा देवे। दिन रात साखी शब्दोंको गाता और सुनाता रहे और खूब दिव्य वेष बनाकर जगमें पुजाता रहे।

अपने बल और बुद्धिमानीसे सब संसारको ही नीचा दिखाने वाला हो, तथापि वह सुखको प्राप्त नहीं हो सकता । सत्संग और विवेकरूपी नेत्र विना कुमार्गमें पड जाना कुछ आश्चर्य नहीं है !

दृष्टान्त ।

एक बडा भारी शहर है, उसमें एक अन्धा पुरुष रहता है, उसके पास असंख्य द्रव्य है । उसने अगनित द्रव्य खर्च करके देश२ से कारीगर बुला कर एक बहुत बडा भवन बनवाया है । उसमें स्थान२ पर खूँटी गडीहै । सो जब घरका मालिक अन्धा इधर उधर चलता फिरता है तब वे खूँटियां उसको गडती है तब उसके सेवक लोग जो आंख वालेहैं वे उसे खुँटियोंसे बचनेकी चितावनी देतेहैं ।

इसका आशय यह है कि; विवेक और सत्संग रूपी नेत्रहीन जो पुरुष सोई तो अन्धा है । संसार

रूपी बडा नगर है । संसारमें नाना प्रकारकी मान बडाई और बुद्धिकी चातुरी असंख्य द्रव्य हैं। नाना प्रकारकी विद्या और कला कौशल सिखाने वाले कारीगर हैं । उनसे नाना प्रकारकी विद्या और हुनरका सीखना इमारत बनवाना है । शास्त्र दीवार है । उसमें पूर्वापरके विचारको ही कांटा कहते हैं । सो विवेकहीन पुरुष शास्त्रके पूर्वापर का विचार नहीं जानकर, नहीं मानने योग्यको मानता है और नहीं करने योग्यको करता है यही उसको ठोकर लगना है अर्थात् विवेकहीन पुरुषको उसकी विद्या, उसका पद, उसकी चतुराई ही उसके दुःखका कारण होती है । जो सत्संग वाले और विवेकी है वही सेवकके तुल्य हैं अर्थात् सच्चा सन्तसंगी और सच्चा विवेकी अहंकार रहित होकर सदा दास भावसे रहता है चाहै वह गृहस्थ हो कि; वैरागी हो । अपना कर्त्तव्य यही

समझता है कि, किसी न किसी प्रकारसे, असत्य मार्गमें जाते हुये जीव सत्य मार्गमें लग जावें, उसीके लिये वह अनेक यत्न भी करता है। सद्गुरु कहते हैं कि,

दादा भाई बापके लेखे, चरनन होइहों बन्दा।

सो ऐसे जो सत्य पारख को प्राप्त महात्मा गण हैं (बीजक) वे सदा उसको उपरोक्त कांटों से बचते रहने का उपदेश करते रहते हैं।

और स्वयम् विवेकी होनेके कारणसे भूल नहीं खाते हैं भर्तृहरिजी महाराजका वचन है।

श्लोक।

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति। चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्।

भा० बुद्धिकी जडपनाको नाश करतीहै वाणीमें सत्यको सींचतीहै अर्थात् वाणीकी कठोरता मिटा कर, अपने समानहीं दूसरोंको भी कठोर असत्य वचनसे दुख होता है इसकारण सत्य और प्रिय बोलना चाहिये, ऐसी बुद्धि देती है। अनात्मकबुद्धिको त्याग कराके सत्यात्मबुद्धिकी वृद्धि प्राप्ति कराती है, जिससे कायिक वाचिक मल सब दूर होजाते हैं और पुरुष निर्मल होकर शुभमार्गमें प्रवृत्त होता है। जिसकारण सर्व दिशाओंमें उसकी कीर्ति फैलतीहै। इसलिये कहते हैं कि, सत्संगति पुरुषको क्या नहीं करती है? सारांश यह कि, सत्संगद्वारा सब कुछ प्राप्त होता है।

इसी हेतुसे गुरुसाहबकी आज्ञा है कि,—;

साखी।

कबीरा संगति साधुकी,
नितप्रति कीजे जाय।

दुर्मति दूर बहावसी,
देसी सुमति बताय ॥
सत्य कबीरकी साखी ।

परन्तु व्यवहारमें फँसे हुये पुरुषोंसे दिवसमें शांतिके साथ बैठकर सत्संग करना अत्यन्त कठिन है इसकारणसे—सांझको संझा आरति होजाने पर अवश्य सत्संग करना चाहिये—परन्तु—वह सत्संग केवल साखियोंका अखाडा अथवा रागद्वेषका कारण नहीं होना चाहिये जैसा कि, आजकल स्वधर्मकी जानकारीकी न्यूनतासे प्रायः साधु और सेवक लोग जहां बैठते है वहां या तो, गांजा, भंग, तम्बाकूकी धूम होती है अथवा झांझ विगेरके साथ मंदिर शिर पर उठाया जाता है अथवा छोकरोंके बैतबाजी अथवा कलगी तुर्रेके अखाडेके समान आपसमें साखी, रेखता और शब्द बोलनेकी बाजी लगती है। प्यारो ! सत्यके खोजियो ! इसका नाम सत्संग नहीं

है वरन् इसका नाम कठसंगहै क्योंकि ऐसे स्थानोंमें
प्रायः चढा खडी होते होते राग द्वेष यहां तक
वढता है कि, मारपीटकी नौवत आजाती है ।
अथवा वहुत स्थानोंमें ऐसा होता है कि, कुछ
साखी शब्द याद किये हुए दशपांच या दोचार
सेवक लोग जिनको विद्या और बुद्धिसे कुछ सरो-
कार नहीं होता है, अच्छे विवेकी और विद्वान् सन्तके
पास जाकर—कवीर साहवके छापकी अनेक योग
और ब्रह्मज्ञान विषयक वाणीको वोलकर उनका
अर्थ पूछतेहैं, और जव उनका अर्थ उनको समझाया
जाताहै, तव अपनी बुद्धिकी कृपासे उनको समझ तो
सके नहीं उलटा विचारे, वक्ताका अपमान और हँसी
करके उसे कष्ट देतेहैं । यह वात श्रद्धाहीन अभिमानी
सेवक जिनकी, तृष्णावाले साधुलोग खुशामद किया
करते हैं प्रायः करते हैं । और दश पांच
मूर्खोंके वीचमें जो कोई स्वधर्मज्ञानहीन गपाटा

मारनेवाला पुजाता है वह भी ऐसा ही किया करत है क्योंकि, उसे सच्चे धर्मज्ञोंसे भय रहता है । ऐसे लठसंगको भी यद्यपि मूर्खोंके बीचमें सत्संग ही कहा जाता है तथापि हे सज्जनों ! यह सत्संग नहीं है ।

सत्संग तो इसे कहतेहै कि मनुष्योंको प्रायः संसारके विषय और उसके अनुभव करनेवाले प्राकृत जनोंका ही प्रसंग रहा करता है जिससे संसारबन्धन बढ़नेके सिवाय दूसरा कोई लाभ नहीं होता; परन्तु मनुष्य अमूल्य शरीरको पाकर परमार्थ प्राप्त करना मनुष्यमात्रका मुख्यधर्म है, सो यदि सांसारिक विषय और विषयोंका संग रहा तो परमार्थका मार्ग कदापि मिल नहीं सक्ता इस कारण–

जिन महात्माओंने संसारको भलीप्रकार परखा है, परमार्थके स्वरूपको भलीप्रकार जानकर उसके भेदोंको समझा है, वाणी खानिका यथार्थ ज्ञान प्राप्त

किया है; स्वधर्ममें पूर्ण दृढ है। छाजन, भोजन, मैथुन, भय, निद्रा, मोह षट् पाशविक धर्मोंको भली प्रकार सुधारा है, मनुष्य लक्षणताके चार कला, विचार, शील, दया और शौर्य्य करके संयुक्तहैं; काल, संधि और झाईंके भेदको भली प्रकार जाननेवाले हैं परा अपराको खूब पहचाननेवाले हैं ।गुरु धर्मपर पूरे दृढ हैं, मैं मेरी संकल्पको जिन्होंने त्याग दियाहैं; गुरुके पारखके बल कभीभी कालके फन्देमें नहीं आते; मैत्री, मुदिता, करुणा और उपेक्षा जिनके स्वभावमें वास करती है, ऐसे ऐसे संतके लक्षणोंकर युक्त जो पुरुषहैं, चाहे वे गृहस्थी होवें, अथवा विरक्त साधु तथा मठधारी होवें, उनकेही संगसे संसारसे लक्ष उठकर यथार्थ परमार्थपर दृष्टि लगती है । ऐसोंकोही संगतिसे यथार्थ पारखकी प्राप्ति होतीहै, ऐसोंकीही सेवाभी सफल है ।

साखी ।

कर बन्दगी विवेककी, भेष धरें सबकोय ।
वहबन्दगीबहिजानदे,जहँशब्दाविवेकनहोयं॥

बीजक ।

शब्द ।

नरको नहिं परतीति हमारी । झूठा बनिज कियो झूठे सो, पूंजी सबन मिलि-हारी॥षट् दर्शन मिलि पंथ चलायो,त्रयदेवा अधिकारी । राजा देश बडो परपंची,रैयत रहत उजारी॥इतते उत उतते इत रहु यमकी सांट सवाँरी।ज्यों कपि डोरबांधि बाजी-गर,अपनी खुशीपरारी ॥ यहै पेड़ उत्पत्ति परलयका, विषया सबै विकारी । जैसेस्वान अपावनराजी, तैसेलागे संसारी॥कहैं कबीर

यह अद्भुत ज्ञाना, को मानै बात हमारी।
अजहूँ लेउँ छोडाय कालसो, जो करै सुरति सँभारी ॥

साखी।

जीव दुखी चाहे छुटन, चीन्हे नाहीं काल।
आशा देवे निवृत्तिका, भोरे भौके जाल ॥
॥ ८० ॥ त्रय विधि भेष बनाइके, कीन्ह कपट उत्पात । बाना गही उबारने, लाइ कला यम घात ॥ ८१ ॥ यतके चिह्न लगोंट हैं, दया चिह्न उरमाल । राज तिलक है अदलका, सो है प्रगट भाल ॥ ८२ ॥ महा दुष्ट जीवहिं ठगे, भेष कपट किय काल। भेष देखि निवृत्तिका, अपनायें सो दयाल ॥८३॥भेष अमंगल नष्टगुण, जेते त्रय विधि फांसं ।अदल चलाई कालपर सो त्रिदोषहिं नास ॥ ॥ ८४ ॥ अदल चलाई सत्यका

साहब बन्दी छोर । पारखि छोरं जीवकों, यमको हाथ मरोर ॥ ८५ ॥ रीति प्रीति सोइ सत्य है, सत्य सोइ सो भेख । झूठाको शोभे नहीं, निर्णय करिके देख ॥ ८६ ॥ जो रहस युत पारखी, साहब सांचा सोय । तरे तारे भव जालसे, काल देखि रहे रोय ॥ ९४ ॥ दृढ पारख जो जन भये, काल फन्द सब देख । सत्य स्वरूप सोई सदा, रीति सत्य सत्य भेख ॥ ९५ ॥ धन्य २ सो जीव है, काल संधि सब टाल । झांई सन्धि मिटा वहीं, नजरे नजर निहाल ॥ ९६ ॥

शब्द ।

संतो ठहरिके करहु विचार, ठौर निजु खदाई । बिना विचार सकल जग

जहँडे, थिति कहु कौन कहँ पाई ॥ माथे व्यापे सन्धिका घेरा, विषय बौराने समुदाई । ज्ञानी भक्त योगी कहलावें, भ्रममहातम भर्माई ॥ त्रय देवाधिकार जगतके, त्रिविधि भेप मन कुटिलाई । चीन्हि न परी घात मनुवाँकी, मृतक भये नर बौराई ॥ निर्णय तिलक लिलाट विराजे, राजकाज विधि युक्ताई । सो प्रपंच विदित है जगमें, जईडे औरन जहँडाई ॥ वैष्णव दयाके रूप कहावे कण्ठी कण्ठ दिखलाई । यत सत सबही टारि वहाये, विषय विकार सो कुलशाई ॥ यत् के डिम्भ जो हरको देखो, कामारी दृढ फैलाई । खुली काछ कामके माते, कहत न लागि सकुचाई ॥ जैसा कहै करै जो तैसा, सत्य शब्द सो अटलाई । फन्दा टूटे तब जिव

छूटे, बिनु गुरु जाल न दशाई ॥ सन्त सदा सोई परमानिक, जिन २ घरकी सुधि पाई । कहहिं कबीर चेत नर बौरे, हो हुशियार दुख बिलगाई ॥

साखी ।

साधु २ सबही बडे, अपनी अपनी ठौर ।
शब्द विवेकी पारखी, ताके माथे मौर॥

टकसार

सत्संगके तीनप्रकार ।

अब सत्संग तीन प्रकारसे होता है सो बताया जाता है । सत्संग तीन प्रकारके ये हैं ।

१ तो साक्षात् सच्चे सन्तोंकी सेवामें जाकर शंका समाधान करना ।

२ कथा वार्ता सुनना अथवा सत्य पुरुषोंकी वाणीका विचार करना ।

२ सन्तोंके मुखसे अथवा शास्त्र द्वारा सुने तत्त्वोंका एकान्तमें बैठकर स्वयम् तर्क वितर्कद्वारा आत्मतत्त्वका सार विचारना। यह सदाही कर्तव्यहै।

सत्संगका प्रथम प्रकार यदि प्राप्त होवे तौ इससे बढकर दूसरा सौभाग्यही क्या है? परन्तु समयके प्रभावसे सच्चे विवेकी पारखी सन्तोंका मिलना अत्यन्त दुस्तर है, यद्यपि साधु तो बहुत देखे जाते हैं और उनकी सेवा भी अवश्य ही करनी चाहिये परन्तु सच्चे विवेकी विना पदार्थ मिलना दुस्तर होनेके कारण; दूसरे प्रकारका जो सत्संग "स्वधर्म पुस्तक" (ग्रन्थ गुरुकी वाणी) का विचार निरन्तर करता रहे।

जहां दो चार दश वीस सत्संगी इकट्ठे होवें, वहां भी गुरुकी वाणी और ग्रन्थकेही आधारपर सत्संग करे सद्गुरुकी वाणीको उल्लंघनकर सत्यगुरुका अपमान कर नरकका भागी न बने। महान् विद्वान्

और वक्ता होनेपर भी यदि सत्य गुरुकी वाणी और सिद्धान्तको छोडकर चलता हो तो उसे भी तृणके समान त्याग करना उचितहै ।और सदा इस साखी-को स्मरण रक्खे ।

साखी ।

शब्द कहै सो कीजिये. गुरुआ वडे लवार । अपने २ स्वार्थको, ठौर ठौर वटपार ॥बीजक ।

सत्संगकी महिमाका विशेष वर्णन—कबीर मन्सूर कबीर भानुप्रकाश, सत्यकबीरकी साखी—आदि सर्व ग्रन्थोंमें मिलेगा वहांसे भी देखना चाहिये ।

सत्संगकी परिपाटी सत्याचार्य पं० श्रीहजूर उग्रनाम साहबके दरवारमें अच्छीहै । वहां सवेरे सातबजेसे दरबारमें पं० श्रीहजूर साहव पधारते हैं—उसी समय वहां उपस्थित सब संत साधु महंतभी आते है और यह दरबार साढे दश वजेतक रहताहै पश्चात् पं०

श्रीहजूर साहबके साथ सभा उठतीहै और सबअपने २ आसनको, भोजन आदि आवश्यक कर्तव्यकेलिये जाते हैं । फिर दोबजेसे साढेचार बजे तक और रात्रिमें फिर सात बजेसे दशबजेतुक नित्य बैठक होती है । इन तीनों समयोंमें बराबर स्वधर्मविषयक चर्चा होतीहै; कथा होतीहै; विद्वान् और धर्मज्ञोंकी व्यख्या होतीहै। अर्थात् सदाही धर्म्म चर्चाकाही प्रवाह चलता रहता है क्या अच्छा होता यदि सर्व महंत लोग अपनेइष्ट देव पं श्रीहजूर साहबके दर्बारकी रीतिको देखकर अपने अपने मठों और मकानों, मन्दिरोंमें भी उसी रीतिको प्रचारकर स्वधर्मकी उन्नतिका प्रयत्नकरते ।

इति अन्तर्गत सायंसन्ध्या तथा सत्संगमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमो विश्रामः ।

समाप्तोयं पूर्वभागः ।

इति अन्तर्गत सायंसन्ध्या तथा सत्संग
माहात्म्य समाप्त ॥

कबीरोपासनापद्धति ।

सुमिरण रत्नाकर ।

(प्रथम भाग.)

अष्टमविश्राम

सूचना ।

इसमें जितने सुमिरण दिये गये हैं वे सब खास छत्तीसगढकी प्रतिसे ज्योंके त्यों दिये गये हैं, केवल "प (ख)" "स (श)" और ह्रस्व दीर्घके अतिरिक्त शुद्ध करनेमेंभी कुछ हस्तक्षेप नहीं कियाहै । यथाप्रति होनेके कारण-छन्दोभंग आदि दोषोंका भागी मैं नहीं हूँ ।

अथ अष्टमविश्रामप्रारम्भः ।

सुमिरण रत्नाकर ।

सुमिरण आदिगायत्री ।

आदि गायत्री सुमिरण सार । सुमिरत हंस उतारे पार ॥ कोटि अठासी घाट हैं,

यम बैठे तहँ रोक । आदि गायत्री सुमिरिके, हंसा होय निशोक ॥ घाटी नाकहि आगे तव जाई, सकल दूत रहे पछताई । आगे मकरतार है डोरी, जहाँ यम रहै मुख मोरी ॥ ओहं सोहं नामके, आगे करे पयान । अजर लोक वासा करे, जगमग दीप स्थान ॥ सुखसागर स्नान करि, होय हंसका रूप । जाय पुरुष दर्शन करै, जिस दिन परम आनन्द ॥ आदि गायत्री सुमिरिके, आवा गमन नसाय । सत्य लोक वासा करे, कहैं कबीर समुझाय ॥

सुमिरणं प्रभात गायत्री ।

आदि गायत्री अम्मर स्थान । सोहं तत्त्व ले हंसा लोक समान ॥ सत गायत्री अजपा जाप । कहैं कबीर अमर घर वास । सत्य है

अमर सत्य शून्य। सत्यहिमें कछु पाप न पुण्य ॥ कहै कबीर सुनो धर्मदास। यह गायत्री करो प्रकाश ॥

सुमिरण मध्याह्न गायत्री ।

अचिंत पुरुष हिरम्बर छाया । नाद बिन्दु दोइ कर्ता आया॥ यमसो जीता लोक पठाया । सुरति स्नेही हंस कहाया॥ अचि-न्त पुरुषकी गायत्री, दीन्ह कबीर बताय । निसि दिन सुमिरण जो करै करम भरम मिटि जाय॥

सुमिरण सन्ध्या गायत्री ।

बारह जोजन कोट जन्त्र जहँ पलमें छूटे । यहि विधि संज्ञा जपे भर्मको आगम

टूटे ॥ गायत्री ब्रह्मा जपे, जपे देव महेश ।
गायत्री गोविन्द पढे, सतगुरुके उपदेश ॥
ताको काल न खाय, जो यह संज्ञा चीन्हे ।
घटमें रही अलोप, काढि हम बाहर कीन्हे ॥
इनपर लै सिद्धो भनी, देव पूजा गो शरीर ।
ब्रह्मा बाचा पुत्रदासा, चपलान उग्र हंसनी
शरीर ॥ शब्द पाय हिरदय धरे, अस कथि-
कहें कबीर ॥

सुमिरणमध्याह्नगायत्री ।

कहैं कबीर अजपा घट सूझे । निगम
नाम मोहि जो बूझे ॥ तन मन धनहि
निछावर करे । सार नाम गहि औ जल
तरे ॥ अष्ट सिद्धि नौ निद्धि माँगे सो देऊं ।
खुरासान खुर वेदमुख गंगा प्रवाह । रिप
सिप भार गेर तराई । नौगुन धरजा सुरति

प्रकट होय सूझे ॥ खोजो सुरति कमलके तीर । सद्गुरु मिलगये सत्यकबीर ॥

सुमिरन सोवनेका ।

संयम नाम सदा चितलाई । जासों काल दगा मिटि जाई ॥ काल दगा धरि आवे भेख । जीव चूके धरतीकी रेख ॥ सोवत समय जो मारे तारी । सतसुकृत करै रखवारी ॥ कहैं कबीर बंकेज बुझाई । सोवत जीव नष्ट नहिं जाई ॥ अमर पिछौरा ओढिके, सुख मंडलमें सोय । कबीर ऐसे गुरु पाइके, कहा मुक्तिको रोय ॥ उत्तर करो सिराना, पश्चिम कीजे पीठ । कहैं कबीर धर्म्मदास सों, यमकी लगे न दीठ ॥

सुमिरन प्रातः उठनेका ।

जो स्वर चले प्रात संचारी । सोई पग धरि उठो संभारी ॥ दिवस समस्त हर्षसो बीतें । जहां जाय सो कारज जीतें ॥ पुहमी में पग दीजिये , सुनो संत मतिधीर । कर जोरे विनती करों, दर्शन देहु कबीर ॥

सुमिरन दिशाजानेका ।

अन्नसकल तनपोख, शब्दसुरति सो पेख । सूक्षम लगन उतारोकाया, निर्मलहोयहमार॥ कहैं कबीर यही तत्सार । चौरासी सो जीव उबार ॥

सुमिरन मूल द्वार धोनेका ।

सुरति संतोष सुसम जब भया उतार । बाँये कर परसे जलढार ॥ सतगुरुशब्द गहोमतिधीर । कहैं कबीर होय पाक शरीर ।

सुमिरन जलपात्रका।

धर्मदास मैं तुम्हें बुझाऊं। जल पात्रका भेद बताऊं॥ जलपात्रको गाहिके उत्तम करो बनाय। कहै कबीर निर्मल भये, संशय भ्रम मिटिजाय॥

सुमिरन तूंबा प्रछालनेका।

तत्ततत्तका तूंबा, शब्देलियो समोय। कहै कबीर धर्मदाससों, तूंबा निर्मल होय॥

सुमिरन हाथ मटिआवनेका।

माटी खाक माटी पाक। माटीमें माटी गर्काप॥ कहैं कबीर हम शब्द सनेही। सत्त शब्दसों पाक होय देही॥ मृत्तिका लेव हाथ लगाई। अजर नाम सुमिरो चितलाई॥

मृत्तिका लीन्हों हाथमें, निर्मल भया शरीर॥
कर्म भ्रम सब मेटि के, सुमिरो सत्य कबीर

सुमिरन दातौन तोरनेका ।

धन्य वृक्ष जिन दातौन दीन्हा । साधु संत पर दाया कीन्हा॥दाया कीन्ह भया प्रकाश। रक्षा करें कबीर धर्मदास ॥

सुमिरन दातौन करनेका ।

सत्तकी दातौन सन्तोषकी झारी । सत्त नामले घसो विचारी॥ किया दातौन भया प्रकाश । अजर नाम गहो विश्वास ॥ अमी नामले पहुंचे आय । कहै कबीर सतलोक सिधाय ॥

सुमिरन दातौन फारनेका।

फटी दातौन भया प्रकाश। अजर अमर कबीर धर्मदास॥

सुमिरण मुख धोनेका।

मुख परसे मुक्तायनि वासा। जिनके परसत लोक निवासा॥ लै जल मुख माहिं चढावे। अम्बुनाम हिरदे लौलावे॥ कहैं कबीर सुनो धर्मदास। सो हंसा सतलोक निवास॥

सुमिरण अमरी उतारनेका।

अमरी अमर लोकसों आई। तीनलोकमें निर्भय भाई॥ तन सोधो मन राखो धीरं। अमरी उतारो खारी नीर॥ कहैं कबीर अमरभईकाया निज शब्द अमरीका आया॥

सुमिरन जलमें पैठनेका ।

जो साहब दायाकर पाऊँ कर बन्दगी जल मांझ समाऊँ । पाल निहपान सतगुरु शब्दसमान ॥

सुमिरण स्नान करनेका ।

अमीसरोवर ज्ञान जल, हंसा पैठ नहाय । काया कञ्चन मन मगन, कर्म भर्म मिटि जाय ॥ पिंडे सो ब्रह्मंडे जान । मानसरोवर कर स्नान ॥ सोहं हंसा ताको जाप । कहैं कबीर पुन्य नहिं पाप ॥ ऐसी विधि कर स्नान सो हंसा सत लोक समान ॥

सुमिरण स्नान करके बन्दगीको ।

नहाय खोरके शीस नवाई । अलख पुरुषके दर्शन पाई ॥ अमी शब्दको कीजे जाप । कहैं कबीर हमरघरवास ॥

सुमिरन कोपीन पहिरनेका।

पारा राखे गुरुहमारा ॥ बारह बरसकी कन्या आई । उलटा पारा रहो समाई ॥ ऊपर बन्दी छोर विराजे । पारा खसे तो सतगुरु लाजे ॥ सतकी कोपीन वज्रका धागा । गुरुप्रताप सो बन्धन लागा । कहै कबीर तजो अभिमान । पारा खसे तो सतगुरुकी आन ॥

सुमिरन जल भरनेका ।

जीव जन्तु सब दूरपराऊ, भरि हौं निर्मल नीर । हत्या पाप लागे नहीं, रक्षा करें कबीर ॥

सुमिरन जल छाननेका ।

अमृत जल निर्मलकर छाना । सतगुरु साहबके मनमाना ॥ कहैं कबीर भरम सब भागा । टूट्यो जबै पुरानो धागा ॥

सुमिरन तिलक करनेका ।

तत्त्व तिलक तिहुँ लोकमें, सत्तनाम निज सार । जन कबीर मस्तक दिये, शोभा अगम अपार ॥ पार कोई बिरलै पावे । पार पावे सो संत कहावे ॥ योनी संकट बहुरि न आवे । कहैं कबीर सत लोक सिधावे ॥

सुमिरन दर्पन देखनेका ।

दर्पणमें मुख देखिये, कबहिं न होय चित्त भंग । गुरुके वचन संतकी सेवा, चढे सवाया रंग ।

सुमिरन चरणामृत महाप्रसाद पानेका ।

चरणामृत महाप्रसाद जो लीन्हा । सत्य शब्दका सुमिरन कीन्हा ॥ अर्ध उर्ध मध्य धर ध्यान । कहैं कबीर सो संत सुजान ॥

सुमिरन चरणामृत देनेका।

हो साहव मैं विनती लाऊँ। कौन नामते पगपखराऊँ॥ दहिने पग प्रथम ही जल नावे। वल हमारसो पग पखरावे॥ शब्द-सार निर्मोलिक सारा। पगपखराओ हंस हमारा॥ यहि विधि पग पखराओ भाई। दगा धोख सब दूर पराई॥ साखी॥ अजर नामको सुमिरन, चीन्हैं हंस हमार। कहैं कवीर धर्मदास सो, सीस न आवें भार॥

सुमिरन महाप्रसाद देनेका।

पके अन्नको ग्रासन कीजे। पांच तत्वको भोजन दीजे। जवे जीव मांगे प्रसाद। अजर नामको कीजे याद॥ एक खवा हाथमें लेवे। महाप्रसाद दासको देवे॥ महाप्रसाद

एक धनीको, जाको सब विस्तार ।
मूरखलेख न पावे, कहैं कबीर विचार ॥

सुमिरन महाप्रसाद पानेका ।

एक रवा हाथमें लीन्हा । उग्रनामका सुमिरन्न कीन्हा ॥ महाप्रसाद ऐसी विधि पावे । यमकी दसी निकट नहिं आवै । उग्रनाम हृदय लौलाई । ऐसी विधि प्रसाद जो पाई ॥

सा०—कहैं कबीर धर्मदाससो,महाप्रसाद जो लेय।काल दसी सब टूटे,यमहिं चुनौटी देय॥

सुमिरण चरणामृत पानेका ।

चरणामृत शिष्य जो लेई। अंबुज नाम हृदय चित देई ॥ लागे नहीं कालकी छाहीं। चरणोदक जो होय सहाई ॥ ऐसी विधि

चरणोदक लेई। यमहिं चुनौटी निशिदिन देई॥ ले चरणोदक माथ नवावे। तीन दण्डवत तब पहुँचावे॥ सा०॥ कहैं कबीर धर्मदाससों, यह शिष्यको व्यवहार॥ दगा धोख सब मेटो, हंस उतारो पार॥

सुमिरण जल पीनेका।

उत्तम शीतल निर्मल नीर। अमृतपिय तिरषा गई दूर॥ सत्य गुरु मिल गये सत्य कबीर। भागो काल विषमके तीर॥

सुमिरण घर बुहारनेका।

सुमति बुहारी कर गहिलीना। कचराकुमति दूर कर दीना॥ बावन लाख दगा मिटिजाई साहब कबीरकी फिरी दुहाई॥

सुमिरण घर पोतनेका ।

हरियर गोबर निर्मल पानी । चौका पोते सुकृत ज्ञानी ॥ सवा लाख चूक बकसाये । चौको पोत जेवनार चढ़ाये ॥ कहैं कबीर सुनो धर्मदास । हंसा पहुंचे पुरुषके पास ॥

सुमिरण चूल्हामें अग्नि बारनेका ।

चूल्हा हमारे चौहटे, सब कर तपे रसोई । सत् सुकृत भोजन करें, हमको छूत न होई ॥

सुमिरण रसोई बनानेका ।

सतसुकृत कीन्हा जेवनारा । ताते करत न लागे वारा ॥ सतधरी दोपहरिया साँझा । लक्ष्मी बैठी रसोई माँझा । सत्त पकवान लक्ष्मी करे । तीनलोकका उदर भरे ॥ कहैं

कवीर लक्ष्मी समुझाय :। संत सुहेला वैठे आय ॥

सुमिरन थारी पारसनेका ।

चंदन चौका कंचन थारी । हीरालाल पदुम-की झारी ॥ वहुत भांति जेवनार वनाये । प्रेम प्रीति सो पारस कराये ॥ संत सुहेला भोजन पाई । सत्तसुकृति सत्तनाम गुसाईं॥

सुमिरण प्रसाद अरपनेका ।

संत समाज धरती स्थूला । प्रसाद चढावें धर्मनिमूला ॥ ओढेसाल क्षमा के दीन्हा । सोई शब्द जो पावे चीन्हा ॥ नीर निरंतर अन्तर नेह । शब्द अगाध जो लागे देह ॥ कहैं कवीर चित जित जनि डरो । नाम सुमिरि जल अर्पण करो ॥

सुमिरण अचवन करनेका ।

करि प्रसाद जल अचवन कीन्हा । अचवन करके खर्चा लीन्हा ॥ दूतभूत सब गये पराय । जब टेके सद्गुरु के पाय ॥

सुमिरन—पाकर बन्दगी करनेका ।

वारी तेरी बल गई, पलमें सौ सौवार । सदगुरु मोपर दाया करो, साहब कबीर सिरजनहार ॥

सुमिरन सुपारी मोरनेका ।

सेत सुपारी मोरके, अमीअंकलौलाय । कहैं कबीर धर्मदास से, हंसलोक को जाय ॥

सुमिरण पान—पानेका ।

गुरु कबीर ने बीरा दीन्हा । हंस बचाय कालसो लीन्हा ॥ सत्यलोकमें बैठे जाई ।

सत्त सुकृत जहँ आप रहाई ॥ कहैं कबीर जे हंस उबारे । जरा मरण भव कष्ट निवारे

सुमिरण टोपी लगानेका ।

तरे धरती ऊपर अकाश । चांद सूर्य दोऊ पाट ॥ तैतिस कोटिके आगे पार । सोई जानो सतगुरुकी हाट ॥ नौ नाथ चौरासी सिद्ध, जीतके औघट बांध । धर्म्मदासके मस्तक दीन्हा, कबीर विराजे साथ ॥ बाद-शाह एक खूंटका, अखंड द्वीपके भूप । दुर्वेश भूप ब्रह्माण्डके, सोई साधु गुरुरूप ॥

सुमिरण दीपक बारनेका ।

आदि अन्त एक ज्योति है, स्थिर थीर है नीर । आवे सत्य कबीरके शब्दकी छरी; यम जालिमकी काटे सुरी ॥ धर्मदास कबी-

रके लागे लागे पाई । बावन लाख दगा मिटि जाई ॥

सुमिरण आसन करनेका ।

सत्त पुरुषको सुमिरिके, आसन करे बनाय । तापर हंसा पौढई, कबीर धर्म्मदास सहाय

सुमिरण कमर कसनेका ।

धर्मदास कसना कसे, नाम पान लिय हाथ । सत्य कबीर पहुँचा वहाँ, सकल संत लिये सांथ ॥

सुमिरण रस्ता चलनेका ।

सिर पर साहब राखिके, चलिये आज्ञा मांहि । आगे साहब कबीर हाँक देत हैं, तीन लोक डरनाँहि ॥ कागे कागरे विकार

कूकरा मंजार । नाग नाहर दूत भूत वट पार ॥ सबको बाँधि कबीर आन घाट ले डार ॥ घाट वाट वन औघट मोहि खसमकी आस । मते चले कबीरके कबहूं न होय विनास ॥

सुमिरण सात शिकारीका ।

अमीनाम; उर्द्धनाम; परिमलनाम दयावन्त; वालदीप; सहजमूल; अग्रमुनि; सत्तनाम साहबके अमी नाम; पोहप सुगन्ध कंठकी सिला निर्गन्ध्य सुगंध योगजीत निहं गमित॥

इति श्री पट्कर्म विधि नित्यकर्म सुमिरण समाप्तोयं ग्रन्थं सुमिरण रत्नाकर प्रथम भाग । कबीरोपासनापद्धति अन्तर्गत अष्टम विश्राम समाप्त ।

श्रीपूणसाहबकृत ।

॥ श्रीः ॥

गुरुसहस्रनाम ।

नवमविश्राम ।

भैरोपासनापद्धति ।

निवेदन ।

यह पुस्तक लेखक महाशयोंकी कृपासे अबतक इस अवस्थाको पहुँचगई है, जैसा आपके सन्मुख उपस्थित है । कितने कारणोंसे इसके शुद्ध करनेका अवसर नहीं मिला हैं यदि कोई विद्वान् महात्मा गण इसको शुद्ध करके मेरे पास भेज देंगे तो धन्य-वादपूर्वक दूसरी आवृत्ति इसकी फिरसे छिपाई जावेगी ।

श्रीगुरवे नमः ।

श्रीगुरु सहस्रनाम ।

(कबीरोपासना पद्धति अन्तर्गत)

अथ नवमविश्राम प्रारम्भः ।

न्यास प्रारम्भः ।

ॐ अस्य सद्गुरु दिव्य नाम स्तोत्र मन्त्रस्य ॥ शिष्य ऋषिः ॥ मंत्रछंदः ॥ गुरु देवता ॥ सोहंबीजं ॥ अहं शक्तिः ॥ गुं [1]अंगुष्ठाभ्यां नमः ॥ रुँ तर्जनीभ्यां[2] नमः ॥

---

१ यह मंत्र पढकर दोनों हाथकी तर्जनी अंगुलीसे दोनों हाथके अंगूठोंका स्पर्श करते हैं । अंगूठेके पास जो अंगुली है उसीका नाम तर्जनी है ।

२ यह मंत्र पढकर दोनों अंगूठोंसे दोनों तर्जनी अंगुलियोंका स्पर्श करते हैं ।

घं मध्यमाभ्यां[3] नमः ॥ नं अनामिकाभ्यां[4] नमः ॥ मँ कनिष्ठिकाभ्यां[5] नमः ॥ सं करतलकरपृष्ठाभ्यां[6] नमः ॥ गुँ हृदयाय[7] नमः ॥ रुँ शिरसे[8] स्वाहा ॥ वँ शिखायै[9] वौषट् ॥

---

३ इस मन्त्रको पढता हुआ दोनों मध्यमा अगुलियोंको स्पर्श करे ।

४ इसको पढकर दोनों अंगूठोंसे दोनों अनामिकाको स्पर्श करे ।

५ इसको बोलता हुआ दोनों अंगूठोंसे दो कनिष्ठिकाको स्पर्श करे ।

६ यह मन्त्र पढकर प्रथम दाहिने हाथके नीचे बा हाथ रक्खे फिर बाँये हाथके नीचे दाहिना हाथ रक्खे

७ यह मन्त्र पढकर पांचों अंगुलियोंसे हृदयका स्पर्श करते हैं ।

८ यह मन्त्र पढकर पांचों अंगुलियोंसे शिरका स्पर्श करते हैं ।

९ इस मन्त्रको बोलकर पांचों अंगुलियोंसे शिरका स्पर्श करते हैं ।

नँ[10] कँवचायहुं ॥ मँ[11] नेत्रत्रयाय वौषट् ॥ सँ[12] अस्त्राय फट्। गुरुप्रीत्यर्थे[13] जपे विनियोगः।

श्लोक ध्यान।

ध्यायेत् सद्गुरु स्वेतरूपममलम्, श्वेतांबरं शोभितम्। कर्णैकुण्डलश्वेत शुभ्र मुकुटम्, हीरा

---

१० यह मंत्र पढकर दाहिने हाथसे वायें खवेका और वामे हाथसे दहिनें खवेका स्पर्श करते हैं।

११ इसके द्वारा दहिने हाथसे दोनों नेत्रोंको छूते हैं।

१२ यह मन्त्र पढकर दहिने हाथकी तर्जनी और मध्यमासे वामें हाथकी हथेलीपर मारते हैं।

१३ यह पढकर ऐसा सङ्कल्प करे कि, सद्गुरुको प्रसन्न होनेके लिये मैं यह पाठ करता हूं।

इसके पश्चात् प्रथम और द्वितीय श्लोकमें लिखे अनुसार सद्गुरुके स्वरूपका मानसिक ध्यान करे और सहस्र नामोंद्वार सद्गुरुकी विभूतिका चिन्तन करता हुआ पाठ करे। उपरोक्त करन्यास और अंगन्यास तथा ध्यानकी विधि गुरुसे सीखना चाहिये।

मणिर्मंडितम् ॥ नाना माल मुक्तादि शोभि-
तगला, पद्मासने स्वस्थितम् । दयाब्धिधीर
सुप्रसन्न वदनम् सद्गुरुं तन्नमामि ॥ १ ॥
द्वै पदम् द्वै भुजम्, प्रसन्न वदनम् द्वै नेत्रम्
दयालम् ॥ सेलीकण्ठ माल उर्द्धतिल-
कम् श्वेताम्बरीमेखला ॥ चक्रांकस्य विचित्र
ष्टोपलसितं, तेजो मयी विग्रहं । वंदेत्सद्गुरु
योग दण्ड सहितं कब्बीर करुणा मयम्॥२॥
एतानि चतुर्मुखानि,विख्यातानि महास्याः॥
अज्ञायस्थस्तुतानि साधुभिःशजतुं (किंवा)
साधुभिः परगीतानि वक्ष्यामि जीवितेयः
॥ ३ ॥ न अंग न अंगन्यासं नकरंकर
न्यासतो । स्वयमश्च गुरुमंत्र स्वयं भूत्वा
स्वयं जपः ॥ ४ ॥ सोंमाप सोहंरूपाय सत्य
नामाय साक्षिणे ॥ करुणामयी कबीराय,

त्रिपदातीताय नमः ॥ ५ ॥ अमी अमृत नामाय, अजराचिन्तरूपिणे ॥ अमरः सत सुकृताय, दयाब्धिगुरुवे नमः॥ ६ ॥कृपाल कृपायः सिंधुश्च, कृपायोत्त कृपाधनं ॥कृपार्णव कृपा वृष्टिः, कृपा कर्ता नमोनमः ॥७॥ दयाल धीर्यवंतश्च, दयासिंधु दयार्णव॥दयाकर्ता दयावन्ता, ज्ञानदाता नमो नमः॥८॥ अभयान्निर्भयश्चैव, निर्भय पद दायकम्।भ्रमहारकनामाय, भोतारक नमोनमः ॥ ९ ॥ अचल रूपं अचलं चिन्तातीत प्रकाशकम् । दीनानाथं दीनोद्धारं, दीनवत्सल सुन्दरम् ॥ ॥ १० ॥ अमृत मृत्यु नाशाय, महा भ्रम निवारणम् । योग जीत अजीताय, ज्ञान वेत्ताय किञ्चन ॥११॥ निर्मोही मोह नाशाय जगत्याशा विनाशकम् ॥ निर्वैरन्भ्रमहीनाय, निर्भ्रमाय नमो नमः ॥ १२ ॥ उपदेश कर्ता

स्वदेश दाता,उपाधिहीनश्च भय शोकहर्ता॥ संकष्ट नाशाय सिद्धान्त मूला, स्वयं गुरू सिद्ध अहं नमामि ॥१३॥हंसाय हंसरूपाय हंस पाल हंस पंति ॥ हंसनायक श्वेताय, हंसोद्धारक तारकम् ॥ १४ :॥ जीवोद्धारक शान्ताय, शान्ति रूप अशाश्रिता ॥ शांति कर्ता शान्ति धर्ता, सर्वे शांति नमोनमः ॥ ॥ १५ ॥ हंता नाश दयापालं संशयजाल विखण्डनम् ॥ वपुनाशा प्रकाशश्च, वपुर्हर्ता वपुर्हनिम् ॥ १६ ॥ परिक्षः परिक्षाश्चैव,परि- क्षं परीक्षावतम् ॥ परायत्त्वं अपाराय, सर्वा- तीतनमोनमः ॥ १७ ॥ पाखण्ड खण्डनम्, अजरूप अजामरः ॥ अज्रनामि जरा तीतं, स्वतः सिद्ध स्व साक्षिनः ॥ १८ ॥ आदादली आदि रूपं,आदि मूर्ते अनाद्यये॥

अनादि सिद्ध नामाय, अकांक्ष अचले प्रिये ॥ १९ ॥ निर्णय निर्णयः कर्ता, नास्ति सिद्धान्त नाशकः ॥ निराधार निराभासः, निर्विघ्नश्च निरामयः ॥ २० ॥ सुखाय सुख दाताय, सुखार्णव सुखात्ययम् ॥ नास्ति सुखं मतीताय, आस्ति सुख नमोस्तुते॥२१॥ अनादिनामश्च अनादि रूपं, आनंद तीतिश्च अकंप रूपं ॥ परब्रह्मतीताय प्रकाशतीतम् ऽधिष्ठानतीतं हि नमोनमस्ते ॥ २२ ॥ गुणी पंचगुणातीतं, सर्वातीतं सर्वोत्तमम्। भासप्र-पंचतीताय, भासकातीतयेनमः ॥ २३ ॥ अखिलज्ञम् ज्ञानतीतं, अंधकारनिवारणम् । साक्षीतीतं वोधातीतं वोधकर्ता, नमोनमः ॥ ॥ २४ ॥ विघ्न विध्वंसनन्नाम, सर्व मंगल-दायकम्॥ वृक्ष रक्षक नामश्च, वृदधारीवृदः प्रिये ॥ २५ ॥ शिष्यपालं, भक्तपालं, दीन-

पालं दिनप्रिये ॥ दीनोद्धारक साधाय वंदि-मोचनये नमः ॥२६॥ कालसंधि निवारंच, महासंधि विध्वंसनम्॥भक्तोद्धार जगदोद्धारं असंधीसाधकः प्रिये ॥ २७ ॥ साधूसन्त साधुरूपं संतस्थं संतधारना ॥ अविनाशी निर्विनाशं,प्रपंचं हीनम् पुरुषम् ॥ २८ ॥ पुर्पातीतं मुनीन्द्रश्च सारशब्दस्वरूपवान् ॥ त्रिशब्दातीतस्थिराः स्थिरकर्तास्थिरालयं ॥ ॥ २९ ॥परिणामंवस्थातीतं,भौभै दुःखानि-वारणम् ॥ योगसन्तयन्ताय, तरन्तारं नमो-स्तुते ॥ ३० ॥ भवाब्धिपोतं भवरोगवैद्यं भावार्णवं घोरविनाशनन्दुखः॥ अशरणशर्णा-यउदारबुद्धिः,समासमं जीव समेक दृष्टिः॥ ॥ ३१ ॥ मंगलं मंगलः कर्ता, वेर दाता प्रतापवान्॥निष्क्रियः निर्विकारश्च, निर्द्वंदाय

शिष्यः प्रिये ॥ ३२ ॥ जीवनं सर्व जीवानां, भूषणं ज्ञान चक्षुषा ॥ मुक्ति दाता भक्तिदाता ज्ञान दाता नमो नमः ॥ ३३ ॥ मुक्तपदं मुक्त नामं, सर्व बंधन मोचनम् ॥ विद्यादाता बुद्धि दातासर्वज्ञाय नमो नमः ॥ ३४ ॥ परीक्षा प्रेरकन्नाम, समाधाय प्रदानकम् ॥ प्राप्ति कर्ता प्राप्ति रूपं, भक्ति नाथ नमो नमः ३५ सगुणं सगुणश्चैव, प्रसन्नं करुणाकरम् ॥ विचारंचप्रमोदारं, सर्वोत्कृष्ट नमो नमः ॥ ॥ ३६ ॥ भ्रमसंहारनन्नाम काम संहारनं मसि ॥ क्रोध दमनमक्रोधं, मोह निर्मोह नाशकम् ॥ ३७ ॥ निर्लोभसर्व जीताय, अजीतायजितेन्द्रियः ॥ सर्व वस्य अवस्यंच सर्व मान्य अमान्ययोः ॥ ३८ ॥ सर्व पूज्यं मंत्र मूलं, ध्यान मूलं स्वरूपकम् ॥ ज्ञान

विज्ञान मूलाय, हंस मूलं हंसं प्रिये ॥ ३९॥
अयोनिसंभवकृपा कटाक्षं, अवीर्ये अरेत
अकाम रूपम् ॥ अपाप अतात अजा
अतीत, अविगत्य रूपं अहं नमामि ॥ ४० ॥
अखिलादिखिलं ज्ञाता, अखिलानंद तीतयोः
॥ संग सन्तप्रियोनामं परमुस्नेही पराकृतिः
॥४१ उद्धारं मौहारकंच, निरंजनातीतप्रभु॥
कर्ममोचन नामाये, निर्भरः शीतलाश्रयः
॥ ४२ ॥ भृंगीनाम अक्षैनामं, शीलनाम
सुखार्णवम् ॥ पर्मनामाय स्तुतिश्च, विज-
पाय जपातियो ॥ ४३ ॥ अमलन्निर्मलश्चैव,
हंसज्ञ हंस नायकम् ॥ भक्त सहाय कर्ता
च सुखदाता सुखः प्रभू ॥ ४४ ॥ सत्य-
वक्ता प्रकाशं च, परम पारखलीलया ॥
अमोल मंगलन्नाम, अविचलं गुरवेनमः४५
संतोष शक्त वीरंच, साधू कबीर नामयम्॥

हंस कबिर नामाय, गुरु कबीर नमोनमः ॥
॥ ४६ ॥ पर्म गुरु पर्म वैद्यं, पर्मलक्ष पदा-
नये॥सिद्ध कबीर नामाय निरालम्ब कल्प-
द्रुमः ॥४७॥निर्विघ्न करुणा रूपं, दिव्यनाम
अनामयम् ॥ छायातीतं मायातीतं,काया
तीतं नमोनमः ॥ ४८ ॥ कालमर्दनं कीर्ति
वर्द्धनं,वृक्ष रक्षकं ज्ञान अक्षकम्॥सुखःसागरं
ज्ञान आगरं, पर्व दायकम् सर्व लायकम् ॥
॥ ४९ ॥ वाच्य वाचकातीताय, अनिर्वाच्य
अतीतये ॥ छन्दातीतं वेदातीतं, शास्त्रातीतं
नमोनमः ॥ ५० ॥ नररूपं नरातीतं, नरज्ञ
नर नामयोः ॥ यक्षराक्षस तीताय गंधर्वा-
तीतये नमः ॥ ५१ ॥ दैत्यातीतं देवातीतं,
त्रिकालभासकं प्रभू ॥ त्रिदेवातीतायन्नामः
त्रिकालज्ञ नमोनमः ॥ ५२ ॥ पंच ब्रह्म
अतीताय, पंच मात्रा विवर्जितः ॥ दश-

मात्रा विनिर्मुक्तं, पंचस्थान अमानयो ९३
पंच अहंकारातीतं पंच देह अतीतयो ॥
पंचतत्त्व अतीताय पंच विषय नाशकम्
॥ ९४ ॥ चतुर्दश करणैरतीतं, षट् भाव
विनिर्गतम् ॥ षट् विचार रहिताय, योगा-
तीतं महद्गुरुम् ॥ ९५ ॥ विराग वैराग्या-
तीतं योगं वियोग वंर्जितम् । भोग्य भोगा-
तीतश्चैव ; संयोगातीतायनमः :॥ ९६ ॥
विवेक विवेकातीतं, विवेकत्व विवेकिनः ॥
अविवेक नाशनश्चैव, विवेकः स्वरूपं प्रभू
॥ ९७ ॥ वैराग्यजाता गुरुभक्ति ताता,
सत्यं दया धैर्य शीलस्य कर्ता ॥ विचार
मूलं ज्ञानस्य जनकं निर्णयस्सरूपं अहं
भजामि ॥ ९८ ॥ निर्विन्दं प्रकाशश्चैव,
स्थिर स्वस्थिति दायकम् ॥ क्षमा मिथ्या
त्यागनश्च, निःसन्देहनमोनमः ॥ ९९ ॥

गर्वप्रहारी अद्रोहं, अहंता नाशनं प्रभुः ॥ समदृष्टि सर्वमित्रं, भयहरनं अभयीवरम् ॥ ॥ ६० ॥ अभैराज अभयदाता, सत्यसंग निवासिनम् ॥अनित्यखंडनन्नाम,सदा नित्य स्वरूपवान्॥६१॥ ससर्विदंविमावाय, सर्वा-नुग्रह कारणं ॥ बंधनंनाशनं खडं, समीपा-शविनाशकम् ॥६२॥ दास रक्षा दासपालं, सर्वव्याधि प्रसाम्यतम् ॥ परदुःखभंजनन्ना म, भक्तानामानिरंजनम् ॥६३॥दुष्टगंजनंना-माय, ज्ञानभंजनंतथैवंच॥भर्मघातं पवित्रंच, सर्व घात निवारणम्॥६४॥ पावनः पावनः कर्त्ता, भवाब्धि नौका एवच ॥ कृतांतं भयहरं चैव मृत्यू भय विनाशकम् ॥ ६५ ॥ भूतभय नाशनं चैव, राजभय नाशनं तथा ॥ चौर भयनाशन्नाम, व्याघ्रादिभय विनाशनम् ॥ ॥ ६६ ॥ अलक्षलक्षायमक्षैस्वरूपं, सिद्धा-

न्तदाता ऐश्वर्यमूलम् अनादिदिक्षानिर्प-
क्षरूप, सजीवनेजीवन सर्वंजीवः ॥ ६७॥
महासजातिभानंच, गुरुदाता तथैवच॥ सर्व
सामर्थ्य वानाय, गुरु वयं नमो नमः ॥६८॥
साधुगुरुं सत गुरु, अग्र नामतथैवच॥अमल
अक्ष नामाय, अज्ञावन अनामय ॥ ६९ ॥
पतितः पवनन्नाम, दीनोद्धार दिनाप्रिये ॥
शरणागत रक्षकाये,जग्दोद्धार नमामिऽहम्॥
॥ ७० ॥ भूभय निवारणन्नाम,भूसिन्धु तार-
कंतथा ॥ दैत्य विध्वंसनन्नाम, कल्पना
खण्डनं प्रभू ॥ ७१ ॥ दया धीरं भय हारं
ज्ञान विज्ञान कारकम् ॥ सारंच सर्व सारंच,
स्वप्रकाश ,सज्जनाप्रिये ॥ ७२ ॥ परक्षवान
स्वयुक्तं, सन्ताधारं निराविशं।। अइन्द्रि अगाध
नाम, अपारं अप.ः प्रिये ॥ ७३ ॥शुकादिश्च
स्वरूपादिश्च, मुक्त नाम मुक्ता दया ॥निर्त

रूप सुर्तिनाम, अपार औगाह तीतयोः ॥
॥ ७४ ॥ अमाया अकायाश्चैव, छायासंधि
विवर्जितः । अग्राह्यं ग्राह्यातीतश्च, अविकार
प्रबोधिता ॥ ७५ ॥ प्रबोधकर्त्ता त्रय ताप
हर्ता,हबोधस्यदाता सत्सिद्धि चारी ॥धैर्यधरं
परमोद्धार रूपं, आनंद भेदं अहन्नमामि ॥
॥७६ ॥ अचलं विगतन्नाम, अभेदागम-
लक्षणः ॥ अविनाशा परोक्षंच, पुराण पुरु-
षोत्तमम् ॥ ७७ ॥ आद्यं कुरुते कृतस्य
पर्मसारतथैवच ॥साधू पति साधु धीशं, सत्य
सन्तोष नामयोः ॥ ७८ ॥ साधु स्नेही सन्त
स्नेही, भक्तस्नेही भक्त प्रिये ॥ पर्मस्नेही सुर्ति
स्नेही, प्रेम स्नेही च स्वास्थिरम्॥७९॥हिरंमरं
हिरंबरा, पुष्प दीप बिहारेच ॥ सत्य लोक
पतिनामं इति अक्षयवृक्ष नमो नमः ॥इति॥

इति कबीरोपासनान्तर्गत नवमविश्राम स०

सत्यनाम ।

अथ दशम विश्राम प्रारम्भः ।

स्तुति रत्नाकर ।

अथ सन्ध्यावंदन स्तुति ।

छन्द शिखरणी ।

कबीरं भानं भाकर निकर ज्ञानं विधि. मयम् । परस्थाने थीरं जगत गुरु पीरं निधि नयम् ॥ महा-तेजो राशं वदन वदनांश नृप नृपा । प्रतापं तापं ता दनुज दल दापं तव कृपा ॥ १ ॥

तरंतं तारंतं लहत जन सारं वसुमति । महत्वं पारंतं अकथित अनन्तं पशुपपतिं ॥ सुराधीशाधीशं हिय तिमिरि पीसं जगजगे । भवं भावं भंगे रतिर करुणामयं पगपगे ॥ २ ॥

जनं.कंजं रंजं दरस भ्रम भंजं सतहितं । निहारं हारं हा तिमिर हर पारंगत छितं ॥ सती सूतं सातं बिलग बिलगातं दिनकरा । यती भोगं भागं गत बिगत भागं किनकरा ॥ ३ ॥

प्रजा पीडा व्रीडा घन तिमिर क्रीडा महि महा । हतं मुद्रा निद्रा शम दम न क्षुद्रा गति गहा ॥ सतो संगं रंगं बसतव प्रसंगं भसकरा । उमंगं अंगं एक समस अनंगं बसकरा ॥ ४ ॥

नमस्कारं कारं-क्रमर क्रम् कारं कक कृते । ववं वंदे वंदे भनत भवं फन्दे वव वृते ॥ रमं रामं रम्यम् रटत रर कल्याण करनम् । परणम्य तौ पीटे परं परमीटे त्रय वर्णम् ॥ ५ ॥

इति शिखरनी छन्द ।

अथ कबीर भानु वियोग सवैया ।

सतनाम व्रतीवर संत सती, दिन अन्त भयो भगवन्त पयाना । युगनैन महासुख दैन दुरे, धा

धीर धरो पद पङ्कज ध्याना ॥ दृढ इन्द्रिन दौनते मौन गहो, थिर आसन हो अनुसासन माना । यह संधि सचेत सतो गुणते, सतधार हिये सत रूप समाना ॥ १ ॥

तुमरो जन तू चकई चकवा, गहि शोक वलंभ वियोग भयेते । सजनी रजनी दुर जीव डरै, हरिके हरिके हरिके अथयेते ॥ वृषभाल कराल सुखेन फिरे, भय भूरि भई प्रभु दूर गये ते । वन वारिज सन्त यकन्त गहे; सकुचे निलि हेरि जो घेरि लिये ते ॥ २ ॥

सम सम्पति सौच करी रकरी, दम कम्पत भये जब तूट करी है । गुण ज्ञान धने बन बाग बने, फल फूल भरे तरु तोर धरी है ॥ घन घोर निशा मति भर्म कियो, शुभ धर्म्म लिये दुर्बुद्धि भरी है । जग जीवहि आलस निन्द गही, सबहीं कहँ लागि मसान भरी है ॥ ३ ॥

कोइ शीलवती युवती जगमें, जिन पीठ पिछार पिया व्रत पाला । जिहिं धर्म अडोल अदाग सदा, गिरि निश्चल सोन सुमेरु सो हाला ॥ निजु पीय सो पीय पतिव्रतके, जगमें सब ओर नपुंसक माला । जिमि पीठ दिखाइ चले जनको, इमि आइ तु दीठ दिखाव दयाला ॥ ८ ॥

पल नैन ढका जब पावत है, तब डंसत है यह नागिन कारी । दृग झंपन होय सचेत रहौ सुचि सन्त स्थान समाधि सम्हारी ॥ पलके पल गाफिल पावतज्यों, यह डंक तुरंत तेही पल मारी । शुभ-कर्म क्रिया सब भ्रष्ट करे, भवसागर मांहि डुबावन हारी ॥ ९ ॥

यदि कज्जल गेह न उज्ज्वलता, विनु दाग ब चे कोइ नाम सनेही । जेहि ओर कबीर कृपाल ढुरे, तिहि काल निहाल न भय कछु तेही ॥ तम

त्रासक ध्यान धरो उधरो, सुधरे सुधि बुद्धि दया दृग जेही॥ गुरु देव बिना निशि नाश नहीं, विश्वास करो एक युक्ति है एही॥ ६॥

यह नींद गही है महा ठगनी, छनमें धन जो धन वृन्द बुहारी। गहि गोड़ जती नहिं छोड़ मती, छलि साधुकी सम्पति लूटन हारी। सजि कण्ठको बेष न देखि परे, इमि आइ है ओढिके कामरि कारी। यह है न नहीं कमरी पसरी गठरी धनकी गँठि बाँधि सँवारी॥ ७॥

हरि नाम चरित्र पवित्र महा, मुक्ता मणिके वन देत दँवारी। घन घोर घरै नहिं सूरि परै, धरि वज्र कपाट सुज्ञानकी द्वारी॥ रिधि सिद्धि जहां लगि लाभ कहे, इन सर्व गहे ठगनी छल कारी। नहिं कूछ रहा इन छूछ कियो, यहि कान भये ऋषि राज भिखारी॥ ८॥

मनते भुख भूख अहार गहै, व अहार ते .नींद सो कालकी फाँसी । यम दण्ड प्रचण्ड यही है यही, करसो सतखंड सो ज्ञानकी रासो ॥ नहिं शुद्ध स्वरूप लखे हरिके, धरि अन्ध कियो धर्मरायकी दासी । यदि जाल फँसायके काल हते, सब जीव बने भवसागरवासी ॥ ९ ॥

नहिं चेत रहा दुख देत महा, हरि हेत कहा दुर्बुद्धि वडी है । पिय आगु खडे नहिं चीन्हि पडे, दृग सन्मुख कन्धकी सन्ध पडी है ॥ तजि राम हरामके काम लगे, चुहडी फुहडी जब आन अडी है । सुमती हरिगै कुमती भरिगै, यम. सेल हिये विच ठेल गडी है ॥ १० ॥

मन रौन जो भौन ते गौन कियो,तमसी तमसी तमसी तम ठोने । अति प्राण अधार अधार विना, विलपात अधीर धरा धर कोने ॥ यहि वैरिन परिन संग लिये, पहुँची विरहा विष वेलको पोने ।

सुख साज विहाय अकाज भयो, नियरानि सुभाग सुभागि निघोने ॥ ११ ॥

उह डोलत संग पिछार सखे, ढिल अंग लखी गठरी गहि माजी । हुशियार हो संत सुजान सुनो, पलही मरमें वह मारत बाजी ॥ गठि कण्ठ लिये फँसरी करमें, सिद्ध साधुनके गल डारत पाजी । सत धर्म नसाय फँसाय लियो, तब नंक डुबावनको सज साजी ॥ १२ ॥

जबलों तन प्यार न प्यार पिया, तन आस तजे पिय खास सहीहै । नहिं मैं तव तू जब मैं नहिं तू रह, एक विवेककी टेक सही है ॥जहँ राम न दूसर काम तहां, रवि रैन यक्षत्र न होत कही है । जब प्रीति गही तहिये गहिरी, कुल कानि कहाँ सुलतान नही है ॥ १३ ॥

जिमि चुम्बक लोहसे मोह करे, जलहीन भई जस मीन दुखारी । अलि अम्बुज प्रीति न बीति कसी,

पपिहा लपिहा सुख स्वाति की बारी। जिमि चन्द चकोर यकोर लखे, सिख दीपक रंग पतंग निहारी। यहि राह न नाह से नेह लगी; नहि आशिक है वह फाँसिक यारी॥ १४॥

दृगपूरित नींद हराग भई, धनि लेत उसासहि बारहि बारा। तन पीत भयो कृस गात भयो, तृस बात भयो लघु भोजन धारा॥ अधरा पट सूख तृषा हियमें, नहिं जो पिय रूप पियूषनिहारा॥ गुन गान सदा हिय ध्यान धरे, बिरहिनके यह दश चिन्ह उचारा॥ १५॥

पथदेव आकाश नहीं जनहै, अंसमान लियो निज पाग उतारी। पसराय दियो सगरे दुगरे, गुरु खाट निहारत पाँव दे डारी॥ बिखराय सबै मणि माणिक्को, विरती बलि बैठि यती व्रत धारी। दिन भूषन ध्यान धरे मुनिहा, दुख दूषन पूषन पेखन ढारी॥ १६॥

कहुँ चोर चकोर रु चन्द वधू, विगसात अन-न्द उलूक लही है । कहुँ यादुर वीर वहादुर भय, दुख दायक जंतु अनंत मही है ॥ कहुँ जोत खद्योत उदोत भई, मनमें अपने अभिमान गहीहै । निसि डाट कहे मम तेज लखो, रविते हमरो कछु घाट नहीं है ॥ १७ ॥

सखि काह करो पिय दूरि गये, हिय पूरि गये विरहानल कैसे । मन भावन जासु विदेश गये, मृग जीवन है तिनको जग तैसे ॥ प्रभु वेगि कृपाकरिके सुधि लो, तुम दीन दयाल कहावत जैसे । पतिया पहुँचाव वसीट मेरी, अरु वांचि गुनावहु पिया ढिग ऐसे ॥ १८ ॥

विनय पत्रिका ।

दनुजा मनुजा महाराज महा, सुरसंत सती सिर-ताज कहाओ । जन दीनवन्धु हो सिन्धुदया, हृदया थल कोमलको श्रुतिगाओ ॥ सव मूल सोई नहि

तूल[1] कोई, गुणसागर नागर कौन थहावो । हमरी करनी सुधि नाकरनी, दुख द्वन्द विदार दीदार दिखाओ ॥ १९ ॥

सुरति दूतिप्रति ।

मम पायक शोकसहायक तू, सुरती फुरती पिय पाहँ पधारो । करजोरिके पा गहियो प्रभुको, कहियो तिहिं कोटि प्रणाम हमारो ॥ जब कंत दुरंत संदेस सुनो, निजु प्राणनिछावर ताछन कारो । इमिले अरजी कर दूति चलो, बरजी विरहा वर ध्यानको धारो ॥ २० ॥

इति ।

अथ संध्या साखी ।

संझा सुमिरन आरजी, भजन भरोसे दास ।
मनसा वाचा कर्मना, जब लगि घटमें स्वास ॥ १ ॥

१–तूल तुल्य ।

स्वास स्वासमें नामले, वृथा स्वास मत खोय ।
ना जानो केहि स्वांसमें, आवन होय न होय ॥२॥
स्वासाको कर सुमिरनी, अजपाको कर जाप ।
परम तत्त्वको ध्यान धरु, सोहं आपे आप ॥३॥
सोहं पोया पवनमें, बांधा मेरु सुमेर ।
ब्रह्म गांठ हिर्दय धरो, यहि विधि माळाफेर ॥४॥
माळा है निज स्वासका, फेरेंगे कोइ दास ।
चौरासी भरमें नहीं, कटे करमको फाँस ॥५॥
सतगुरु मोहि निवाजिये, दीजे अम्मर बोळ ।
शीतल शब्द कबीरका, हंसा करे कलोल ॥६॥
हंस मत डरपे काळसे, कर मेरी प्रतीत ।
अमरलोक पहुँचाइ हों, चलु सो भवजल जीत ॥७॥
भवजलमें बहुकाग हैं, कोइ कोइ हंस हमार ।
कहैं कबीर धर्म्मदाससो, खेइ उतारो पार ॥८॥
अविनाशी की आरति, गावें दास कबीर ।
कहें कबीर सुरनर मुनि, कोइ न लागे तीर ॥९॥

साँझ भये दिन आथये, चकई दीना रोय ।
चलुचकवा तहँ जाइये, रैन दिवस ना होय॥ १०॥
रैनकी बिछुरी चाकई, आनमिली परभात ।
जो जन बिछुरे नामसे, दिवस मिले नहिं रात । ११ ।
हौं कबीर विचलौं नहीं, शब्दमोर समरत्थ ।
ताहि लोक पहुँचाइहों, जो चढे शब्दके रत्थ॥ १२॥
तर ऊपर धर्म्म दास है, यती सतीको रेख ।
रहिता पुरुष कबीर है, चलताहै सब भेख ॥ १३॥
भेष बराबर भेष है, भेद बरावर नाहिं ।
तौल बराबर घूँघची, मोल बरावर नाहिं ॥१४॥
निर्विकार निर्भय तुही, और सकल भयमाहि ।
सबपर तेरी साहिबी, तुमपर साहब नाहिं ॥ १५॥
भवभंजन दुख पर हरन, अमर करन शरीर ।
आदि युगादि आपहो, अदली अदल कबीर॥ १६॥
विनवत हौं कर जोरिकै, सुनियो कृपानिधान ।
संतनमें सुख दीजियो, दया गरीबीदान ॥१७॥

दया गरीबी वन्दगी, समिता शीलसुधार।
इतना लक्षण साधुके, कहें कवीर विचार ॥१८॥
वहुत दिननसे जोहता, वाट तुम्हारी राम।
जिय तरसे तुम मिलनको, मन नाहीं विश्राम ॥१९॥
सो दिन कैसा होयगा, गुरू गहोगे वाँह।
अपना कर वैठावगे, चरणकमलकी छाँह ॥२०॥
क्या मुखले विन्ती करूं, लाज आवतहै मोहि।
हमतो औगुन वहु किये, कैसे भावों तोहि ॥२१॥
सुरति करो मोरे साइयाँ, हमहैं भवजल माहि।
आपेही वहि जायँगे, जो नहिं पकडो वाँह॥२२॥
मैं अपराधी जनमका, नखसिख भरा विकार।
तुम दाता दुख भंजना, मेरी करो उवार ॥२३॥
अवगुण मेरे वापजी, वखशो गरीब निवाज।
जो हौं पूत कपूत हौं, तऊ पिताको लाज ॥२४॥
साहव तुम मति वीसरो, लाख लोग लगि जाहि।
हम सम तुम्हरे वहुत है, तुम समहमरे नाहिं ॥२५॥

कर जोरे विनती करूं, भवसागर आपार ।
बन्दा ऊपर मिहर करी, आवागमन निवार ॥२६॥
अन्तर्यामी एक तू, आतमके आधार ।
जो तुम छांडो साथको, कौन उतारे पार ॥२७॥
अवकी जो साईं मिले, सब दुख आंखों रोय ।
चरणो ऊपर शिर धरूं, कहूँ जो कहना होय ॥२८॥
साहब तुम दयाल हौ, तुमलग मेरी दौर ।
जैसे काग जहाजको, सूझे और न ठौर ॥२९॥
मुझमें औगुन तुझहि गुन, तुझ गुन औगुन मुझ्झ ।
जो मैं विसरूँ तुझ्झको, तूं नहिं विसरे मुझ्झ ॥३०॥

विज्ञानस्तोत्र ।

सत्तसत्तके नामसो सतसागर भरा सतके नाम तिहुँलोक छाजा ॥ सन्तजन आरती करे मेमतारीभरें ढोल निशान मिरदंग बाजा ॥ भक्तिसांचीकियानाम निश्चैलिया सुन्नके सिखरब्रह्मण्डगाजा ॥ सत्तकबीर

सर्वज्ञ साहब मिले भजो सतनामका रङ्कराजा॥कबीर
हमदीन दुनी दरवेशा ॥ हमकिया सकल परवेशा ॥
हम हुआ सलामत देखा ॥ हम शब्द सरूपी पेखा॥
हमरूण्ड मुण्डमें फीरा॥हम फाका फकर फकीरा॥हम
रमे कौनकी नाल ॥ हम चलैं कौनकी चाल ॥ हम
सरवज्ञी सहजे रमे ॥ हमरी वार न पार ॥ वार भी
हमही पारभी हमही ॥ नाना दरिया तीर ॥ सकल
निरन्तर हमरमें ॥ हम गहिरे गम्भीर ॥ खाली
खलक खलकके मांहीं, यों गुरु कहैं कबीर ॥ सत्त-
नामकी आरती, निरमल भयाशरीर ॥ धर्मदास
लोकं गये, गुरु वहियां मिले कबीर ॥ धर्मदासलोके
गये, छांडि सकल संसार ॥ हसन पार उतारहीं,
गुरु धर्मदास परिवार ॥ सतसुकृत लौलीन है, ज्ञान-
ध्यान लो थीर ॥ अजावन वह पुरुष है, सो गहि
लागो तीर ॥ अजावनसे जावन भया, जावनसे
भये मूल ॥ चहुँदिस फूटी वासना, रही कलीमें

फूल ॥ जब फूले तब गिर परे, चरन कँवलकी धूर ॥ कली फावरी हो रहे, साहब हाल हजूर ॥ कबीर मिले धर्मदासको, लिख परवाना दीन्ह ॥ आदि अन्तकी बीनती, यही लोकको चीन्ह ॥

अति लौलीनंत चीन्हन्त ज्ञानी ॥ शब्देशरूपी सुनाकास बानी ॥ विना देह साहब निरालम्भ जानी ॥ जाने जनावै कहावै न देवा ॥ ऐसा तत्व-पूजे पुजावै लगावै न सेवा ॥सदाध्यान धारी अखण्डे निरासा ॥ सुधासिन्धु पीवै न जावे पियासा ॥ प्रेम-धाम धीरा उदासी अकेला ॥ लौलीन योगी गुरु-ज्ञान मेला ॥ मिलनता चलनता रहनता अपारी ॥ ऐसी दृष्टि देखो अनन्तो विचारी ॥ सदा चेत चेतन्त चितवंत सूरा ॥ ऐसा ख्याल खेलन्त बूझन्त पूरा ॥ ज्ञानो न ध्यानो न मानो नहीं चन्द्र तारा ॥ ऊगे न भाने न आगे न पीछे मध्ये न कोई ॥ ज्योंका जला ब्रह्मज्यों ततसोई ॥ डारो न मूलो न वृक्षो न

छाया ॥ जीवो न शीवो न कालो न काना ॥ दृष्टी न मुष्टी न देवी न देवा ॥ जापो न थापो न जान सेवा ॥ नहीं पौन पानी न चन्द्रे न सूरा ॥ अखंडित ब्रह्म सोई सिद्ध पूरा ॥ हम नाहीं तुम नाहीं बंधो न भाई ॥ निराधार आधार रंको न राई ॥ गावै न ध्यावै न हेली न हेला ॥ नारी न पुरुपो न (चेली न चेला) खेली न खेला ॥ नहीं पेट पृष्ठे न पावों न माथा ॥ जीवो न शीवो न नाथो अनाथा ॥ सेपो महेशो गणेशो न ग्वालं गोपी न ग्वाले न कंसे न कालं ॥ आसे न पासे न दासे न देवा ॥ आवे न जावे लगावे न सेवा ॥ नहीं वार पारे न नियरे हजूरा ॥ ज्योंका ज्यों ततगहिरे गंभीरा ॥ यन्त्रे न मन्त्रे न दरदे न धोका ॥ नरके न सरगे न संशे न शोका॥ सेते न पीते न सबजे न लालं॥ गोरे न सांवरे न वृद्धे न वालं ॥ भेदा न वेदा न खेदा न कोई ॥ सदासुरति सोहं एकै न दोई ॥

जाने जनावे जनावे न शूरा ॥ वारे न पारे नियरे हजूरा ॥ नादे न विंदे न जिन्दे न जीवा ॥ निरन्तर ब्रह्म एकै शक्ती न शीवा॥ नहीं योग योगी न भोगी न भुक्ता ॥ सच्चिदानन्द साहब न बन्धेन मुक्ता ॥ खेले खेलावै खेलावे औ खेले॥ चेते चितावे चितावे औ चेते ॥ एके अनेके सो एके॥

चितगुण चित विलास दास सो अन्तर नाहीं॥ आदि अन्तमें मध्य गोसाईं अगह गहनमें नाहीं ॥ गहनी गहिये सो कैसा ॥ सोहं शब्द समान आदि ब्रह्म जैसेका तैसा ॥ कहैं कबीर हम खेलै सहज सुभाव ॥ अकह अडोल अबोल सोहं समिता॥तामो आनबसा एक रमिता ॥ वा रमताको लखे जो कोई ॥ ताकी आवागमन न होई ॥ ओऽहं सोऽहं सोऽहं सोई ॥ ओऽहंकीलकसोऽहं वाला ॥ सोऽहं सोऽहं बोले रिसाला ॥ तिलक कमत कंमोद ये चारों जुगपीर ॥ धर्मदास को शब्द-

सुनाये सतगुरु सत्त कबीर ॥ बाजा नाद भया परतीत ॥ सतगुरु आये भौजल जीत ॥ बाजबाज साहबका राज ॥ मारा कूटा सब दगाबाज॥हाजिरको हुजूर गाफिल को दूर ॥ हिंदूका गुरु मुसलमानका पीर ॥सात द्वीपनौखण्डमें सोहं सत्तकबीर ॥

दयासागर स्तुति ।

गुरु दयासागर ज्ञान आगर शब्दरूपी सतगुरं॥ तासु चरन सरोज वंदो सुख दायक सुखसागरं ॥ योगजीत अजीत अमर भाषते सत सुकृतं॥दयापाल दयाल स्वामी ज्ञानदाता स्थितं ॥ क्षमाशील संतोष समिता आनंदरूपी हिरदयं ॥ सहजभाव विवेक स्थिर निरमाया निहसंशयं ॥ निरमोही निरबैर निरभै अकथ कथिता अविगतं ॥ उपकार और उपदेश दाता मुक्तिमारन सतगुरं ॥ दास भावकी प्रीति विनती भक्ति करन करावनं ॥

चौरासी बधन कर्म खंडन बन्दीछोर कहावने ॥
त्रिगुण रहिता सत्यबकता सत्तलोक निवासितं ॥
सतपुरुष जहां सत्तसाहब तहां आप विराजितं ॥
युगन युगन सतपुरुष आज्ञा जीवनकारण पगुधरं॥
दीनलीन अचीनहोयके जगतमें डोलत फिरं ॥
करुनामय कबीरके बल सुखदायक सर्वलायकं ॥
जमभयंकर मानमरदन दुखिय जीव सहायकं ॥
धर्मदास करजोर विनवे दयाकरो मन बसकरं ॥
करूँ सेवा गुरुभक्ति अविचल निसदिन अराधौं सुमिरणं ॥

सतगुरुकी जौ अधिक महिमा ज्ञानकुंड नहाइये ॥ भरमित मन तब होत स्थिर बहुरि न भौजल आइये ॥ साधु संतकी अधिक महिमा रहनि कुंड नहाइये ॥ काम क्रोध विकार परिहरि बहुरि न भौजल आइये ॥ दासातनकी अधिक महिमा सेवा कुंड नहाइये ॥ प्रेमभक्ति पतिव्रत दृढ-

कारि बहुरि न भौजल आइये ॥ जोगीजनकी अधिक महिमा युक्तिकुंड नहाइये ॥ चन्दसूरज मन गगन थिरकारि बहुरि न भौजल आइये ॥ श्रोता बकताकी अधिक महिमा विचार कुंड नहाइये ॥ सार शब्द निबेरि लीजे बहुरि न भौजल आइये ॥ गुरु साधुसंत समाज मध्ये भक्ति मुक्ति दृढाइये ॥ सुरति कर सतलोक पहुंचे बहुरि न भौजल आइये ॥ धर्मदास प्रकाश कीन्हो अकह कुंड नहाइये ॥ सकल कलिविष धोय निर्मल बहुरि न भौजल आइये ॥ साहब कबीर प्रकाश सतगुरु भली सुमति दृढाइये॥ सारमें ततसार दरसे सोई अकह कहाइये ॥ धर्मदास पटखोलिदेखो तत्त्वमें निःतत्त्वहै ॥ कहै कबीर निःतत्त्व दरशे आवागवन निवारिये ॥

चितावनी ।

कबीर—यमन जाय पुकारिया धर्मराय दरबार॥ हंस भवासी होय रहा लगे न फांस हमार ॥ हमरी

शंका ना करे तुम्हरी धरै न धीर ॥ सतगुरुके त्रल-गाजहीं कहैं कबीर कबीर ॥ कबीर कहंता जानदे मेरी दसी न जाय ॥ खेवटियाकेनाव पर चढे घनेरे आय ॥ बाजा बाजा रहितका परा नगरमें शोर ॥ सतगुरु खशम कबीरहैं (मोहि) नजर न आवै और ॥

सत्तका शब्दसुन भाई ॥ फकीरी अदल बाद-शाही । साधो बन्दगी दीदार ॥ सहजे उतर सायर पार ॥ सोहं शब्दसे करप्रीत ॥ अभय अखण्ड घरको जीत ॥ तनमें खबर कर भाई ॥ जामें नाम रुश-नाई ॥ सूरति नगरवस्ती खूब ॥ बेहद उलट चढ महबूब ॥ सूरति नगरमें कर सैल ॥ जामें आतमाको मेल ॥ अमरी मूलसंधि मिलाव ॥ जापर रखो बांयां पांव । दहिना मध्यमें धरना ॥ आसन अमर यों

१ अमर आसन अर्थात् सिद्धासन देखो पृष्ठ ४५

करना ॥ द्वादश पवन भरि पीजे ॥ शशिधर उलटि चढिलीजे ॥ तन मन वारना कीजे॥ उलटि निज नाम रस पीजे ॥ तनमन सहित राखो श्वास ॥ रसविधि करो बेहद बास ॥ दोनों नैनकोकरवान ॥ भौंरा उलटि कस कमान॥ पर्वत छके दरिया जान॥ करले तिरकुटी स्नान ॥ सहजे परस पद निर्वान ॥ तेरो मिटे आवाजान ॥ जामें गैबका बाजार ॥ सरवर दोई दीसे पार॥ जा विच खडे कुदरत झार ॥ शोभा कोटि अगम [illegible] ॥ लागे नौलख तारा फूल ॥ करनि कोट जरियामूल ॥ ताको देखना मतभूल ॥ रमता राम आप रसूल॥ माया मर्मकी कांची ॥ देखो अन्दरकी सांची ॥ बरषे नीरविन मोती ॥ चन्दा सूरकी ज्योती ॥ झलके झिलमिला नारी॥ ता विच अल्पहे क्यारी॥मानो प्रेमकी झारी ॥ खुलगई अगम किंवारी ॥ बेडा भरमका खोजा ॥ दीपक नामका जोया ॥ योगी युगतिसे जीवै ॥

प्याला प्रेमका पीवे ॥ मौला पीवको दीजे ॥ तनमन कुरबान करलीजे ॥ परी है प्रेमकी फांसी ॥ मनुवां गगनाका बासी ॥ बाजे विना तंती तूर ॥ सहजे उगे पच्छिम सूर ॥ भौंरा सुगन्धका प्यासा ॥ किया है कँवलमें बासा ॥ रमता हंस है राजा ॥ सहजे पलक आवाजा ॥ सुन्दर श्याम घन लाया ॥ बादल गगनमें छाया ॥ अमृत बूँद झरलाया ॥ देख दोइ नैन ललचाया ॥ अजब दीदारको पाया ॥ दरिया सहजमों न्हाया ॥ दरिया उलट उमगे नीर ॥ ता विच चले चौंसठ छीर । हंसो आन बैठे तीर । सहजे चुगे मुक्ता हीर ॥ मिला है प्रेमका प्यारा ॥ नहीं हैं नैनसों न्यारा ॥ जीवन मृतक न व्यापे काल ॥ जो त्रिकुटीसे पलक न टाल ॥ पलका पीवसे लागा ॥ धोखा दिलोंका भागा ॥ चितावनी चित-विलास ॥ जब लग रहे पिंजर श्वास ॥ सोहं शब्द अजपा जाप ॥ जहां कबीर आपहि आप ॥

साखी ।

चितावनी चित लागी रहे, यह गति लखै न कोय ॥ अगम पंथके महलमें, अनहद वानी होय ॥ नाम नैनमें रमि रहा, जानें विरला कोय ॥ जाको सतगुरु मीलिया, ताको मालुम होय ॥ झण्डा रोपा गैवका, दोय पर्वतके संधि ॥ संधि पिछाने शब्दको दृष्टि कँवल कर वन्द ॥ झलके ज्योति झिलामिला, विन वाती विन तेल ॥ चहुँदिशि सूरज ऊगिया, ऐसा अदवुद खेल ॥ जागृतरूपी रहत है, सत मति गहिर गंभीर ॥ अजरनाम विनसे नहीं, सोहं सत्तकवीर ॥ इति ॥

ज्ञान गूदरी ।

अलख पुरुष जब किया विचारा ॥ लखचौरासी धागा डारा ॥ पांच तत्त्वकी गुदरी वीनी ॥ तीन गुणनसे ठाढी कीन्ही ॥ तामें जीव ब्रह्म औ

माया । समरथ ऐसा खेल बनाया ॥ जीवन पांच पचीसों लागे ॥ काम क्रोध मोह मदपागे ॥ कायां गुदरीका विस्तारा ॥ देखो सन्तो अगम सिंगारा ॥ चांद सूर दोइ पेवन लागे ॥ गुरु परतापसे सोवत जागे ॥ शब्दकी सुई सुरतिका डोरा ॥ ज्ञानकी टोम सिरजन जोरा ॥ अब गुदरीकी कर हुशियारी ॥ दाग न लागे देख विचारी ॥ सुमतिको साबुन सिरजन धोई ॥ कुमति मैलको डारो खोई ॥ जिन गुदरीका किया विचारा ॥ सो जन भेटे सिरजन हारा ॥ धीरज धुनी ध्यान धर आसन ॥ सतकी कोपीन सहज सिंगासन ॥ युगति कमण्डल करगहि लीन्हा ॥ प्रेम फावडी मुरशिद चीन्हा ॥ सेली शील विवेककी माला । दयाकी टोपी तन धर्मशाला ॥ मिहर मतङ्गा मत बैसाखी ॥ मृगछाला मनहीको राखी ॥ निश्चय धोती पवन जनेऊ ॥ अजपा जपे सो जाने ... ॥ रहे निरन्तर सतगुरु दाया ॥ साधु संगति

कर सब कुछ पाया ।। लौकी लकुटी हृदया झोरी ।। क्षमा खराऊं पहिर बहोरी ।। मुक्ति मेखला सुकृत सुमिरनी ।। प्रेम पियाला पीवे मौनी ।। उदास कूबरी कलह निवारी ।। ममता कुत्तीको लल-कारी।।युक्ति जंजीर बांधि जब लीन्हा।।अगम अगो-चर खिरकी चीन्हा।। विराग त्याग विज्ञान निधाना।। तत्त तिलक दीन्हीं निर्बाना ।। गुरुगम चकमक मन समतूला।।ब्रह्म अग्नि परगट कर मूला ।। संशय शोक सकल भ्रम:जारा ।। पांच पचीसों परगट मारा ।। दिलका दर्पन दुविधा खोई ।। सो वैरागी पक्का होई।। शून्य महलमें फेरी देई ।। अमृतरसकी भिक्षा लेई ।। दुख सुख मेला जगका भाऊ ।। तिरबेनीके घाट नहाऊ ।। तन मन सोधि भया जब ज्ञाना ।। तब लख पावै पद निर्वाना।। अष्टकँवल दल चक्रसूझा ।। योगी आप आप में बूझा।।इंगला पिंगलाके घरजाई ।। सुषुमनि नीर रहा ठहराई ।। ओहं सोहं तत्त्वविचारा।।

वंकनालमें किया संभारा ॥ मनको मारि गगन चढि जाई॥मानसरोवर पैठि नहाई ॥ अनहद नाद नामका पूजा ॥ अल वैराग देव नहिं दूजा ॥ छुट गये कश-मल कर्मज लेखा ॥ यहि नैनन साहवको देखा ॥ अहंकार अभिमान विडारा ॥ घटका चौका कर उजियारा ॥ चितकर चंदन तुलसी फूला ॥ हितकर संपुट करले मूला ॥ श्रद्धा चवँर प्रीतिकर धूपा ॥ नौतम नाम साहिबका रूपा ॥ गुदरी पहिरे आप अलेखा ॥ जिन यह प्रगट चलाई भेखा॥साहव कबीर बख्शि जब दीन्हा ॥ सुर नर मुनि सब गुदरी लीन्हा ॥ ज्ञान गूदरी पढे प्रभाता ॥ जनम जनमके पातक जाता ॥ ज्ञानगूदरी पढे मध्याना ॥ सो लखि पावै पद निर्वाना ॥ संझासुमिरन जो नर करई ॥ जरा मरन भवसागर तरई ॥ कहै कबीर सुनो धर्म-दासा ॥ ज्ञानगूदरी करो प्रकाशा ॥

साखी ।

माला टोपी सुमिरनी, सतगुरु दिया बखशीस॥ पलपल गुरुको बन्दगी, चरण नवाऊँ सीस ॥ भौ भंजन दुख परहरन, अम्मर करन शरीर ॥ आदि-युगादी आपहौ, चारोंयुगकब्बीर ॥ बन्दीछोर कहा-इया, बलख शहर मंझार ॥ छूटे बन्दे सब भेषके धन धन कहे संसार ॥

सत्यनाम ।

अथ पिछले रातको विरह वर्णन[1] ।

दोहा ।

यहि निश्चय कै नखत गण, अपने अपने ढंग ।
भय भ्रम हटै न दुख मिटै, हीय न तिमिर विभंग १
करुणामय करुणानिरख, हरषि चितोजन ओर ।
सुख पावे मुखदेखि हरि, होय बिरह निसिभोर॥२॥

१—ब्रह्म मुहूर्तके प्रथम आंख खुलनेपर यदि अवकाश तो इसका पाठ करना महान फल दायक है ।

आवन आवन कहि गये, अजहुँ न आये लाल ।
धावन फिरा न पिउ फिरे, भा मनबालबिहाल ॥ ३ ॥

सवैया ।

दृग मानसरोवर नन्दनिमें, बिवि मीन फिरै किहिं कारनते । जबते रतिनाथ बिछोह भयो, मनके विरहानल जारनते ॥ प्रभु दीन दयाल दया करिये, विनती सुनि लाख हजारन ते । करुणाधर धारिहिये करुणा, पतिया पति पाह सकारनते ॥ १ ॥

उनमाद उचाट भये मनमा, उद्वेग न चाट सिंगा-रनते । नित लेत उस्वास है आश लगी, तन छीन भयो मन मारनते ॥ गुन गान प्रलाप कलापन ते तन तापत ताहि विचारन ते। पलना बिसरे ललना सुरती, मूरति हरि हीय सँभारन ते ॥ २ ॥

जग जान जहान उधारन हो, कलि कायर कूर सुधारन ते॥ गनिका मनिका कह फेरत है, मोहिं सो

कपटी भव तारनते ॥ प्रभु नाम जहाज तरी लदके, छनमें जगती जिव मारनते । न मिले पिय नेह कबीर बिना, बिधि मीन फिरे यहि कारन ते॥३॥

सोरठा।

निशिदिन साले घाव, नीद मोहि आवे नहीं।
पीय मिलनकी चाव, सो नैहर भावै नहीं ॥ १ ॥

सवैया।

उर सालत घाव दिना रतिया, धरके छतिया नहिं चैन लई है ॥ सुख भूरि भरा तृण तेरि धरा, भल भोग सबै दुख रोग गई है ॥ पिय आजइ काल कहे परसों, बरसों बरसों नहिं भेंट भई है । मन मोहन मोहन मोह दई, बिन दर्द दई दिन सर्द दई है ॥ ४ ॥

जिनके चित चिन्त खचिन्त भयो, उर अन्तर ज्वाल निरंतर जारी । तन टङ्ग रहे, मन मद्द

दहें, नित सोचन पोचन खोचन भारी ॥ तिय साधु मती निमती विधिको, झुखै पुखै किमि आस हमारी। यहि औसर चौंसर खेलहुँगी, तनहू मनहू धन दावपै धारी ॥ ५ ॥

हरि नेरे अहो किधौं दूर कहूँ, भरि पूर हजूर हो नैनन मेरे। हिय ठाहर हौ किधौं वाहर हौ, धरती असमान तुही तुहि टेरे ॥ गलि गोरिननें तरुतोरिनमें, जड साखन फूलन पातन हेरे। मोहिं समाय लखाय नहीं, कहु कौन उपाय गहौं पद तेरे ॥ ६ ॥

हमसूं किधो भिन्न किधो यक है, तू मुहिमें किधो मैं तुहि माँही। सब पूरन देखत तूहि तुही, किधु एक अहो धो अनेकन आही ॥ किधो स्वर्ग वसौ अपवर्ग किधो, निसिवासर वास किधो मोहिं पाही ॥ पिय आपै आप जो व्याप सही, किहि कारन ते दुविधा दरसाही ॥ ७ ॥

कहँ गोय रहे विष वोय रहे, नित मो मन मन्दिर माहि विहारी। विनु लालन बाल विहाल-परी, वह कौन घरी जो हरी पग धारी॥ सुखको नहिं लेश कलेश नयो कर, काह पिया परदेश पधारी। सपने अपने हरि भेंट भई, मुहँ खोल लखे दृग लोल लबारी॥ ८॥

कबहूं न पिया अपमान किया, किमि कै विधि वाम विछोह करी है। लकुटी करले मोहिंमार कहूं, जनु कांटकी मारहु फूल छरी है॥ दुर दूर कह्यो तत्र दूरि दुरा, जब टेर हरी तब पायँ परी है। जिहि भाँतिसे राखि रही त्योंहि त्यों, कछुभोग धरी तिहिं पेट भरी है॥ ९॥

कह वीर करो तन पीर परो, किमि धीर धरो नहिं प्रीतम आवो। दिन रात कराहि कराहि उठे, विरहा दव दाहि जों ताहि न पावो॥ हिय हूक

परी कह चूक परी, विधना सिधना मम काम पुरावो । सुन हेरि भट्ट अव ठाट ठट्ट, मति धूसर दूसर वेष वनावो ॥ १० ॥

सब भूषण भू छटकाय दियो, सतसंग विभूतिले अंगन मेली । शिर टोप दयाहै कोपीन ह्या, जपमाल कथा सतनामकी सेली । करमंडल कर्म गहे करमें, चलि खोज पिया परिवारहिं पेली । बनि योगिन वेष विरोगिनसों, सुख दुःख सवै अपने तन झेली ॥ ११ ॥

हरिद्वार गया नहिं मेल भया, न बनारस माँहि वनारस पीना । मथुरा न अवध न द्वारदरी, ददरी बदरीवन्द मक्कामदीना ।। न प्रयाग न पुष्कर थान जिया, मलछान किया सो पिया है कहीना । सब अरसठ भर्मत भर्म भरी, कछु हाथ नरी निजनाम न चीना ॥१२॥

गिरिनार न पैठि पहारनपै, ऋषिराय अखारन जायके जोही। सुन सान परो चवगान थरो, दुख दून करो तिहिं जूनमें ओही॥ केहि पूछौं अवै लखि छूछौ सवै, कोइ पीय वतावहु वाट वटोही। सव खोज थकी पिय प्रेम छकी करी, काहू जो नाह मिले अव मोही॥ १३॥

तव पैठि गुहा हरि ध्यान गहा, दम सयम नेम तपोधन भारी॥ जप याग अचार विचार घने, हठ योग ठने दृढ लावहि तारी॥ नभ जायके देखत ज्योति जगे, छवि छाइ है मोतिनकी झर झारी॥ तनको कसिके मनको वसिकै, पट चक्रको वेध चढी है अटारी॥ १४॥

चढ जाइ अटा गढ छाय छटा, नहिं चित्त उटा निजहित्त न हेरो। जव और न दौर रही कतहूँ, मतहू पतहू गतहू गतगेरो॥ परि पाप

विनय सतभाय करो, शरणागत माँगत हौं प्रभु तेरो। अब आन उपाय उपाय कहा, नहिं पायहिं पाय थकाइहि मेरो ॥ १५ ॥

हाहरि पान शरीरमें बेधत, सीर समीरहु तीर सो लागे। हे हरि ! चन्द्र समीशर मारत, मानहु आगि लुकारन दागे॥ हे हरि धन्य सुभावसुभागिन सोच रही बिरही नित जागे।हे हरिसो सुखसे किमि सोवत, दुःख दोहागिनि जों पति त्यागे ॥ १६ ॥

हे हरि आजु कन्हाइ नहीं ग्रह, ग्रीष्म ताप सो लागजुन्हाये। हेहरि ई निसि नागिन डंसत, पीव विना जीव कौन बनाये॥ हे हरि नैन तृषा जल पूरित, सिन्धु स्वरूप बिना न अघाये। हे हरि पातहु को खरका, सुनि जानि परे हमरो हरि आये॥ १७ ॥

विलपात बिते दिन रात सबै, ढिलगात अनेक जो आँख झपाई। कोइ स्वप्नमें द्वार पुकार कहे,

सुनु बाल उला तव द्वार पै आई ॥ जब आंखि उघारनको करके, करके शुभ अङ्ग सगून लहाई । हरपे दुख दो सरके विरहा, हरिके हरिके सुनि आगम पाई ॥ १८ ॥

अब आवन आवन होय रह्यो, जिहिवार वलंब मेरे घर ऐहैं । सुख सम्पति दम्पति देखतके, सुर-नायकहू मन माहँ सिहैहैं ॥ हरि छूति विभूत भरी उभरी, कनघूळहु धूम न दूसर सैहैं । तिहुँलोक पळोक विलोकन सो, धन धान्य न धाम धन दुरपै हैं ॥ १९ ॥

अजहूँ नहि दूती सँदेस दियो, मन माहिं अन्देस यहां खटको । इतने महँ धावन आइ गयो, अब साज शृङ्गार सबै ठटको ॥ कछु वारमें आनि पहूँच पिया, धनि और नहीं मनमें भटको । सुनिके पिय आगम मोद महा, मग जोह संताप घटा घटको २०

कवित्त ।

नैन मीन परवाह सरितावलि अगाह, सागर स्वरूप हरि मिलन ललक में । ठहरे कौन कौन, विधि पाये विनवार निधि, मिलन निहाल भई पलकि पलकमें ॥ चरणामृत कन परयो आनि मुख घन, भरी गुन ज्ञान छन बुन्दकी छलकमें । प्रीतम प्यारे पगलागि पडे भागजागि,पदरज सज निज आँखिन अलकमें॥ १ ॥ इति ॥

प्रातःसन्ध्यासाखी ।

नमो नमो गुरुदेवजू, सत्य स्वरूपी देव । आदि अन्त गुणकालके, मेटन हारे भेव ॥१॥ नमो नमो तुव चरणको, सतगुरु दीन दयाल । तुम्हरी कृपा कटाक्षसे, कटैं सकल भ्रमजाल ॥ २ ॥ प्रणमों श्रीगुरुदेवको, सोहै सदा दयाल । काम क्रोध मद लोभको, क्षणमें देवे टाल ॥ ३ ॥ वाणी निर्मल

प्रकाश करी, बुद्धि निर्मळ करिदेउ । मैं मूरख अज्ञान हूँ, नहिं आवत कछु भेउ ॥ ४ ॥ मैं अधीन बन्दन करूं, सुनियो श्रीगुरुराय । मारग सिर्जन हारका, दोजै मोहि बताय ॥ ५ ॥ भवसागर भारी भया, गहरा अगम अथाह । तुम दयाळ दायाकरो, तब पाऊँ कछु थाह ॥ ६ ॥ ठाढी हो कर जोरिके, अरज करौं गुरु देव । तुमहीं दीन दयाल हौं, बांह गहीके छेव ॥ ७ ॥ नमो नमो गुरु देवजी, प्रणाम करौं अनन्त । तव कृपाते पाइहौं; भवसागरको अन्त ॥ ८ ॥ तुम सत्य पुरुप परमात्मा, पूरण विश्वावीस । सत्यगुरू अविचल तुही, काहि नवाऊँ सीस ॥९॥ वन्दों श्रीगुरुदेवजी, तुमही दीनदयाल । मैं अधीना विनती करूं, काटो यह भवजाल॥१०॥ वन्दों गुरु तव चरणको, मांगूं निर्मळ बुद्धि । काल-जालका भय वहु, लीजे मोरी शुद्धि ॥ ११ ॥ काल फँसायो जाळमें, हरी ज्ञान अरु ध्यान । तव कृपा

विनु सद्गुरु, कैसे पाऊँ ज्ञान ॥ १२ ॥ भव दुख भवमें सह्यो, भटक्यो बहु जग आश ॥ तुमही प्रभु दुःख हरन, दीजे ज्ञान विलास ॥ १३ ॥ आदि-गुरू अदली तुहीं, तो विनु नहिं कछु ठौर । बहु विधि कालसताइया, सुनो हंस शिरमौर ॥ १४ ॥ आदिपुरुष अविचल तुही, चलाचली संसार । अजर नाम प्रभु तुमहि हौं, आधिव्याधि गुण जार ॥ १५ ॥ तुमविनु कैसे होइहौ, चिन्ता रहित अचिन्त।अमर पदारथ दीजिये,अमर नाम निश्चिन्त ॥ १६ ॥ कालक नगर विनाश है, क्षणमें जाइ नशाय । गुरु पुरुष कृपा करैं, सार पदारथ पाय ॥ १७ ॥ जाते भवबन्धन कटे, दीजो ज्ञान मुनींद्र। सत्य सुकृत कृपा करूँ, काटो कर्मके विन्द॥ १८॥ करुणामय करुणाकरि, दीजैं सत्य सुकाम । बन्द-तहौं तब चरण प्रभु, आश गुरु सत्तनाम ॥ १९॥ तुम दाता हम मांगता, सत्य कबीर दयाल ॥ पारख

देह व्याधा हरो, मेटो यमको जाल ॥ २० ॥किसी कामका हूँ नहीं, रहित ज्ञान अरु ध्यान । सत्य कबीरसो कृपा करि, दीजे पारख ज्ञान ॥ २१ ॥
को हमको जगत यह, रंचक जानों भेव । सत्य कबीर दुखपर हरू, पावों आतम सेव ॥ २२ ॥
काल संधि झाईं अहै, त्रय विधि कालक जाल । भेदवाक्य दीजे बता, सत्य कबीर दयाल ॥ २३ ॥
सत्य कबीरका बालका, पारख विन कङ्गाल । हसी तुम्हारी होत है, वेगहि लेहु सँभाल ॥ २४ ॥
हंसन नायक सद्गुरु, सत्य लोक जिहि वास । जिनके शिशुको जगतमें, काल देत है त्रास॥२५॥
औगुण पूरति बाल बुद्धि, तदपि पिता गुणवंत । नाम हँसावत पितहिको, सुनु कबीर महमंत॥२६॥
हंस उधारण सत्यगुरु, अधम उधारण नाम । बन्दी छोर कृपाल प्रभु, सत्य लोक तव धाम ॥ २७ ॥
हंस उधारण तारण, तोर नाम जग माहिं । मैं

दुखिया भवमें रहौं, बिरद तुम्हार लजाहिं ॥ २८॥
कहँ लगि कहुँ अशरण शरण, निर्भय पद दातार।
मैं अनाथ तुव शरण हौं, वेगि उतारो पार॥२९॥
जो तुम नहिं सुधि लेव तो, दूसर कौन सहाय ।
काल जालको मेटिके, देवे पार लगाय ॥ ३० ॥

प्रभाती स्तुति ।

भुजंगप्रयात छन्द ।

कबीरं रविं ज्ञान गो मुक्ति हस्तं । उदे घोस नाथा सनाथा समस्तं ॥ जनं रंजनं भंजनं भौ विषादं अनन्तं अनादं स्वसम्वेद वादं ॥ निरीहं निराधार ज्ञानं गभीरम् । शरीरं मनोवाक बन्दे कबीरं ॥ १ ॥

भयं भाननं काननं कर्म दहतं । दुखं दारिदं दालकं काल गहतं ॥ मुनीशं ऋषीशं अहीशं अभेवं। जगन्नायकं पायकं सेव्य सेवं ॥ बली कैल गर्व बांह बीरं । शरीरं मनोवाक बन्दे कबीरं॥२॥

जनं पातकं घातकं सर्व दोपं । प्रहंतं परे पार भौ काल कोपं ॥ नभौ भूजनं पूजनं पादकंजं ॥ कृतांतं कृतं निर्वृतं भर्म भंजं ॥ दूरे चौर सोहं परे पीर थीरं । शरीरं मनो वाक बन्दे कवीरं ॥ ३ ॥

स्वसम्वेद वक्ता विरक्ता विहारं । गुणं निर्गुणं सर्गुणं सर्वसारं ॥ अखंडं अदंडं प्रभुं निर्विकारं । महत्वं गुणं पंचतत्वं तु पारं ॥ तरं तारनं कारनं तारतीरं शरीरं मनोवाक वन्दे कवीरं ॥ ४ ॥

निराकार अंकार हंकार हन्ता । विषय वासना सासना शंक भन्ता ॥ अछेदं अभेदं अकोहं अमोहं । गुणं ज्ञान गेहं अदेहं अद्रोहं ॥ कृपा लोचनं मोचनं मृत्यु पीरं । शरीरं मनोवाक वन्दे कवीरं ॥ ५ ॥

क्षरंपार पुरुपोत्तमं अक्षरादिं । अलेखं अभेदं निरच्छरं अनादिं ॥ गहंतं महाव्याल कालं करालं ।

दहंतं भवं संभवं दुःखजालं ॥ नलेशं कलेशं न माया समीरं । शरीरं मनोवाक वन्दे कबीरं ॥ ६ ॥

गुणानन्तधामं निकामं अयोनी । अविद्या परे हे क्षमा हेत छोनी ॥ उपायं पुनः पोष पालं कृपालं । दहादौमहा भैरवी भैरुकालं ॥ धरा धारधे धर्मधी ध्यानधीरं । शरीरं मनोवाक बन्दे कबीरं ॥ ७ ॥

कृती सुकृति सुकृतो चित चीते । प्रभा ज्ञान गम्यं पदाम्भोज प्रीते ॥ कबीराष्टकं ये पठंते प्रभातं। भने भूरि भै भर्म कर्म निपातं ॥ लहे लाभ हिरम्बरं रम्य चीरं । शरीरं मनोवाक वन्दे कबीरं ॥ ८ ॥

नोट–१–भुजंग प्रयात छन्द चार यगणका होता है यथा यचौं मैं प्रभूत यह हाथ जोरी । फिरे आपुते न कबो बुद्धि मोरी ॥ भुजंग प्रयातोपमा चित्त जाको।जुरै ना कदा भूलिके संग ताको ॥

छन्द प्रभाकर ॥

कबीर भानु उदय सवैया ।

रवि आगम साख समागमको, घरियाल पुकार लगी जबलोही । सुनि शब्द निशान पिसान भये, सठ सेन सहायक दुर्जन द्रोही ॥ नरनाग सुरासुर सीस नवै, उदयाचल पै रवि मंडल सोही । धन्य धन्य प्रभाकर धाम प्रभा, खलवाम वहै तुम्हरो मुख जोही ॥ १ ॥

कुलकंटक बक्र बिलाय गये, रथ चक्रलखे रवि चक्रवर्तीके ।गुनज्ञान गँभीर हिये सरसे, दरसे परसे प्रिय प्राण पतीके ।। वडभाग सुभाग सुभागिनको, सुख साज समाज है आज सतीके । विरहा तप ताप सँतापचिते, भ्रम भय चलिगये गलि ज्ञान गतीके ॥ २ ॥

यह रैन भयंकर घोर महा, तव तेज दहा तिहु लोकन स्वामी । अब सूझि परे कछु बूझि परे, सत्त-

नाम चरित्र पवित्र प्रनामी ॥ दुँख दायक चोर चकोर चका, सब भाग अभाग कुमारग गामी। दृग दृष्टि खरी गुनज्ञान भरी, जगसीस करी तम पीस नमामी ॥ ३ ॥

सत्य कबीरको सत्य और मन राजाको झूंठ ! दोनोंका युद्ध वर्णन ।

पढि सत्य अगार नगार दियो, निज सत्य व शुद्ध स्वरूप समेते । छबि पुञ्ज महा सुख भुञ्ज भले, धन धर्म रु धीरज ध्यान सचेते ॥ मल सोधन राग बिराग जिन्हें नहिं क्रोध कषाय जहाँ लगि पेते । सुख दायक है सब लायक हैं, जन शोक सदायक दर्शन देते ॥ ४ ॥

असि मूठले झूठ उठै तिहिपै, जिनके हियमें सतते दुख भारी। एक ठौर कियो सजि सैन सबै, निज दौर जहां लगि ठानत रारी ॥ तिहिं संग

अनीमल ढंग वनी, तव अग्र चला समुहे ललकारी। दलदम्भ ठटे खल है निपटे, गहि मान मलान जुरे सव छारी ॥ ५ ॥

रनशूर महावल शूरसवै, नहिं नूर कहूँ लखिये तन कारे। सव अञ्जन वञ्जन श्याम सजे, चलिकै सव सत्यके युद्ध निचारे ॥ अभिमानके कुञ्जर झूठ चढा, निज फौज पराक्रम पुञ्ज सुधारे। अरु सत्यके मारनको सवही, अपनो अपनो वल वीर्य सकारे ॥ ६ ॥

सह सत्य अकेल सहाय नहीं, रिपु भै नहिं सो मनमें कछु मानी। इतने मह झूठ निशान वजो, अरु श्याम ध्वजा तहवाँ लहरानी ॥ ध्वज टूटि गयो रिपु फूटिगयो, सत ताक पताक दिशा दग तानी। तिहि तेज प्रतापहुते वहुते, सव भागि चले विशुनी विहरानी ॥ ७ ॥

कोइ शूर सपूत बडे तिनमें, जो गुमान गहे पग डारत आगे । विनसे सबही जिन मान गही, नहिं तेज सही मरिगे कछु भागे ।। दहिगो सब बाहन राहनमें, रहिगो यक झूंठ अजौं जिह जागे। जग पेलि बढाय चढाय कियो, सत सन्मुख होकर युद्ध जो मांगे ॥ ८ ॥

जिमि श्याम घटा रन आनि डटा, निज मत्त मतङ्ग चलावत सोई । अति रूप भयावन कै जग जीव, डरावन जालिम है जिमि जोई ॥ ज्योंही ज्यो सत्त समीप गयो, बलछीन भयो सब शस्त्रन खोई । नियरान गयन्दहि प्राण तबै, जरि छार भयो तन खाक मिलोई ॥ ९ ॥

वैराग विवेक विचार बढे, अरु ज्ञान चढेहै निशान बजाई । इन चारिहु युत्थप सङ्ग अनी, चतुरङ्ग घनी दम संयम ताई ॥ शुचि साधन मौन रु दान दया, है आचार तपोधन कौन गनाई । दल सा-

जिके सत्य कवीर चढे; रिपु धीर कहा जो सके समुहाई ॥ १० ॥

दुसरी दिशिते मनराव अनी, नहिं जात गनी अगनी गहि धाई । तहँ काम रु क्रोध है मोह महा, अरु लोभ रहा सरदार लडाई ॥ निरदाय असत्त अशौच लिये, सब आय सहाय भये यक ठाई । चौगान समाज जुरे दल दो, घमसान परे तहँ लोह चलाई । ११ ॥

दिन नायक सायक छूटि चले, महिखेसघनी ध्वजनी ध्वज टूटे । तमके दमके द्युति दामिनि ज्यों, दशहूँ दिशि घेरि लियो खल फूटे ॥ करको सर कोटि दिवाकरको, सब देश विदेशनमें जब टूटे । नहिं शूर कोई भजि दूर गये, रिपु सेन सहाय सबे गहि कूटे ॥ १२ ॥

ह्वरि श्वेत ध्वजा फहरान लगे, घहरान लगे हैं अनाहत ढंका । यम युत्थ अपार खभार परे जितही

तितही सभ सोच ससंका ॥ बल वीर कबीरके सन्मुख हो, नहिं धीर धरे तिरछा अरु बंका । गण तीर शरीर समाय गये, छनमांह भये सब कालको फंका ॥ १३ ॥

मद मार महामतवार चले, समुहाय बजावत ढोल दमामा । गहि शस्त्र अनेक चमू चमकी, पहिरे गहिरे रंग जामिन जामा ॥ दुरबुद्धि दगा छल छिद्र पगा, तहँ कपट अखंड सगा सठ तामा । मय भर्म भयावन भूत चले, बहु दूत कपूत रले अघधामा ॥ १४ ॥

क्रमही क्रम ज्यों नियराथ चले, सियराय चले अगिले भट मोरे । हरुए हरुए बिचले बिचले, पछिले पछिपाल रहे कुछु थोरे ॥ थिरता पद हानि डटे कितने, अभिमान ते बात सटे बरजोरे । जब पेलि अगार लगार चले, गहि गूँज सो सूर्य्य हडा-वरि फोरे ॥ १५ ॥

शर शब्द सरासर छूटि चले, यहि ओरते शत्रुके सेनमें छाई। सब घायल भूमि परे छनमें, अरिचंड प्रचंड अनी विचलाई॥ गहि ज्ञानके गोलन सर्द कियो,पहि मर्द गनी महि गर्द मिलाई। रनमें मन राडको हाड गडे, वैराग विवेककी टेक रहाई॥ १६॥

वलवान विराग रु ज्ञान भये, रिपु सैन वियै सवही विचलाई। जय शंख निशान रु वंट वजे, शहनाद अनाहत केरि सुहाई॥ चहुँओरते घेरि लियो गलियो, निज वन्धन वाँधि लियो,मनराई। गढमें पहरा विठलाय दियो, अरु नग्र फिरी सत-नाम दुहाई॥ १७॥

प्रभु दीन प्रकाश जो उप्रनको, सोइ सूपच छुद्र चमार चंडारो। नहिं तारत वार खला निखला, अघओघ नसाय कापाय उवारो॥ सम भाव दुराव नहीं जिनके,यमनादिकहू सुखधाम सिधारो।

कर्म नासहि देव सरी समके, खल पावन सत्त है नाम तुमारो ॥ १८ ॥

प्रभु देखि सतोगुन व्यापि गयो, कलिमें धृत है कृतकी वृत बाना। महि भीतरको डर गाड घने, तम घोर न उल्लु समीं उस बाना ॥ निजु सेन समेत समाय तहाँ, तुमरे डरते कलि जाय छिपाना। चकचौंधरिचो चमगादरके, प्रभुनिन्दक ताहि न कांहि ठिकाना ॥ १९ ॥

रथ धर्म अरूढ अगार बढे, गहि ज्ञानन गूढ निसा मद हारी। मुख सत्त तुरङ्ग सुरङ्ग सजे, प्रभु अंश प्रशंस पुरान पुकारी ॥ सत नाम सही रथ-वाहक तौ, रथ चक्र जो वेद स्वसम्म उचारी। गुरुचार सोई गुनचार बने, तप तेज अभै कर दुष्ट संहारी ॥ २० ॥

कवित्त ।

जम ज्वाल जरत जगतपति जोहि जग, जीवन जियावत जुडाव जगजरनी । भाग भल भक्त भगवन्त भञ्जु भोर भोर, भंजत भरम भय भीर भय भरनी ॥ वारिनिधि वोहित वदत वुध वेरुवर, वेद वरदानन वखान वर वरनी । कलि कलमख कुल कंटक कटत कोटि, कीर्तन कवीर करतारकी कतरनी ।

इति कवीर भानु उदय सवैया और कवित्त ।

मध्याह्न सन्ध्या साखी ।

साहब दीनदयाल गुरु, सो पर और न कोय ।
शरण आय यम सो वचे, आवागमन न होय ॥१॥
दया करन अवगुणहरण, तारन तरण उदार ।
अशरण शरण वन्दूँ चरण, तुम विनु नहिं निस्तार॥
॥ २ ॥देखि अधमता आपनी, परवश यमके हाथ।

त्रसित गहा साहिब शरण, भव भय हारि सनाथ ॥ ३ ॥ प्रभु सब लायक पारखी, हौं भामिक अज्ञान। लोह कनक पारस करे, साहब सरण समान॥ ४॥ वन्दों चरण सबदुखहरन, प्रभु प्रसाद दुख भूरि । दया करी सब दुखहरी, संसृत शूल भो दूरि ॥५॥ बहे बहाये जात थे, भौसागरके माँहि । दयाकरी परखाय सब, शरण आय गहि बांह ॥ ६ ॥ संतत अभय गुरुके चरण, सदा परख प्रकाश । समन सबे भवजालतम, राम रहस सुख वास ॥ ७ ॥ सबों परि गुरुके चरण, जो हारी भवखेद । परम उदार सागर दया, थाह न पावे वेद ॥ ८ ॥ वारों तन मन धन सबे, पद परखावन हार । युग अनन्त जो पचिमरे, बिनु गुरु नहिं निस्तार ॥ ९ ॥ संधि परखावे जीवकी, काटे यमको फन्द । साहब दीन दयाल सो, संशय खंडे द्वन्द्व ॥ १० ॥ द्वन्दज सत्य असत्यको, जहाँ नहीं कुछ लेश ।

सो प्रकाशक गुरु परख है, मेटत सकल कलेश ॥ ११ ॥ जाहि दया गुरु परखलहि, मेटे सब भव जाल । रक्षक बन्दी छोर सो, साहब दीन दयाल ॥ १२ ॥ भेष अमङ्गल नष्टगुण, जेते त्रयविधि फांस । अदल चलाई कालपर, सो त्रिदोषहिं नाश ॥ १३ ॥ अदल चलाई सत्यका, साहब बन्दी छोर । पारखि छोरे जीवको, यमका हाथ मरोर ॥ ॥ १४ ॥ दया दयाल पारखलहि, सुधरे सब भ्रमजाल । अदल चले तब सत्यका, शिर धुनिरोवे काल ॥ १५॥ प्रथमशब्द सुधारिके, टारे त्रयविधि जाल । झार्यी मेटत संधिको, ऐसो शरण दयाल ॥ ॥ १६ ॥ पारख गुरु सुख बास है, जहां न फन्दा काल । सो विनु जीव विनाश है, चौरासीके जाल ॥ १७ ॥ जो रह संयुत पारखी, साहब सांचा सोय । तरे तारे भव जालसो, काल देखि रहे रोय ॥ १८ ॥ पारख तोडे भ्रम गढे, खीजे काल

कराल । करि न सके प्रभुता कछू, ऐसो शरण दयाल ॥ १९ ॥ सत्य शरण प्रभु पायते, टूटे मोहक डोर । अभय भक्ति पारख सदा, कला न लागे चोर ॥ २० ॥ प्रभुके शरण सहाय बिन, कैसे होय उवार । अधमकाल ग्रासे सवे, अपनी जाल पसार ॥ २१ ॥ परवश जियरा कालके, दुख पावे संसार । विनु पारख भटकत फिरे, थके विचार विचार ॥ २२ ॥ चारि वेद षट अंशसो, प्रगट भये जग आय । अर्थ विचारत जिव थके, झगरा बहुत मचाय ॥ २३ ॥ पट षट पटके जानहीं, ते न परैं भव फंद । गुरु पारख प्रतापसो, सदा रहे आनन्द ॥ २४ ॥ महासागर संसार है, जाके संशय सार । सुर नर मुनि सब वहि गये, पारखि उतरे पार ॥ २५ ॥ पारख अचल अखंड है, ताहि परे नहिं और । विनु तेहि भटकि जग रहे, जहां नहीं थिति ठौर ॥ २६ ॥ राम रहस साहब

शरण, अभय अशंक उदोत। आमागमनकी गम नहीं, भोर सांझ नहिं होत॥ २७ ॥ नाशकके सब रूप हैं, रहे तेहि मध्य समाय। कष्ट विविधि त्रिधि पावते, पारख लीन छुडाय॥ २८ ॥ प्रभु शरणागत परख दृढ, सत्यलोक प्रमाण। सन्तत जीव विलास है, टूटा काल गुमान॥ २९ जो जिव परख विलासमें; रहे सदा सुख चैन। तिनके त्रास न कालके, और कहेको वैन॥३०॥ परख विलासी जीवजे, धनी सोई संसार। और सबै निर्धन रहे, यमके हाथ खुवार॥ ३१ ॥ संतत सुख है परखमें, साधन यतन विनास। भूलि भटक मति जाहु जिव विविधि कर्मके फांस॥ ३२ ॥ धन्य धन्य तारण तरण, जिन परखा संसार। तेई बन्दी छोरहै, तारण तरण उदार॥ ३३ ॥

अथ मध्याह्न दिनकी स्तुति ।

नाराच छन्द ।

प्रभुं परे परायणं समस्त ज्ञानसागरं । विश्वभरं धराधरं कृपाकरं उजागरं ॥ कलिकलंक नाशनं कबीर नाम नागरं । कृतान्त तीख त्रासनं कृपा-निधे नमोस्तुते ॥ १ ॥

कृपा सुवारि तोषकं सुसन्तशालि पालकं कृपा सुभक्तिपोषकं पराग पापघालकं ॥ समस्तशोकशोषकं दारिद्रदोषदालकं । सुकृत्त सर्व सार कृत्त कारकं नमोस्तुते ॥ २ ॥

निजं निरीह निर्गुणं अनन्त लोक नायकं । अजादिदेवपायकं सुभक्तिमुक्तिदायकं ॥ करालकाल दालकं तौ संकटं सहायकं । निरंजनं नरायणं नरोत्तमं नमोस्तुते ॥ ३ ॥

गणेश शेष शारदं गुणानि नित्य गावनं। अजादि देव नारदं सुकृत्त नाम ध्यावनं ॥ शरीरभै नसावनं

कवीर जक्तपावनं। सुभक्त चित्तभावनं सोहावनं नमोस्तुते ॥ ४ ॥

चकोर चित्तचोरकं चचारु चन्द शोभितं।मुनिन्द पादपंकजं अलिन्द सन्त लोभितं ॥ विज्ञाननैन जोहिनं सुकण्ठ नाम पोहितं। निचिन्त मिर्विकल्पकं सकल्पकं नमोस्तुते ॥ ५ ॥

क्रमं वनं सहारणं सुवारणं कुमारकं। विनीति प्रीति पालनं सुबुद्धिनिद्धिधारकं। दुखं तरु कुठारकं भवं भयविदारकं॥ कवीर नाम तारकं विहारकं नमोस्तुते ॥ ६ ॥

अगोचरं अछेदनं अभेदनं अखंडनं। सुभक्त चित्त मण्डनं शुभं भवं तरं डनं ॥ यशं अनन्त अंडनं प्रताप तो प्रचण्डनं। कृतांत दंड दंडनं विहंडनं नमोस्तुते ॥ ७ ॥

तव नाम ब्रह्मवीजकं शरीरवृक्षमूलकं।द्विचारअष्ट फूलकं अनन्त लोक थूलकं ॥ त्व सक्ति भक्तिसागरं

द्विलोक वेद कूलकं । हनंत शोक शूलकं । अतूलकं नमोऽस्तुते ॥ ८ ॥

स्नेहवारि पूरितं विषै कुजन्तु भूरितं । चरीतमुक्ति माणिकं विकारबासदूरितं ॥ पदार्थ अष्ट षष्टकं स्व-भक्ति रत्न मूरितं । रमन्त योगिना विराग नाम तो नमोऽस्तुते ॥ ९ ॥

मथतं शोकसिन्धु तो मुनीन्द्र नाम मंदरं । धराच वेद उद्धरंतमच्छ कच्छ सुन्दरं । हिरण्य अक्ष घालनं अनूपरूप भूधरं । निकाम काम दायकं सहायकं नमोऽस्तुते ॥ १० ॥

तो नारसिंह वामनं द्विजाति राम पावनं । ब्रजैक बल्लभं नरेशकं सदावनं ॥ बउद्ध निष्कलंक गुणतो गुणनि गाथ गावनं । पदाम्बुजैक भक्त भौर भावनं नमो स्तुते ॥ ११ ॥

त्रयलोक लोक पालकम् त्रय देव देव यक्षकम् । उपायकम् च रक्षकम् पुनः समस्त भक्षकम् ॥ त्व

सर्वमय अक्षकम् प्रताप तो प्रत्यक्षकम् । वसन्त वासुदेवकम् भमवेकम् नमोस्तुते ॥ १२ ॥

त्रयशूल पाणि दीन दानि कत्रशूल नाशनं । त्रय काल पाप तर पुरं तो दाहकं हुतासनम् ॥ समाधि तव अखंडितं प्रचण्ड योग भासनं । शुभं करोति शंकरं मयंकरं नमोस्तुते ॥ १३ ॥

कबीर नाम आदित्त सुमक्त चित्त राजितं । विमोह यामिनी गतं प्रकाश ज्ञान भ्राजितं । कलिमलं अपर्वलं उद्धक लेखभाजितं । कबीर कारणं वरं कृपा करं नमोस्तुते ॥ १४ ॥

जलं सुस्वाति नाम तौ सुभक्त चित्त चातकं । ककार ब्रह्म राजसं वकार विष्णु सात्विकं ॥ रकार शम्भु तामसं उपाय पोप घातकं । समस्त दोष पातकं निपातकं नमोस्तुते ॥ १५ ॥

कबीर पाद पंकजं सनेम प्रेम ध्यायकं ।गुणानि नाम कीर्तनं सुधाम काम दायकं ॥ विराग त्याग

लभ्यते हृदं पदं गहायकं । तरंत तारनं भयं विदा-
रनं नमोस्तुते ॥ १६ ॥

अथ मध्याह्न सवैया ।

तन भंग पतंग उतंग भये, बट पार जुवारकी
खोजन पाई । बरते नव खण्डमें तेज महा, ब्रह्मा-
ण्डमें आनि रह्यो ठहराई ॥ पहरी अरु स्वान सुखी
सबही, पथिको निर्भय श्रम पन्थ बिहाई । तुमरे
परताप सन्ताप गयो, मम दण्ड प्रणाम तुम्हें रवि
राई ॥ १ ॥

गिरि कन्दर अन्दर दुष्ट दुरे, रवि तेजप्रवाह
सभी तम भंजे । यम काल सकाल विहाल पडे,
नहिं आय कोई धर्मराजके पंजे ॥ दृग दृष्टि प्रचण्ड
ते अंड सुझे, जन रञ्जन पायनके रज अंजे । गुरु
नाम चरित्र पवित्र लखे, खल चोर निशान निसा-
शर गंजे ॥ २ ॥

तम वंश विध्वंस न संशकहूँ, दशहूँ दिशि हंस सभा सरसाई । मृत्यु नाथ अनाथ वेहाथ भये, वल वीरज धीरज तेज गँवाई ॥ रगि राम चले पर धाम सवे, चहुँ ओर फिरी सत नाम दुहाई । भ्रम भंड करे न विहंडकने, यम दंडक दंडन मारि मजाई ॥ ३ ॥

नहिं खोट है ओट उलूक लुके, सुचि तसती विरती वर गाजे । सव झार कवीर कवीर कहै, छल छिद्रपै भ्रम संशय भाजे ॥ तिहुँ काल है सत्य कवीर सुखी, गुण गाव सभी सुखको सज साजे । यह वारह पंथ कला रविको, प्रभु पूरण ब्रह्म हो व्योम विराजे ॥ ४ ॥

हिमजार जुवार खुवार धने, निज शृङ्ग शिलापै किला घर छाई । वड वृद्धि भई खगरे वगरे, फिर स्वर्ग दिशा शिर ऊँच उठाई ॥ हरषें नहिं धर्म रखे करखे, दम संयम भक्ति कृषी दुख-

दाई। जब सूरज तेज तपैं तिनपै, तेहि बरजते धारि धूर्ज मिलाई ॥ ५ ॥

कहु सूर्य सुखी यक पाय खडा, चितवै च्चित चाहते सीस नवावै। जेहि प्रीति अभंग पतंग पिया, पदनीरजको धरि धीरज ध्यावे ॥ भ्रम भंजकहू वन-कंज खिले, दिन भूप स्वरूप अनूप दिखावे। गिरि, निश्चल आसन ध्यान धरे, करुणा प्रभु लाल अमोलक पावे ॥ ६ ॥

प्रभु तीक्षण तेज तपै महिपै, बन लोल लवारन आगिते पूरी। नव खंडमें पवन प्रचंड चले, भरि मार न मूठिन ता दग धूरी। तम ग्रीषम झार अपार तपै प्रभु नाम जपै जनभक्त अँकूरी। दिननाथ दयाल भये तब ही, जनको सबही दुख कीनेहु दूरी ॥ ७ ॥

गुण खान पियाको हिया हरषा, करि तोष तिया वर्षा झरि लायो। धरती भई गर्भवती तबही, चहुँ खानिके जिन्सको वंश उपायो ॥ तप कीन महीनन

लौं मलसो, अब तो सबको फल पूरण पायो ।
बढ़ि वृद्धि भई पुत्र पौत्रनको, बहु रंगमें थावर जंगम
जायो ॥ ८ ॥

फुलवागन फूल अनन्त फुले, धनवंत यथा यश-
वंत सुहाई । जनु संपति पाय सती गिरही, श्रद्धा-
युत द्विज साधु बुलाई ॥ बहु वेलि चमेलिन फैलि
रहीं, हरि भक्तनकी जिमि कीरति छाई । फल पूरित
शाख नवे कितहू, मन अर्थ लहै सु गहै नमराई॥९॥

लहरी तृणपात भरी धरती, तपसिद्ध तपी ऋधि
ज्ञान ज्यों पूरे । कहुँ ऊसर घास न फूस रहे, गम्भ
गुन्न विना हिय सून्य ज्यों कूरे ॥ जल कीचहै भूरि
न धूरि कहूँ, सतसंगति सो जिमि दुर्जन दूरे । पर
त्याग लो पंजन खंजनहू, भ्रम भंजन दरशने ज्ञान
ज्यों फूरे ॥ १० ॥

कहुँ भूख संहारक ऊँख भई, पर हेत सहैं दुख
जो अधिकारा । कहूँ स्वेत कपास विकास कियो,

पर छिद्र छपावन जो तन धारा॥कहुँ अन्न रु साग व पात उगे,तरकारि वनस्पति चौदह भारा । सुख-साज सभी सब घेर मही, यह केवल भानु प्रताप तुम्हारा ॥ ११ ॥

कक आदिपिता कथि वादि निता, खख सुन्न निरंजन ताहिते हेरा । खखते प्रगट भये खंड सबै, खख ज्योति अखंड दिशों दिशि हेरा ॥ वसुदेव बकार विश्वम्भर है, वर बीज चराचर चीजचितेरा। रचनाके भंडारको धारक सो, धर ओष्ठन द्वारके ऊपर डेरा ॥ १२ ॥

भवसागर जालको काल बने, ररकार बडे सरकार बडे सरकार कहायो । तिन खोलि केवाड़ि लियो वितको, तेहि ठाहर ते गहि बाहर आयो॥तप तप घोर करे यक पाय खडे, भव वारिध जारिध राज लिखायो । तरनी–कक–है कंडि हार–बबा–र–दंड तिहूँ जगको उधरायो ॥ १३ ॥

ररकार धरे शिर विन्दु जवै इमि नाद रु विंदहै जिन्द यती सो । कृशान रु भान सशंक भये नहिं पावत पार अपार गतीसो॥ररविन्दके वीचअकार छपै, कहँ रामको नाम विकाश मतीसो । रर रेफ गफेलमें भेद सही, नहीं जात कही वहु वात रती सो ॥१४॥

रर पूरण ब्रह्म निरंजन है, वहु भाँतिके भाजन भञ्जन कीन्हों।वव बीज विना कछु चीज नहीं,दोउ एक भये रचना चित दीनों ॥ कक कायक कर्म क्रिया सवही, फवही तवही जवही मिले तीनों । ककही ववही ररही ररही सरही सब काम कवीर जो चीन्हो ॥ १५ ॥

कक कंठपै बैठिके चेतनदे, जिव संठ उदार उचारत वानी । वव अग्र गयो जहँ नम्र नयो, सर हद्द पे ठद्द जमा सव आनी ॥ ररवीर वली तव पेलि चली, कर क्रोध विरुद्ध हो युद्ध जो ठानी । ककहू ववहू दवही रहिगै, ररको घरको थरको जगजानी ॥ १६ ॥

कक केवल ब्रह्म है देवलमें,. वबदीन क़पाट सुपाट दुवारी । तहँ जाय जो कोई सो होय अभय, दरसै दरपै परब्रह्म पुजारी ॥ कोई जान नहीं भ्रम भान नहीं, शक खोलको टोल लगी तहँतारी ॥रर रारकरी पट टार धरी, गहि भार भरी भ्रव जार सँवारी ॥ १७ ॥

करुणामय कंत कबीर कहो, कविकोविदको कुल कर्म कटैगो । मन मोहन भीत मुनीन्द्र मिली, मद मोह मनोज सु मौज मिलैगो ॥ सत्त सुकृत सत्य स्वरूप सदा, सतनाम सँभाल सुधाम सटैगो । धन घोर घटा घट घाट गिरे, गट घालत घूमर घेर घटैगो ॥ १८ ॥

रसपाय सुधा यस गाय बुधा, मम लेखनि भै सुर वृक्षकी शाखा । मुखते यहि अंमृत धार स्रवै, न मरे न परे भव जो सब चाखा ॥ न लगे कछु भूख पियूष पिये, न हिये कछु और रही अभि-

साथ। । सब स्वारथको परमारथको, फल चार पदारथ हाथ न राखा ॥ १९ ॥

युग आदिहु मध्यमें अन्त विषे, कलिहू कृतमें अरु द्वापर त्रेता । गुरुदेव दयालहि चीन्हत जो, चरनों चित लायके होत सचेता ॥ तिन सार लहा पुनि हार कहा, भव पार गये परिवार समेता । कर जोरिके कोटि प्रणाम तिन्हें, तिहुँ काल जो जीवनको बुधि देता ॥ २० ॥

छन्द मधुकर ।

सर्कार बडा सर्कार बडा । विश्वास करो हो आन खडा ॥ वेपार कडा वेपार कडा । जो तौल संघ गहि ज्ञान धडा ॥ जो डाल दियो सो डाल गहा । कत्ताल समय पत्ताल गहा ॥ जय जक्त पिता जगदीश यजो । कब्बीर कब्बीर कब्बीर भजो ॥ १ ॥

साखी ।

हरि गुरु पीर कबीर लख, अलख पुरुष लख जोय । हजरतको पहिचान जब, बजरत काल न कोय ॥ १ ॥

इति श्रीमध्याह्न स्तुति ॥

स्तोत्र ।

(छोटी एकोत्तरी नित्य पाठकी)

सतगुरु शरणं पंकज चरणं मनवच कर्म सदा गहियं । जरा मरण भय निवारणं अखिलेश्वर अभय कहियं ॥ भेषज नाम नित प्रति धामं महा काल दारुण कहियं । दीनदयालं जन प्रतिपालं भवसागर तारण कहियं ॥ १ ॥

भव भय भंजन अन्तक गंजन सन्त चकार मयंकं लहियं । अनहद नादं दहत विषादं सोहं

हंसा निश्चळयं ॥ अजपा जापं हरत सन्तापं आदि नाम जपियें अभियं । सहज समाधं हरत विषादं दयावन्त सुकृत चहियं ॥ २ ॥

करुणा आदं नाम अनादं मोहित मुनि गेहित-वियं । परमानन्दं सच्चिदानंदं सत्यलोक दृढरोह-नियं ॥ दीननबन्धु करुणासिन्धु अभयनाम जपिये अभयं । कलिकाल करालं फांसी व्यालं सत्यनाम निश्चय जपियं ॥ ३ ॥

स्थिरं ज्ञानं बीजक ध्यानं अक्षयनाम निज अक्ष-रयं । नाम उजागरपति सुख सागर अक्षय राज नायक कहियं ॥ अपरं पारं नाम है सारं तासु भजन सों निस्तारियं । सुखसागर दाता जागृत त्राता अजर अमर सांचो कहियं ॥ ४ ॥

दुर्गजदानी परम अभिमानी धर्मराय शिर मर्द-नियं । कलिकाल करालं फांसी व्यालं तासु भजन सों निस्तारियं ॥ अजर अविगत नामं जन विश्रामं

कृपा विशेषं निःअंशनियं । जय जय स्वामी अंत- र्यामी त्राहि त्राहि करुणानिलयं ॥ ५ ॥

सूक्ष्मं स्थूलं सम्बी मूलं अन इच्छा रूप सुजस मनियं । अशौच अशेषी अमृत पियूषी सर्व मयी अविनाशनियं ॥ सुरति स्नेही अविचार देही आदि ब्रह्म अचिंत कहियं । स्वतःप्रकाशं अमरनिवासं पोह- पदीप सा मंडनियं ॥ ६ ॥

योग संतायन मुक्ति परायन जासु नाम अघ खण्डनियं । सुनु धर्मदासं परम बिलासं सत्त कबीर सुमिरन कहियं ॥

इति ॥

गुरु शतकसार नाम स्तोत्र ।

छन्द चौकडी ।

दीनबन्धु करुणामय सागर । हंस उधारण तारण आगर ॥ दीनानाथ शरण सुखदाई । अभय

तासु पद गुरु समराई।। वन्दीछोर विरद अतितासू।
हंस रूप प्रगट जग जासू ।। अधम उधारण तारण
स्वामी । प्रवरदिगार मालिक अनुगामी ।। काल
जालके काठन हारे । विरदलाज राखन पति प्यारे।।
धीरज क्षमातत्त्व संयुक्ता । राम भूमिका वासक
युक्ता ।। चिन्ता रहित अचिन्त गुसाईं । परख रूप
प्रकाशक साईं ।। अलख ब्रह्माण्डके जानन
हारे । कर्ता नाम प्रगट विस्तारे ।। निःकामी
माया परचण्डा । ताको नाशक पूरन ब्रह्मण्डा ।।
मंगलरूप गुसाईं आपू । जगत विदित पूरण
परतापू ।। साहव निर्भय पद दातारा । कर्त्ता पुरुष
सबनके पारा ।। महामोह दल नाशक स्वामी । हसन
नाह अपार अगामी ।। आनन्द सिन्धु अहंतातीता ।
रामरूपमें परम पुनीता ।। सत्य यथारथ अतिप्रिय
साधू । मन मायाको मेटेउ व्याधू ।। पूजनीय अनु-
मान विनाशक । सत्य सुकृत प्रकाश प्रकाशक ।।

नाम मुनीन्द्र सबन सुखदाई । वारम्वार कहौं गोह-राई ॥ सत्यसिन्धु प्रभु दीन दयाला । नाशक अनु-भय सहज कृपाला ॥ आप जीव निःकर्म निधाना । शब्दी अजर अकाल सम जाना ॥ साधुरूप पूरन प्रमाना । गरीब निवाज गहहु गुरु ज्ञाना ॥ ज्ञाई शब्द परखान हारे ॥ तारण तरण विगत संभारे ॥ मन अनुमान गुमान विनाशक । मोद प्रत्यक्ष दान निज दासक ॥ वेद पुरान बुझाय यथारथ । मनकर्म बचन साधुमें स्वारथ ॥ इति शतनाम गुरुगनि आई । सब वृत्तान्त गुरु मुख जो बुझाई ॥ साधु गुरु कबीर गुसाईं । बन्दी छोर नाम जपु गाई ॥

रतना बाईकृत स्तुति ।

गुरुध्यान सार भज वारवार, सब तज विकार सतनाम सार सो करयारी जै जै गुरु पीरं सत्त कबीरं अमरशरीरं अधिकारी ॥ निर्गुण निजमूलं धीरस्थूलं

काटनशूलं भौमारी ॥ सुरति निजसोहंकलिमल खोहं जनमन सोहं छविभारी ॥ अपुरवासी सब सुखरासी सदा विलासी वलिहारी । पीरोंके पीरा मतिके धीरा अलख फकीरा ब्रह्मचारी ॥ हंसनहितकारी जगपग-धारी गर्भप्रहारी उपकारी ॥ काशी आये दासकहाये हंस बचाये प्रनधारी ॥ रामानन्द स्वामी अन्तर्यामी हैं बड नामी संसारी । उनको गुरुकीन्हा मतबुधि लीन्हा उनहु न चीन्हा करतारी ॥ ब्राह्मण संन्यासी कीन्ही हांसी तब अविनाशी पगुधारी ॥ मगहर स्थाना किया पयाना दे परवाना जनतारी । तहां बलबीरा तजे शरीरा काटन पीरा भव भारी ॥ हूँ बीरसिंहदेव राजा सुनि बल गाजा सब दल साजा सम्हारी ॥ उत पीर पठाना अति बलवाना लाय कमाना कर डारी ॥ सन्मुख नियराना छूटे बाना भै घमसाना रणभारी। तब गुरु ज्ञानी मनकी जानी अधरहि बानी उच्चारी ॥ तुम खोलो परदा है नहिं

मुरदा जूंझ अवस्था करडारी ॥ सुनिकै यह वानी अचरज मानी देखि निसानी शिरमारी ॥ रोये परवीना हम मति हीना तुमहि न चीन्हा करतारी ॥ मगहर तजिवासा किया प्रकासा जहाँ धर्मदासा व्रत धारी ॥ तिनको शिष्य कीन्हा सरवस दीन्हा दुख हरि लीन्हा भ्रम भारी ॥ सतपन्थ चलाये भर्म मिटाये शब्द दृढाये संसारी ॥ रतना जन तेरो करत निहेरो हम तन हेरो बलिहारी ॥

अष्टक ३ त्रिभंगी छन्द ।

साहब गुरुज्ञानी, समरथ ध्यानी अकल स्थानी स्थीरं ॥ अविगत वानी, मुक्ति निशानी, जगमें आनी, कब्बीरं ॥ १ ॥ शीस विराजित तिलक अखण्डित, मुख सत्यसुकृत गम्भीरं ॥ ज्ञानी प्रचंडित, पाखड खण्डित, सुमति मंडित, कब्बीरं ॥ २ ॥ वेप रिसाला, श्रवणीमाला, प्रेम उजाला,

कृपा गहीरं ॥ दीन दयालं, जन प्रति पालं, सदा कृपालं, कब्बीरं ॥ ३ ॥ संकट तारन कष्ट निवारन, शीस विडारन, यम धीरं ॥ हंस उबारं जिव निस्तारं, भ्रम विडारं कब्बीरं ॥ ४ ॥ सतयुग त्रेता, द्वापर बीता, रमता तीता, पर पीरं ॥ कलियुग कीता, सबसों जीता, प्रेय पुनीता, कब्बीरं ॥ ५ ॥ काशी छांडि उडीसा आये, आशा गाडे, सिन्धु तीरं ॥ ठाकुर पंडो, गर्व विहंडो, पाखंड खंडो, कब्बीरं ॥ ६ ॥ पुरुष विदेही, अविचल देही नाम स्नेही, स्थीरं ॥ जे शन जानैं, भेटो ताही, दर्शन देहू, कब्बीरं ॥ ७ ॥ कबीर अष्टं काटन कष्टं, धर्मनि दृष्टं कब्बीरं ॥ धर्मनिदासं, नित अभ्यासं, प्राप्ति सुतासं कब्बीरं ॥ ८ ॥

स्तोत्र ।

नमो शब्दरूपी सोहै जक्तकरता ॥ दया पाल-स्वामी सबै कष्टहरता ॥ विशालं कृपालं धनी अंत्र

जामी ॥ विदेहं स्वरूपं कवीरं ननामी ॥ अखंड अकर्म अनिच्छाअदेही ॥ जपेशेप जाको लहेनाहितेही॥ लगीशंभुतारी गहोअर्धनामी ॥ विदेहंसरूपं कवीरं-नमामी ॥ तकोजीवशरना सोभवसिंधुतरना ॥ अघै-खान्टरना गहोवेगचरना ॥ अभैरूपजाको महापर-मधामी ॥ विदेहंसरूपं कवीरं नमामी ॥ जहाँजिव-पुकारे तहाँकोसिधारे॥भये दीनजंतं सो तेते उवारे॥ लखेकोईनजाको अनामी सनामी ॥ विदेहंसरूपं कबीरंनमामी ॥ परेसिंधभारे सोसाहवपुकारे ॥करी-आयरक्षा सुताकोउवारे ॥ अभैमुक्तदाता मिलेआय-स्वामी ॥ विदेहंसरूपं कवीरंनमामी ॥ तुही सृष्टि-करतातुहीआपहरता ॥तुहीशोषसिंधूतुहीफेरभरता ॥ तुही सर्वकामीतुही है अकामी ।।विदेहंसरूपं कवीरं नमामी ।। तुही वीन वीना नवीना बजावै ॥ तुही आपरीझै तुही आपगावै ॥ मयेदीनडोलै मोहेऐस-।म। ॥ विदेहंसरूपं कबीरं नमामी॥ तुहीरामरा-

वन तुही कंसकृष्णा ॥ तुहीब्रह्मरुद्रा तुहीदेवविष्णा ॥ तुहीशेषब्रह्मा तुहीभुंमथामी ॥ विदेहंसरूपं कबीरंनमामी ॥ तुही सर्व जीवनके हो रक्षकारी॥तुहीचारखानी सोवानीखुधारी॥ तुही आपजीवन देवो सत्तनामी ॥ विदेहंसरूपं कवीरंनमामी ॥ तुहीआपखेलै खिलावेअकेला ॥ तुहीआपसामी तुही आपचेला ॥ तुहीखेतमागे लडेधारसामी ॥ विदेहंसरूपं कबीरंनमामी॥ उभैभेषधारी धरैभेपमारी ॥ तुहीभोगभोगी तुहीब्रह्मचारी ॥ कहेको कहांलो अपारं अनावी ॥ विदेहं सरूपं कवीरं नमामी । दईकालपीरा जवेजिवसताये ॥ लिये नामलाहा जेलाहा होय आये ॥ लखोरे लखोरे कृपासिन्धुसामी विदेहं सरूपं कवीरं नमामी ॥ अधैखान जेते कियो हान तेते ॥ गहोसत्तपंथे उहैसंतहेते ॥ वसोदेशजाको जहां है अरामी ॥ विदेहंसरूपं कवीरंनमामी ॥ जपोनामनीको सदाए कवीरं मिटेलोकवासा हरेकालपीरं ॥ अमीरं-

अघोरं सोहैतासुनामी ॥ विदेहंसरूपं कबीरंनमामी ॥
हरेमत्तमन्दा करैले अनन्दा ॥ उबारोउबारो महा-
कालफन्दा ॥ अभैवासजाको सोहैअन्त्रजामी विदेहं
सरूपं कबीरं नमामी ॥ कबीरअष्टक जो पढे औ प-
ढावै ॥ महाप्रेमबानी सुनैऔसुनावै ॥ कहेदीनबन्दा
सो फन्दा न आनी ॥ विदेहं सरूपं कबीरंनमामी ॥

स्तोत्र ।

जैजै कबीर धीर हरन सकल कालपीर, निर्गुण
अविनासी ब्रह्मशब्दरूप साईं ॥ चर अचर भूत
व्याल व्योम मृत्यु औ पताल, सुर नर मुनि यक्ष
गन्धर्व सकलमें समाईं ॥ अमरलोकके निवास पोह-
पदीपका सुवास, शब्दकोट अतिअनूप विविध विध
बनाई ॥ जहां हंसनको निवास षोडशरविको प्रकाश,
अमृतफल चुगेअघाय सर्वक्षुधाजाई ॥ जगमगात
हंसअंग शब्दको भयो प्रसंग, अकहवृक्ष खाईं सङ्ग

राजत समदाई ॥ बन्दी छोर प्रभुदयालभंजन भौ सिंधजाल, सतगुरु साहबकृपाल सुमरत अघजाई ॥ जहांसतगुरुको निवास कोटनशशिको प्रकाश, छांड-लोक हंसहेत भौजलमें आई ॥ कठिन कालको संहार कीन्हों हंसन उधार, कीन्हों भौसिन्धु पार सकल भ्रम मिटाई ॥ माया मद मोह हरन काम क्रोध गर्भ दलन, चिंतामनि हंसरमण संतनसुख-दाई ॥ जे नर भये भक्तिहीन सो भये यमके अधीन, भटके भौसिन्ध तीर नहीं पार पाई ॥ जोनरगुरु-सरनआय लीन्हों तिनको बचाय, काल जालसों छुडाय अमरघरपठाई ॥ निरंजन निराकार ब्रह्मा विष्णु शिव विचार, आदिशक्ति मायाजाल नहीं पारपाई ॥ निगमवेद कर पुकार तेहू नहिं पायपार, गुरुकबीर हरनपीर सुमिरत अघजाई ॥

स्तोत्र ।

नमो आदब्रह्मं अरूपंअनामं ॥ भईआप इच्छा रचेसर्वधामं ॥ न जानामि कोई करैकोन रूपालं ॥ नमोहं नमोहं कवीरं कृपालं ॥ नहीं वेदब्रह्मा नहीं विष्णुईशं । नहींपंचतत्त्वं नहीते अहीशं ॥ नहीं जोत रूपा न मायाकरालं नमोहं नमोहं कवीरंकृपालं ॥ नहींदेवदेवी न सूर्य्यप्रकाशं ॥ नहीं चन्दतारा नहीं कोइआसं ॥ नतोस्वर्ग भूलोक नाहींपतालं ॥ नमोहं नमोहं कवीरंकृपालं ॥ तहां आपइच्छा महाशब्दगाजं विदेहंसरूपं अनूपंविराजं॥भई शब्दते सर्वलोकेविशालं॥नमोहं नमोहं कवीरंकृपालं॥ तहीं सच्चिदानंद लोके प्रकाशं॥सदा सर्वदा हंस करतेविलासं ॥ तहां आपतेआपप्रकटेसुकालं नमोहं नमोहं कवीरं कृपालं ॥ भयो तेजरूपं सबे विस्वकांपो ॥ कवीरं कवीरं सबैसृष्टिजापो ॥मुनीदीभवानी भयेहैं दयालं ॥

नमोहंनमोहं कबीरंकृपालं ॥ तबेनाथ नररूप अवनीसिधारे ॥ धरेकालकेफेल तेतेउबारे ॥ महा-दीनदासे सुकरतेनिहालं । नमोहंनमोहं कबीरं कृपालं ॥ करेकोनतेरी प्रशंसासुबानी ॥ थकेविष्णुब्रह्मा महेशोमवानी॥ थके शेष गणनाथ वाणी विशालं ॥ नमोहंनमोहं कबीरं कृपालं ॥न काहू कहो नाथ तुव पारपायो ॥ अनादे अगम्मे निगम्मे बतायो ॥ तुही निर्गुणं सगुणं रूपजालं ॥ नमोहंनमोहं कबीरं कृपालं ॥ तुहीकोटकोटान ब्रह्मांडकीन्हों ॥ तुही सर्वको सर्वदा सुक्खदीन्हों ॥ वसेसर्वमें सर्वरूपंद-यालं ॥ नमोहंनमोहं कबीरं कृपालं ॥ जुदेसर्वतेहौ मिले सर्व जीवं ॥ भ्रमेअनाथसर्वे लहेनाहिशीवं ॥ भई जोर माया ग्रसौचित्तहालं ॥ नमोहं नमोहं कबीर कृपाल ॥ सबे संतकारन तोही बतावे ॥ एही वेदब्रह्मादि षट्शास्त्रगावै ॥ जपेनाम तेरो भजे उ त्रिकालं ॥ नमोहंनमोहं कबीरं कृपालं ॥ लहेज्ञा

विज्ञान कैवल्य पूरं ॥ महामोहमाया रहेताहिदूरं ॥ लखे ताहिडरपे महाचित्तकाल नमोहंनमोहं कबीरं कृपालं ॥ तजोविषयविस्मादके दुःखभाई ॥ भजोरे कबीरं सदा सुःखदाई ॥ विनयहोंकरों कबीर धन्य पापभालं ॥ नमोहंनमोहं कबीरं कृपालं॥चहोमोद जो निच चित्तेविचारं ॥ कबीरं कबीरं कबीरं पुकारं ॥ गहोंचर्ण रहो रत तजोभर्मजालं॥ नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ॥ सदादासपैतवतोंकृपाजो विचारं ॥ गऊबच्छ येतो हृदय प्रीतिधारं ॥ तजेस्वामि ऐसो जुहै निष्ट-भालं ॥ नमोहंनमोहं कबीरं कृपालं ॥ कबीरं अष्टकं जे सुनै औ सुनावै ॥पढे प्रेमजुक्ता सो मुक्ता कहावै ॥ धरेसन्तप्रीते करे कंठमालं ॥ नमोहम् नमोहम् कबीरं कृपालं ॥ विनयदास मरयादकी चित्तदीजे ॥ प्रभू-दासको दासतो मोहिकीजे ॥ सदा दीनके तुम हरो दुःखजालं ॥ नमोहम् नमोहम् कबीरं कृपालं ॥

स्तोत्र ।

कवीरसृष्टिकारणं स्थूलसूक्ष्म धारणं ॥ कवीर-सतरंजनं दरिद्रदोषभंजन ॥ कवीरब्रह्म अद्वयं अखण्ड व्यापतंस्वयं ॥ प्रणम्यपादपंकजं कवीरसत्-गुरु अजं ॥ १ ॥ कवीरसत्तसुकृतं मुनींद्रकरुना-यतं ॥ कवीर योगजीतयं अचिंतअजर अव्ययं ॥ कवीरज्ञानवर्धनं दयालपाल सजनं ॥ प्रणम्यपाद पंकजं कवीरसत्गुरु अज ॥ २ ॥ कवीर सर्वला-यकं सुभक्तिमुक्ति दायकं ॥ कवीर त्वं भजाम्यहं विदेह पुरुपवरवहं ॥ कवीरसत्त सिन्धये आद्यंत मध्यहीनये ॥ प्रणम्य पादपंकजं कवीर सत्गुरुं अजं ॥ ३ ॥ कवीरचित्तकोमलं करोतिहंस निर्मलं ॥ कवीरसुन्दरंवरं अनादत्वं अगोचरं ॥ कवीरत्वं निरंतरं वदंति संत तत्परं ॥ प्रणम्यपादपकजं कवीर सद्गुरुभजं ॥ ४ ॥ कवीरतातमातरं स्वदेवमित्र

आतरं ॥ कवीरयोगध्यानमें समूलमन्त्र प्रानमें ॥ कबीरनाम सर्वदा जपंतिरिद्धिसिद्धिदा ॥ प्रणम्य पाद पंकजं कबीर सद्गुरुं अजं ॥ ५ ॥ कवीरनाम भेषजं विध्वंस कर्मरोगजं ॥ कवीर सरनचोत्तमं ॥ निर्द्वन्द्वमोद सत्यमं ॥ कवीरत्वं भक्तागतं प्रवोध जीवआरतं ॥ प्रणम्यपादपंकजं कवीरसद्गुरुं अजं ॥ ॥ ६ ॥ कवीर यहप्रसीदय सजातिलोकधीरय ॥ कबीररूपजादसेत जन्ममरणनासयेत ॥ ७ ॥ कवीर अस्तुतिर्नितं पठेः श्रेयशोभितं ॥ प्रणम्य पाद पंकजं कवीर सद्गुरुं अजं ॥ ८ ॥

स्तोत्र ।

नत्वातं पदपंकजं सतगुरुं प्रनतपालं दयालं ॥ आदि पुरुषं विदेहं सरूपं अमरलोकेसुधी-शम् ॥ भोभो सत्कबीरजोगजितं मुनिन्द्रम्, करुणामयं सर्वव्यापि केवलं ॥ श्रुगुतयां बन्दी-

छोरं दयांकुरु, सत्यंचिदानन्द अखण्डनामम् ॥ अद्वैअलेशब्द निर्वाणरूपम्, निहंगमूलं सकृतस्य ॥ अजावन सतसिन्धुः कृपालं, निस्तत्त्व निष्काम अजाविनासी ॥ निरक्षरंब्रह्मस्वयंप्रकाशी, अवखण्डनत्वं सजीवनं च ॥ पुरुषोत्तमं बन्दीछोरंनमस्ते, नमोस्तुतेआदिनिरक्षरस्यात् ॥ त्वदक्षरं ब्रह्मक्षरस्य माया समस्तमूलं च जानामि को वा ॥ भजामित्वंपाद पुरुषं विदेही, अन्तर्वहिर्मन्यतेकायवाचं ॥ ध्यानस्मृतं पादमुखारविंदे, जेनत्व गृह्य चरणं सरंन्यते ॥ सत्यलोके हंसागमख्यात, मायापरे पुर्षत्वमेकसत्यं ॥ अनादचैतन्य स्वतन्त्रनित्यं, सुखागरं सत्तलोकं अनूपं ॥ सिंहासन पुष्पदीपं निवासं, असंख्यचन्द्रार्क प्रकाशयुक्तं ॥ पुरुषैकरोमं न च भानुतुल्यं, पष्ठः ससहसूर्य हंसः प्रकाशं ॥ करोतिध्यानंचरणंनमस्ते, 'शिक्षात्वयापुर्ष बलवानमाया ॥ विछोहकुरुवांत पदाम्बुजस्य, अपारसंसार

भो दीनवन्धो ॥ जानामिसर्वानि मनन्तरेषु, पुरुषंच एकं सुतः षोडशानां ॥ भवेभिन्नतामे निराकार भद्या, शिवं शक्ति जायं विधिः विष्णु रुद्रो ॥ कियो चार खानी सुजक्तं समुद्रो, कूर्मंजलारंग विवेक· ज्ञानं ॥ दया क्षमा शील निहकामधैर्यं, अचिंतमानन्द सुभावप्रेमम् ॥ संतोषसहजं निरंजनाद्या, अप्रंचभृंगं मथह श्रुतिसोहं ॥ सापंचमेयोग जीतं-अमीयं, मुक्तामनिर्नाम वेहदी विहंगं ॥ कवीरत्वंसर्व वीजंप्रनामं, नमस्तुते आदि पुरुषं विदेहि ॥ त्रैलोकवेदान सर्वोपरिस्त्थ, अनंतब्रह्मांड त्वयाश्रृतंच॥ निर्गुणोगुणस्यात् विस्तारकारं, नमस्तुतेस्वामि समर्थ रूपं ॥ सतायेनंसत्तनामंचज्ञानिं ॥ अजरंश्चचितं-पुरुषं मुनींद्रं ॥ करुणामयं जोगजीतंअमीयं, सनि-र्विकारं गुरुरूप धारं ॥ संसारपारं स्वजनाप्रियत्वं, यथाघटाकाश तथात्वमेकं ॥ शब्द सरूपं कवीरं-नमामी, कवीरनामं पतितंपुनीतं ॥ जुगेजुगेस्वामि

हरंतदुःखं, दातारमुक्तं पुरुषं पुराणं ॥ चरणारविंद सततंनमामि,कबीरब्रह्मा तु विष्णुः शिवस्तु॥कबीर-त्वदेवदिग्धासमस्तु, मातापिता बंधुसखाधनाद्यं ॥ कबीरत्वं पारमतं न शेषं, प्रणम्यत्वंपादमोधर्मदासं ॥ वंकेजस हतेज चतुरभुजेषु, भवाब्धि कैवर्त चतुः गुरूणां ॥ चित्कोमलं सर्वदुःखंकृतंच, चूरामणंनाम सुदर्शनंच॥कुलपत प्रमोदं तत्कनल नामं, अमोलमा-चार्य सुरतः सनेही॥तद्विहितंहक सूपाकनामं, तुभ्यं-नमःप्रगट नामं च धीर्यं ॥ किमस्तुतिस्वामि परंपुराणं हंसःहितार्थाय वंदेगुरूणां॥मेदेहिमेदेहि चरणं शरण्यं, नमोनमोउग्रनामं प्रसिद्धं ॥ दयापाल दृष्टो समग्रं समुद्रो, यथाभान उदयत्तमो पुंजदहनं ॥ तथास्तु व्रतापस्य चरणं प्रपद्ये, नमस्तुतेवंस व्यालिसंच ॥ चरणामृतं पानमहाप्रसादं, गुरुकृपायस्य सदाशु-नस्था ॥ शरणागतं मुक्तभवेतहंसा, रिद्धिंच सिद्धिंच

बुद्धिं च दाता ॥ विवर्धनंभक्त त्वमेवत्राता, जे भक्त-कुर्यं त्वयादयापाल ॥ प्रमुच्यते सर्वदुःखस्य तस्यां, सर्वांहदहनंच योजीवमुक्तोइदंच ॥ स्तोत्रंनित्यंभणंते, पुरुषं चअंसं नमोहंसदंसं ॥ प्रणम्यत्वंदासं सीतल-शरण्यं, नमस्तुतिर्ब्धामि जानामिकोवा ॥ अकथं महत्वं परंपुराण ॥ सदाकृपाहं सहितार्थरूपं, मेदेहि मेंदेहि चरण शरण्यं ॥

स्तोत्र ।

नमामि कलातीत कामादि रहितं, वरिष्ठं वरीयान् विज्ञानसहितं, ॥ ररंकारमस्मी सदाकाल धन्यं, रमेतिकवीरः भेदानभिन्यम् ॥ स्वयंशाश्वतं केवलंज्ञेयरूपं, निजानंदमखिलं अखंडस्वरूपं ॥ सुधा शब्द पुंजं चेदमर्कइंदम्, सदोदित्यनुदेश तेजारविंदं ॥ गुणंनिर्गुणं वर्णाश्रमं धर्मरहितं स्थितप्रज्ञगुह्यं समेचित्यसततं ॥ महदादिमेको गुणा-

तीतनित्यं षष्ठंचतुष्टादि शब्दाहि व्यक्तम्॥ पृथिविते" जाकाश तोयं समीरं निजकिंचिदन्तव्यापकवीरं॥ अनाम मनादि श्रुतियंवदंती, कवीरादिशब्दं गिरा नरवदंति॥ उदयास्ततीतंपरापारमीशं, तुरीयादिमेको स्फुरत्तेवशेषं॥ दया आदिदे धर्मसंपन्नज्ञानं, लोभादिरागादि तमनाशभानं॥ अव्यंबलंनिर्गुणं निर्विकारं अनादिमव्यक्त गगनोपिकारं॥ पक्षं विपक्षं निजदेशकालं, नमामि कवीरं गिरा सूत्रमालं॥ इदंसर्वजक्तं महाइन्द्रजालं, मृगावारपस्यं प्रभोप्रशिवालं॥ प्रभु वर दयालं जनानंदकारी, पुरुषोत्तमंयोमद्विजपादवारं॥ महारौद्रघोरंनरेशानवंशा, तोयंचबारंच वहिनीदनीशा॥ मदोदमदमन्तं मतंगंचदीशा, मृगादीचपश्यं करीशब्दचीशा॥ महाभयंचमुलतान सजदापिजाई, कदमखाखकैवल्यं खुदेतंखोदाई॥ मुरशिदमेहरबानसाहब परवरदिगारं॥ गुनहगार बंदा तकसीरवारं॥ विनैवेगसततंचकरु-

णानिदानं ॥ सदासत्यसंगादिध्येयंचज्ञानं॥ रागस्यदी वंदीछोरनमामी सदानंदरूपंकबीरं भजामी ।

दशाष्टक स्तोत्र ।

नमामि सर्व संत जिनको मनाऊँ। चरण रेणुजिन कीमैं शिरपर चढाऊँ । चरण रेणु प्रताप भ्रम नाश जालं । सुसंतन कृपाते मिले गुरु दयालं॥ १ ॥

गुरु चरण शोभा सके को वर्णं । तरेऽनन्त जीवा गुरु चर्ण शरणं ॥ गुरु चर्ण रेणु धरो मोर भालं । नमोगुरुदयालं कबीरं कृपालं ॥१ ॥

रविचन्द्रऽनंतं गुरु अंगरूपं । गुरु देव देवं शिर भूप भूपं ॥ कृतं पार भव सिन्धु यम धार तालं । नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥ ३ ॥

तीर्थ सर्व गंगादि गुरु चर्ण माहीं । गुरु काम-धेनुकल्प वृक्ष छांहीं ॥ भक्ति ज्ञानं वैराग्य फल फूल डालं । नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥ ४ ॥

गुरु चर्ण तोयं कटे पाप घोरं । लिये गुरु प्रसादं हटे यम जोरं ॥ मिटे ताप भवसिन्धु अमृत रसालं । नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥ ५ ॥

गुरु शम्भु ब्रह्मा गुरु विष्णु रूपं । गुरु आदि ब्रह्म अनादी अनूपं ॥ गुरुकी कृपा होय व्यापे न कालं । नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥ ६ ॥

सत्य लोक वासी गुरु, सुख विलासी । सोपरगटे काशी निर्गुण उपासी ॥ नहीं गर्भ जन्मं भये चन्द्र-तालं । नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥ ७ ॥

गुरु काशी सिधाये पंडित हराये । भक्ति भाव बोध पथ जगमें चलाये ॥ नरपति पाय लागे खुले अनेक भालं । नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥८॥

बादशाह पीर परचा लेन काजे । जडे गुरु जंजीरा सो तीरायिराजे ॥ मृतक सुत जिलाये कमाली कमालं । नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥ ९ ॥

पुर्षोत्तम पुरीमें जलत पण्डा बुझाये । सुने सिद्ध बन्धा सो फन्दा छुडाये ॥ बलख ज्ञान करके चिताये नृपालं । नमोगुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥ १० ॥

थीर किये आसा सिन्धु नीरं हटाये । गुरु दरस दे ज्ञान संशय मिटाये ॥ वृक्ष बट प्रगट कर दिखाय विशालं । नमोगुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥ ११ ॥

सुरनर मुनि नागसबही गुरु मनावें । नारद मुनि शुकदेव गुरुहीको ध्यावें ॥ गुरु चोइ मित्रं पिता रक्षपालं । नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥ १२ ॥

गुरु योग योशं तपस्यासुरत्तं । सो भव रोग भग्यं गुरु ध्यान धरतं ॥ गुरुकी कृपा होय व्यापे न कालं । नमोगुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥ १३ ॥

गुरु लोक प्रकाशं शंसि कोटि भानं । पुरुष रूप क्रांति कहोको बखानं ॥ गुरु लोक पहुँचे चले हंस चालं । नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं॥ १४ ॥

गुरु मोरि कर्म बहु हंस कीन्हें । सुनो तोहि जाने तबहीं शर्णलीने ॥ दीजे मोहि दीदार लेहु संमालं । नमो गुरु दयाल कबीरं कृपालं ॥ १५ ॥

गुरुऽनन्त तारे सके को बखानी । समावेच्चिटी पेट सागरको पानी ॥ निगमनेति भाषे तो मैं कौन वालं नमो गुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥ १६ ॥

अहो गुरु ! मै हूँ सदा दास तेरे।हृदयवास कीजे गुरु आन मेरे ॥ भक्ति ज्ञान दीजे सुनो प्रणतपाल। नमोगुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥ १७ ॥

गुरुकी जो महिमा पढे नित्यनेमा । गुरु है कबीरं सो ताहि सो प्रेमा ॥ हरे पाप सब सब कहे शास्त्र । मालं नमोगुरु दयालं कबीरं कृपालं ॥१८॥

स्तोत्रदशक ।

नमस्कार बार बार सुन हमार सतगुरं । तिमिर हरण तमस् दलन शरन पाल सुरवरं ॥

१-मालं=माला=समूह अर्थात् सब शास्त्र ।

प्रकाशवान तेज भानु भक्त भूप सख्यतं । युगन युगन होकबीर चरण शरण रख्यतं ॥ १ ॥

अमर लोक अरु अशोक, सर्व दुःखनाशतं । तुव निवास सुख विलास, बहु प्रकाश शास्वतं ॥ आदि पुरुषआप है, जहाँ अलेख अक्षतं । युगन युगन हो कबीर चरण शरण रख्यतं ॥ २ ॥

सर्व गुननिधान कृपासिन्धु नागरं । सो प्रगटे अवनि आये ज्ञान गम्य उजागरं ॥ अनंत रूप ऊपमा सके सो कौनअख्यतं । युगन युगन हो कबीर चरण शरण रख्यतं ॥ ३ ॥

सर्वाजीत विद्या रीति सर्व देश जीतियं । तोहि निहार गयो हार मत हंकार बीतियं ॥ काशी वासी पंडित भये निराश झख्यतं । युगन युगन हो कबीर चरण शरण रख्यतं ॥ ४ ॥

पादशाह दगा चाह गयन्द लाय गर्जनं । तुम दयाल हो विशाल सिंह नाद - तर्जनं ॥ तोरि

जञ्जीर भये तीर रहे सर्व थक्यतं । युगन युगन हो कबीर चरण शरण रख्यतं ।। ५ ।।

रंक राव बलख आदि सकल जीव तारनं तजि अमीर हो फकीर ज्ञान गम्य धारनं ।। भक्ति पक्ष शुद्ध लक्ष थके जो स्वाद थक्यतं । युगन युगन हो कबीर चरण शरण रख्यतं ॥ ६ ।।

पतित बहु परे पाय शरण भक्त वत्सलं । जानि दास मेटि त्रास दीन वास अविचलं ॥ सदा सुख नाहिं दुःख हंस शब्द परसि छक्यतं । युगन युगन हो कबीर चरण शरण रख्यतं ॥ ७ ॥

विरद रावरो संभारु हो दयाल दुखहरं । ले उवार विघ्न टार अघ निवार सुख करं ॥ मेटो त्रास करत सब जिव भक्ष्यतं । युगन युगन हो कबीर चरण शरण रख्यतं ॥ ८ ॥

गंग वारि करे पुकार सुनु हमार समरत्थं । त्राहि त्राहि शरण पाहि सखमाया अन्नतं ।। ९ ।।

अगाध महिमा साधु जाने मुनि देव यक्षतं ।
युगन युगन हो कबीर चरण शरण रख्यतं ॥ ९ ॥

सांझ सवार नेम धार गुण तुम्हार उच्चरं । तुम कबीर हरण पीर करण तीर भव परं ॥ मैं अज्ञान शरण आयो, राख शर्म सख्यतं । युगन युगन हो कबीर चरण शरण रख्यतं ॥ १० ॥

स्तोत्र ।

जय दीन दयाल कृपाल हितं । मद लोभ रु मोह सदा रहितं ॥ अनवद्य अखण्ड अनादि अजं । सुर सन्त कविंद्र मुनिन्द्र भजं ॥ १ ॥

वरियान वरेष्ट सु ब्रह्म वरं । क्षर अक्षर आतम पारपरं ॥ सत्त नाम कबीर गंभीर धयं । अणिमा महिमा लघिमा सिधयं ॥ २ ॥

शिव सिद्ध सुरेश मुनीश अवे । मिलि माधव संत वंदे जो सबे ॥ गुण ज्ञान निधान विज्ञान अयं । निर्भय निर्मल सुःख ब्रह्म स्वयं ॥ ३ ॥

उद्याचल ऊपर सूदर्श। वचनामृत पोषन चन्द्र जसा ॥अक्षपाल कृपाल हमेश वरं। हनुमन्त सुधारन काज परं ॥ ४ ॥

सनकादिक ज्ञान जैसे गहिरे।सर्व लोकमें नारद ज्यों विहरे ॥ सर्व योगिन गोरख धीरयती। सत्य धारणसो हरिचन्द सती ॥ ५ ॥

गिरजापति नित ज्यों ध्यान धरं। अचलं गिरि सिन्धु समं समरं ॥ शुक देव जैसे गुरु ज्ञान गनं। सव दासन पाप परं समनं ॥ ६ ॥

वचनं किरनं जन कञ्ज खिलं। तव नाम लिये सत्तलोक मिलं। वर्णाश्रमे गायन वेद धुनी। सबके पर आप विराज मुनी ॥ ७ ॥

नव खण्ड विहंडन काल कले। ब्रह्मण्ड इकीस ज्ञु आप गले ॥ भय टारन हारसो आप अजै। तेहि कारन आतम राम भजै ॥ ८ ॥

उस कारन आप सदा अजयं । जग , काम रु क्रोध सबै तजयं ॥ गज राज प्रचण्ड मतंग गजा । जहँ केहरि सावक आप सजा ॥ ९ ॥

असुरं मद मत्सर जो गज हैं।तुम सिंध अवाज सुनी भजि हैं ॥ मन लोलुपता बहु दादुर जे । तेहि भक्षक पन्नग हो अकजे ॥ १० ॥

अब दीन दयाल कबीर गुरू । नित्य दीजिये प्रेम जो प्रीति करूं ॥ गुरु सागर नागर आप ऐसे । परकाशक सो जग सूर जैसे ॥ ११ ॥

गत रोग न दोष न मान मदं । अचलं अमलं सुखदं शुभदं । सिद्ध साधक हार रहे सगरे । पक्ष धुन्ध धरे चकरार गरे ॥ १२ ॥

सुलतान, नरेश अडे चरचा । बहु वार अनेक दिये परचा ॥ त्रिय रूप भये दृग देखतही । उघर्यो हियरा गुरु पेखतही ॥ १३ ॥

नृप साधु गये जग जानत है । गुरु ब्रह्म कवीरहिं मानत है ॥ पवनं नभ तेज पृथ्वीरु जलं ॥ सब खंडित आप सदा अचलं ॥ १४ ॥

शब्दादिक पञ्च विषय सवही । तेहि व्यापत नाहिं कदी कवही ॥ शरणागत पालक आप सुनो। अदमाँ पद दायन मान गुनो ॥ १५ ॥

महिमा बहु एक रसाय समं । वरणो कहिवात गुनी वचनं ॥ कविता शुद्ध आप कृपा चरणं । जन (आतमराम) सो है शरणं ॥ १६ ॥

स्तोत्र सतक ।

जै जै भवतारण भर्म निवारण हंस उबारण तव शरणं । शब्द विलासी अकह अविनाशी सत्य प्रकाशी भय हरणं ॥ १ ॥

निर्मल दयालं सार कृपालं आप विशालं अभय कारणं । सतचित भावन रूप अजावन आतम पावन तिहि शरणं ॥ २ ॥

यह जिव अविनाशी ब्रह्मविलासी जगत प्रकाशी आप भये। आपहिं कीन्हा मति नहिं चीन्हा पंचमभिन्ना रूप लये॥ ३॥

गुण आकर संगे चित मन रंगे चाल विहंगे भूल परे। विनु रूप गुसाईं अदल चढाई शून्य बसाई न्यार भये॥ ४॥

ते पहुंचारी निगम पुकारी गाफिल धारी ख्वार परे। निराधार जहां चलना वाके शरना भारजो घरना मार परे॥ ५॥

विनु निज पहिचाने हठ मत ठाने स्वान समाने मुदित फिरे। गुरु दीनो मति धीरा पायो चित थीरा आशा रतपर असर सरे॥ ६॥

जो हंस पद न्यारा है निर्धारा अपरम्पारा आप रहे॥ सोई दीजै स्वामी निरभय नामी अनुभव गामी सुरत लहे॥ ७॥

स्तोत्र अष्टक ।

भो कबीर हरण पीर धीर बुद्धि धारणं । सत्य-नाम परम धाम सर्व करन कारणं ॥ १ ॥

हंस रूप परम भूप वेद विद्य छेदकं । ज्ञान नीति अति अजीत ज्ञान बुद्धि धारणं ॥ २ ॥

सन्त रक्ष साधु पक्ष भक्ति मुक्ति तारनं । गुणा-तीत भयाभीत सर्व सृष्टि पारणं॥ ३ ॥

निराधार सत्याधार परम पार पारणं । प्रणत-पाल अति दयाल काल जाल टारणं ॥ ४ ॥

दया सिन्धु क्षमा इन्दु श्वेत विन्दु शोभितं । शब्द रूप अति अनूप अमिरूप सारणं ॥ ५ ॥

अकह नाम त्वं अकाम मान हीन पालनं । पाप ताप दहन कृत तिहुँ ताप नाशनं ॥ ६ ॥

भवातीत योग जीत हंस रूप लक्षणं । सत्य-रूप गुरु स्वरूप शरणागत तारणं ॥ ७ ॥

प्रगट प्रत्यक्ष अक्ष ज्ञानरूप साक्षिनं । सत्यनाम आदि पुरुष सर्व घट भाखनं ॥ ८ ॥

साखी ।

सद्गुरु परज प्रीति अति, सारासार विचार ।
सत्यनाम हंसा गहे, उतरे भवनिधि पार ॥

स्तोत्र ।

छन्द शिखरणी ।

विभुं सिन्धुं बुद्धेविमलवचसा शान्ति वरदं । निजानंदं स्वामिन् भवभयहरं स्वस्तिपददम् ॥ कबीरज्ञानां भूसुखदचरणं भ्रांतिदलनं । समीडेजंत्वाहं बहुजडमतिस्सर्वसुखदम् ॥ १ ॥

प्रभुं नष्टुं शोकं कठिनजनुपोमोहवहता । जनानां मृत्योश्च प्रचुरखुगुणं नष्टकुहकम्॥मेनामायादूरं सरल हृदयं भक्तिसुलभं । सतां कर्तृ प्रीतिं धृतनरतनं मूर्तिसदयम् ॥ २ ॥

स्वयं सिन्धुं नित्यं कलहरहितं मानप्रददं। प्रभौ द्वै कंजाक्षं जलजवदनं वारिजपदं॥ कृपासिन्धुं श्रीदं मुनिवरवरं निर्मलवलम्। सदा शिष्यैरग्रैर्जगति वहुभिः सेवितजिह॥ ३॥

वुधैर्वन्द्यं निन्द्यं कुजनपुरुषैश्चाति विमुखं। गुरुं गर्भातीतं प्रतियुगभवं भक्तिजरसि॥ महामोहं हतृरविमिव भवे धर्मवपुषां बहुग्रन्थैस्तीव्रैः परिहृतमनस्सं शयरिपुं॥ ४॥

त्रयस्तापं हंतृ विधुमिव जनानांच सबलं।निरीहं-गंभीरं सदयपुरुषस्थानपरमम्॥शुभशक्त्यौ युक्तं प्रकटयससेसत्यसुकृतं। महातेजः-पुंजं प्रसुलभपदं शुद्धमनसैः॥ ५॥

चिताकारं शुद्धं मुचिमुचिदुखपारखविभो। अजाकाशं शांतं किल भवजयं निर्भयपदं॥ महाकायं धीरं कलुषदहनं चारुवचनं। मनश्चितायास्तत्त्वपदगतानां च सुमते॥ ६॥

परं शुद्धं धीरं स्वचितमहतां पादरजसो। मुदामेत्यंरम्यांपरमपदवीलब्धिकरणन् ॥ मुनीन्द्रं प्रत्रातुं चरण सुगतान् वन्द्यसकलं । समर्थः सर्वज्ञो भवजलनिवेर्हीनमनसः ॥ ७ ॥

स्तुतिर्दिव्या साध्वी भवतु महतां चित्तरमणी । सदेयं वा प्रीत्यै कलुषदहिनी मोहदमनी ॥ कबीराख्यावाताहतकलिमलानाहि विमलाः । लद्रुत्कृष्टा रम्या जनहितकरीं कण्ठमधुरां ॥ ८ ॥

नाराच छन्द ।

नमामि सर्व ज्ञायकं, सुभक्ति मुक्ति दायकं, गुरुजी सन्त भायकं, सुशुद्ध ज्ञान नायकं ॥ १ ॥

निःकाम आप सुन्दरं, अकाम नाम मन्दरं, विभु प्रकाश भासिकं, कामादि दुःखनाशिकं ॥ २ ॥

भयःप्रवाह वारणं, अपार पार तारणं, पुरान वेद गावितं, सो पार नाहिं पावितं ॥ ३ ॥

सुज्ञान सन्त रूपही, परख प्रकाश भूपही, मुनीश ईश ईशही, हटाये काल पीसही ॥ ४ ॥

येहि हमार वीनती, करिये आप गीनती, छुआ वेहान जालही, कराल कालकालही ॥ ५ ॥

जन्मादि दुःखते अति, अधीर मोर चित्तही, सह्यो ना जात मोहिसो, हिये जू पीर होतही॥ ६ ॥

ना कोई मोहि जक्त में, न आश धन्यते कही, सुआश एक आपके, ना दूसरि सहाइके ॥ ७ ॥

तूँहि सुजान आपही, मिटाइ देहु तापही, प्रभुजी तोहि छाडिकै, दुजा न कोइ साथही॥ ८ ॥

गुरु कबीर रंजनं, नमामि दुःख भंजनं, करो सनाथ मोह आजु, शिशु तुम्हारजानिकै ॥ ९ ॥

स्तोत्र।

कृपाळ चित्त नंदनं, अज्ञान भेद खंडनं, सुश्रेष्ठ धर्म्म मंडनं, दुःखीत जीव देखिकै ॥ १ ॥

अपार ज्ञान सागरं, प्रशांत चित्त आगरं, न राग द्वेष पासही, सुमुक्ति रूप राजही ॥ २ ॥

अनाथ सा विचारिकै, कृपालु मोहि कीजिये, अज्ञान मोह दाहिकै, चरण वास दीजिये ॥ ३ ॥

अनंत बन्धनो करि, संयुक्त मोरी चित्तही, छूटयो ना जात मोहिसो, अनेक दुःख देतही ॥४॥

महा भवाब्धि धारमें, विषै तरंग मध्यमें, झकोरि मोरि चित्तको, बूडत हो ना सुद्धमें ॥ ५ ॥

महान मोह वेगमें, बहत हों जू नाथ मैं, स्वशिष्य बाल जानिकै, जूवाह झालि कीजिये ॥ ६ ॥

आबै जू ऐसी कीजिये, सो पीर मोरि छीजिये, मा आप त्यागि और मैं, शरण जाहि लीजिये ॥७॥

दयाल गुरु आपही, प्रखाय भवतापही, करो निहाल पालि, तवदास दीन जानिही ॥ ८ ॥

स्तोत्र।

छन्द तोटक।

परमं सदयं भवताप हरं, जन पीन महासुख वृन्द ददं, शरणागत पारंपार प्रभुं, गुरुदेवमजं विमलं च भजे ॥ १ ॥

मुनि केशव वेश गणेशनुतं सुरराज विराज नरींद्र नुतं, सनकादि फनिंद्र कपिंद्रनुतं, गुरुदेवमजं विमलं च भजे ॥ २ ॥

करुणामय रूपनंत कलं, पदपंकज रेणु विशुद्ध जनं, अघ पुंज हरं मति शुद्ध करं, गुरुदेवमजं विमलं च भजे ॥ ३ ॥

श्रुति सार विचार इति विभुकं, हरिचन्द्र कळा संभा विपुलं; कवि वंदित पाद सरोज युगं, गुरुदेव-मजं विमलं च भजे ॥ ४ ॥

निज रूप मदं फल मोक्ष ददं, सरलं वरदं सुख सिन्धु तरं; कलि काल विकार सो मोह दहं, गुरु-देवमजं विमलं च भजे ॥ ५ ॥

यमभीत हरं पर हेत तनुं, कलु साफ हकं रिपु काम दहं; शिव जीव विचार मनो विरतं, गुरुदेव मजं विमलं च भजे ॥ ६ ॥

मद मोह विभंजन सूरपटं, द्विपदं द्विभुजं नर-रूप शुद्धं, विदु शाब्द मोदकरं वचसा, गुरुदेव-मजं विमलं च भजे ॥ ७ ॥

सम दृष्टि सुवाद मनो विरतं, भ्रम जालक वाद वितर्क मतिं,शुभदं पद सार कबीर वरं, गुरुदेवमजं विमलं च भजे ॥ ८ ॥

स्तोत्र अष्टक ।

विभुं व्यापकं शुद्ध धीरं गंभीरं । सदाशिवरूपं प्रकाशी निरीहं ॥ अमोल्यं अडोल्यं अशोच्यं प्रणामि । जपेहं भजेहं कबीरं नमामि ॥ १ ॥

निहीसो निराकार निर्वाण रूपं । चिदाकाश माकाशसाक्षि स्वरूपं ॥ अभेद्यं अछेद्यं धनी अंत्र-जामि । जपेऽहं भजेऽहं कबीरं नमामि ॥ २ ॥

विषयपंच क्रोधादि व्यापे न तेही । मदादिक-माहि नहिं शोक जेही ॥ ऐसा सु प्रिये गुरुहे मोहि--स्वामी ॥ जपेऽहं भजेहं कबीरं नमामि ॥ ३॥

स्वयं सिन्धुराशि क्षमाके प्रकाशी । दयानिधिवासी सबे सुख पासी ॥ सोई धर्मदास गोसाई सुपामी । जपेऽहं भजेऽहं कबीरं नमामि ॥ ४ ॥

तीनो कालदर्शी घटोज्ञान वर्शी । वडानन्द कर्शी मिटावंत तर्शी ॥ अखण्डं निर्द्वंद्वं अभै पदगामी । जपेऽहं भजेऽहं कबीरं नमामि ॥ ५ ॥

पंचोक्लेश इहितं षटो उर्मिदहितं। वेदोक्तं कुवानी प्रखी सर्व वहितं ॥ यथा सुउत्तोत्कृष्टहे गुरूनामी । जपेऽहं भजेऽहं कबीरं नमामि ॥ ६ ॥

निजानन्द आपे देखीं काल कांपे । माया नहीं व्यापे जपे मूनि जापे ॥ सोई शरणोंमें टरुं ठाम ग्रामी । जपेऽहं भजेऽहं कबीरं नमामि ॥ ७ ॥

अजन्मं अमरणं सदा सिन्धुकर्णं । भयाब्धि महाकाल ताहि सुतर्णं ॥ सोऽहं तवदास धरे ध्याननामी। जपेऽहं भजेऽहं कबीरं नमामि ॥ ८ ॥

श्लोक ।

स्तोत्रमिदं पठेन्नित्यं श्रद्धाभावेन संस्थितम् । यस्य सर्वफलं भुक्त्वा तस्य मुक्तिर्न संशयः ॥ नमोऽस्तुते कबीरस्य साधुवृन्द नमोऽस्तुते ॥ गोस्वामी धर्मदासस्य वंदनं च पुनः पुनः ॥

स्तोत्र पञ्चक ।

जयति जय धर्मधुर धीर कब्बीर गुरु जयति जय वीर वर ब्रह्मचारी । दहन वन मोह गुण गहन भूषित विभो भक्त भव शूल निरमूल कारी ॥ टे० ॥

अच्युतानन्द मुदकुन्द स्वछन्द दलि दोष दुख द्वन्द लीलाऽवतारी । कम्बुकर्पूर मदचूर अति धवल वपु सकल सुख गेह नरदेह धारी ॥ जयति जय० १

अमित सौन्दर्य्य सुखधाम अभिराम अति कोटि शतकाम गर्वापहारी। तरुण कञ्जारुण हरण शोभा चरण दीन विश्राम परमोपकारी॥ जयतिजय०॥२॥

सत्य पद पुष्ट दलि, दुष्ट दुर्वासना सदा सन्तुष्ट सन्तोप धारी।अमल अनवद्य अव्यक्त अविचल अजित अनघ अद्वैत अज निर्विकारी॥ जयतिजय० ॥३॥

जगत् विख्यात तव चरित सुर सरित सम पतित पावन परम पाप हारी। साधु जन्द वृन्द अरविन्द दिनकर उदयजयजयति सर्वे रुचारी॥ जयति जय० ॥ ४ ॥

येन चरणामृतं पान कृत्सर्वदा तस्य परी चारिका मुक्ति भारी॥ सर्वे संत्रास धर्मदास नाशक प्रभो राज राजेन्द्र पारख विहारी॥ जयति जय०॥ ५॥

द्वितीय स्तोत्र पञ्चक।

जयति जय कंज पर्णज परीक्षक प्रभो प्रौढ गूढार्थ विद वेद सारम्। भक्त वत्सल दया सिंधु करुणायतन राज राजेन्द्र लीलाऽवतारम्॥ टे०॥

आते तारण तरण दीन अशरण शरण मोद मंगळ कारण अति उदारम् । क्षमा वैराग्य सन्तोष समता दया आदि युत शील धीरज विचारम् ॥ जयति जय कंज० ॥ १ ॥

परम कल्याण यम ध्यान निर्वाण प्रद रहितं अनुमान माया विकारम् । विगत अज्ञान प्रज्ञान विज्ञान घन मोह मद मान कानन कुठारम् ॥जयति जय० ॥ २ ॥

लोभ वन दहन अति प्रबल दावा नलम् काम क्रोधादि कौरव तुषारम् । सर्व तो भद्र वर प्रखर दिनकर निकर उदय हरणाय जगदन्ध कारम् ॥ जयति जय० ॥ ३ ॥

यस्य प्रत्यक्ष हित योग जप यजन मुनि यत्न कुर्वंति नाना प्रकारम् । तस्य विग्रह विदित साधु गुरु धूर्त अघ ओघ हत निर्विकारम् ॥ जयति जय० ॥ ४ ॥

विविधि गुण गणन श्रुति शारदा शेष निशि दिवस यदि तदपि नहिं लहत पारम्॥ नौमि कब्बीर गुरु नौमि कब्बीर,गुरु वदति धर्मदास इति वार वारम् ॥ जयति जय ॥ ९ ॥

तृतीय स्तोत्र पंचक।

जय धीर धीरकवीर भवजल पीर भीर विनाशनम्। शरतीर मनुज शरीर धृत गँभीर ज्ञान प्रकाशनम्॥ ॥ टे० ॥ झाईं सन्धि विकार कारि निरवार भार विदारनम्॥ विविधि विधि टकसार गुरु मुख द्वार सार विचारणम्॥ जयति जय॥ १ ॥

मार्तंड प्रचंडतम पाखंड खंडन कारणम्। योगदंड अखंड ताप प्रताप पाप प्रहारणम् ॥ जयति जय ॥ २ ॥

जय कल्पपाद पर्ण सम मृदु चरण हरण भवार्णवम्। प्रदमोह मंगलकरण अशरण शरण दीन उधारणम्॥ जयति जय॥ ३ ॥

आनन्द कन्द स्वच्छन्द दलि दुख द्वन्द फन्द निकन्दनम् । इति अन्त रहित अनन्त सन्त महन्त तव गुण वन्दनम् ॥ जयति जय ॥ ४ ॥

धर्मदास जासु विलास त्रास कराल जाल विभंजनम् ॥ दलि शाल दीनदयाल कीन निहाल मुनिमन रंजनं ॥ जयति जय ॥ ५ ॥

सत्यनाम.

सत्यकबीराय नमः ।

अथ कबीरसाबराजस्तोत्र ।

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

नित्यानन्दसदात्मबोधरसितं, चन्द्रावदातप्रभम् । लोकातीतमहोदयं निजजनोद्धारावतारोदयम्॥ सारासारविवेकपारग इति,

परीक्षको यो मतस्तस्मै सद्गुरुरूपिणे कुरु नमः श्रीमत् कबीराय भोः ॥ १ ॥

प्रत्यक्षा प्रमितिर्न चागतिगती, चत्वारि भूतानि च । संधिर्भावगतश्च वाय्र्यमपरो, देहान्न जीवस्तु हि ॥ चार्वाकैर्विरुतम्परीक्षयति यो, भावं स्वभावात्पृथक् । तस्मै सद्गुरुरूपिणे कुरु नमः श्रीमत्कबीराय भोः ॥ २ ॥

जैनः प्राह जयं न जीवपितरं, पुण्यञ्च पापं तथा । द्रव्यं पुद्गलकश्च कालमितियत्स्वातन्त्र्यसत्कर्म्मणि ॥ तद्युक्त्यानुभवैः परीक्षयति यो, किंतन्त्रता कर्म्मणस्तस्मै सद्गुरुरूपिणे कुरु नमः श्रीमत्कबीराय भोः ॥ ३ ॥

गोरक्षप्रमुखा वदन्ति वपुषः, श्वासस्य संशोधनैरात्मानन्दकरोत्र भैरवनये, सिद्धिः

समुज्जृम्भते ॥ तच्चेदं नटवत्परीक्षयति यो, कृत्या किमिष्टायुषा तस्मै सद्गुरुरूपिणे कुरु नमः श्रीमत्कबीराय भोः ॥ ४ ॥

शून्याज्जातमशून्यता युतमुत,शून्यं भविष्यज्जगद्बाह्याभ्यन्तरभेदतः परिणता,चिद्वासना भासते ॥ इत्थं बोद्धरुतं परीक्षयति यः शून्यस्य साक्षी स कस्तस्मै स० ॥ ५ ॥

योगी प्राह यमादिभिर्बहुविधैः स्याच्चेतसो निग्रहस्तेनात्मा प्रभुतामुपैति मणितो लोहः सुवर्णायते॥इत्युक्तं किमृतं परीक्षयति यो, जातः क्वचित्तामियात्तस्मै स० ॥ ६ ॥

खञ्जान्धे इव कर्तृभोक्तृकलिते, नित्ये अजाजे रते मृत्युःकुम्भवदेव सा परिणता, मुक्तस्तया यः करी॥ इत्युक्तं क्रियते परीक्षयतियः,का भोक्तृकर्त्रोर्भिदा तस्मै स० ॥७॥

मीमांसासु मिते श्रुतिर्विधिगतासूया-
कृतिःस्यान्मुदे आत्मज्ञानगुणेश्वरैव परमं
देवाश्च मन्त्रात्मकाः ॥ इत्युक्तं प्रगटं परी-
क्षयति यः कर्त्ता कथञ्चित्क्रियास्तस्मै
स० ॥ ८ ॥

आत्मानौ च विभू स्वतन्त्रपरतन्त्राभ्यां
भिदा संक्षयाद्भूम्यादेः परमाणवः कृतनयाः
कार्यस्य चारंभकाः ॥ काणादैः कथितं
परीक्षयति यः कालश्च किं वा विभोस्त-
स्मै स० ॥ ९ ॥

प्रमाण्यादिवसुद्वयार्थविदुषोऽमी संजगौ
गौतमे दुःखध्वंसकृतं दशादशमथोज्ञानोपम-
र्दादिति ॥ तत्किं तथ्यमिदं परीक्षयति यो,
दुःखात्यये किं सुखं तस्मै स० ॥ १० ॥

सत्यं ब्रह्म न चान्यदस्ति किमपि ब्रह्मैव
चाहं ममाज्ञानाद्भाति ह्यनादितो जगदिदं,

रज्जौ भुजंगाकृति॥इत्थंदण्डिमतं परीक्षयाति
यः खण्डिव्यतण्डात्मकं तस्मै स० ॥११॥

नानामूर्तिधरः पृथक्पृथगयं, पूज्यश्च
पौराणिकाः प्राहुः शंकरशांकरीशिवसुतः
सूर्योहरिर्वा विधिः ॥ इत्याख्यानभरं परी-
क्षयति यः, कोऽसावमूर्तिः परस्तस्मै स०१२

शाक्तानां भणितं सुखात्मकथनं, शक्तिः
स्वधर्मात्मिका तस्या व्यक्तिरिहास्ति कौल-
कृतयश्चीर्णैर्मकारैः स्वतः ॥ एतत्कामकृतं
परीक्षयाति यो, लोकस्य वाचाजुषंस्तस्मै
स० ॥ १३ ॥

यच्चोक्तं यवनैर्जगज्जनिकरोऽल्लेयास्ति सोऽ-
ल्ला परः जीवा नित्यनवाः क्रियांफलजुषः
कस्मिंश्चिदेषान्तरे ॥ तच्चैतदू व्यथता परी-
क्षयति यः स्वात्मानुबोधोदयात्तस्मै सं०१४

द्वैताऽद्वैतविभेद्यभेदकनिराकारप्रकारादिः
लक्ष्यालक्ष्यप्रकाश्यकाशप्रतिभू, र्ध्येवापशे
षातिगः ॥ यः कश्चिद्वदता भवेद्धि विरतै
साम्राज्यलक्ष्म्या स्थिरस्तस्मै स० ॥ १५ ।

एकोऽनेकसुशक्तिरादिपुरुषो, जन्मावसा
नोज्झिते बीजं विश्वतरोर्विभुर्विहरतां, यः
पक्षिणां सन्मुदे ॥ भव्यं स्वानुभवं फलव्य
तिरितं, यस्मै समभ्यर्थयत्तस्मै स० ॥१६ ॥

अमरपुरनिवासी पूरुषो योगदक्षश्चरणक-
मलमस्याभ्यंचतामार्य्यवर्य्यः ॥ य इह गुरु-
कवीरं, तस्य साम्राज्यकीर्तिस्तवमखिल-
कलाढ्यं पूर्णमभ्यस्य पूर्णः ॥ १७ ॥

इति कबीर सांवराज स्तोत्रं
सम्पूर्णम् ।

गुरुस्तुतिः ।

ध्यानात्मानं परमात्मानं दानं ध्यानं योगं ज्ञानम्॥ तीर्थस्नानं इष्टध्यानं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ १ ॥

प्राणा देहं गेहं राज्यं स्वर्गं भोग्यं मोक्षं भक्तिम् ॥ पुत्रं पित्र्यं वित्तकलत्रं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ २ ॥

वानप्रस्थं यतिविधिधर्मं पारमहंस्यं भिक्षोश्चरितम् ॥ साधोः सेवा भूसुरभक्तिं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ३ ॥

विष्णोर्भक्तिं पूजनचरितं वैष्णवसेवामातरि भक्तिम् ॥ विष्णोः पित्रोः सेवनयोग्यं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ४ ॥

प्रत्याहारं चेन्द्रियजयतां प्राणायामं न्यासविधानम् ॥ इष्टः पूजा जपतपभक्तिं गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ५ ॥

मत्स्यः कूर्मः श्रीवाराहः नरहरिरूपे वामनदेवः ॥ त्रिभुवनसारो महिमापारो न गुरोरधिको न गुरोरधिकः ॥ ६ ॥

श्रीभृगुदेवः श्रीरघुनाथः श्रीयदुनाथो बौद्ध सुकल्की ॥ अवतारा दश वेदे प्रोक्ता न गुरोरधिको न गुरोरधिकः ॥ ७ ॥

गंगा काशीकाञ्ची द्वारा मायाऽयोध्याऽवंती मथुरा ॥ यमुना रेवा पुष्करतीर्थं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ८ ॥

गोकुलगमनं गोपुरमथनं श्रीवृन्दावनमधुपुरटनम् ॥ एतत्सर्वं सुमहत्पुण्यं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ ९ ॥

तुलसी सेवा हरिहरभक्तिर्गंगासागरसंगमसुक्तिः ॥ किमपरमधिकं रामे भक्तिर्न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ॥ १० ॥

काली दुर्गा भुवना बगला श्रीमातंगी धूमा तारा ॥ छिन्ना त्रिपुरा भैरवि कमला न गुरोरधिका न गुरोरधिका ॥ ११ ॥

एतत् स्तोत्रं पठति च नित्यं मोक्षज्ञानं सोप्याति धन्यः ॥ ब्रह्माण्डांतर्यद्यद्देवं न गुरो रधिकं न गुरोरधिकम् ॥ १२ ॥

इति ।

स्तोत्र ।

सवैया ।

भूतल काल कला मन पेखि, अभय पद ब्रह्म लखा ब्रतको तो । देखि प्रपंच अनेक लुभावन, जो फिरतो मन ठावन टोतो ॥ आप धनी निर्धार कियो, इतने दिन नाहक ऊसर जोतो । को भव-सिन्धु उबारत जीवन, जो कहिनाम कबीर न होतो ॥ १ ॥

बूडत जो अघकुंडनमें,यम फन्दन फूँक समूह बधीतो । कर्म अकर्मनके गजरा शिर,पायतलोधर आन खगोतो॥ठावन ठान कुठान सबै तजि, कंचन कांच उठाय लशो तो। को भवसिन्धु उबारत जीवन जो कलि नाम कबीर न हो:तो ॥ २ ॥

जो प्रभु स्वर्ग पताल करे सब, जो प्रभु लोक अखंडित छाये ॥ जो प्रभु खान रचे पर चार, वही प्रभु वेद सुवेद बनाये ॥ सो सर्वज्ञ कहे सुख-टाल, रमो सबही नर भेद न पाये । सो प्रभु नाम कबीरकहाये,उबारन जीवनको जग आये ॥ ३ ॥

दे निज नाम लखाय हिये, सत शब्द गहे सत लोक सिधाये। जीवनको अपनो करिकै गुरु ज्ञान अखंडित सो दरसाये॥ हे प्रभु ब्रह्म अपार अगोचर, को बरने गुरुके गुन पाये । सो प्रभु नाम कबीर कहाये, उबारन जीवनको जग आये ॥ ४

कवित्त ।

काशी है सुवश नगर प्रभुको निवास जहां,
सन्तन शिरताज वास देखो दृग मीरको । भारी अघ पुंज कँपै देखि दयाको सिन्धु, वरनेको लोक शोभा गुनके गँभीरको ॥ कहै सुन लाल शुक्र शोभित प्रकाश जाको, ताहिको निशान शुक्र अति सुख हीरको । कहै सुनै शम्भु गौरा जागे नर नाहिं बौरा, भागे यम औरा धौरा परसे कबीरको ॥ ९ ॥

दोहा ।

सद्गुरु नाम कबीरको, जप मन बारम्बार ।
विना जपे तोहि फल मिले, परै न यमकी धार ॥

अथ वंशगुरुस्तुति प्रारम्भ ।

सवैया ।

पुरुष सो इच्छा उपजी जबै फिर, तीनहु लोक भये पलमांही । सोरह मांहि काल लखो फिर,

मोटह सो न्यारा वह नाहीं ॥ तारकर शक्ति भई गुण तीन, सो वेद पुरानको राह लखाही ॥ सन्तनकी सतसंग करो तकि, न्यारा भेद तवे दरसाही ॥ ६ ॥

है निरअक्षर नाम सहीं, फिर कैसेके लखवेंमों आवे। जैसे फूलमें वास कहं फिर, रूपन रेख नजर नहिं आवे ॥ पूरे गुरु जाहि मिले कृपानिधि, शब्दहींगो पुनि ताहि लखावे । राग रागिनी रागहिमों फिर. ऐसेहिं निरअक्षर लखि पावे ॥ ७ ॥

अरजी मेरी मरजी तेरी, विन मरजी कछु अर्ज नहीं है । जो विधि अंकलिखा धरिया, सो टारन हार एक तुहीं है ॥ मूरख जीव करे करनी, बलक्रिया सिद्धि तुरन्त लही है । सत इक ईशकी और परे पर, सत्तगुरु सत्य कवीर सही है ॥ ८ ॥

नामकवीर सनातनको, जगममाहिं कटाय आपके वंशा ॥ अजर नामको छापले आये, काल कर्मकी

ताहि न संशा॥ जापर दृष्टिकरे करुणानिधि, कागाते कर डारत हंसा । देहिं अभयपद दीनन जान, सो बालाबीर पुरुष जिन आशा ॥ ९ ॥

शब्द स्वरूप अखंड अनामी, देखि जीव दुखी जग आये हैं। है हितकारी कर्म प्रहारी मुक्ति पदारथ लाये हैं। हैं अविनाशी परम विलासी, मुक्ति पदारथ गाये हैं । मुक्तिको रूप नाम मुक्तामनि; जीवन बन्ध छुडाये हैं॥ १० ॥कामीके मन कामवसे फिर, लोभीके मन लोभ रहावे।निन्दक मन निन्दाहि बसे, फिर घातिकके मन घात समावे ॥ ज्यों नलनीसुवना अरुझी, फिरि, छोड न कोटि उपाय करावे । ऐसे ही नामको ध्यान धरे फिर, औरहि बात कछू नहिं भावे ॥ ११ ॥

कवित्त ।

भारी भौसागरको दीसे नहीं वारा पार, ताहिको पार कहो कैसेके पाइये । मनहीको

पवन जान मायाकी लहर उठे, शोभा अब कहो ताकी कहाँ लो बताइये ।। शब्दको जहाज डार कृपाको बरदवान, भक्तके काज हेतु जगमें पठाइये ।। पूरे हैं गुरु दयाल क्षणही मों करें पार, सांचे मलाह आज ताहीको गाइये ।। १२ ।।

दीननके नाथ तुम दीनहूं पै दया करो, अधम उधारवेको जगतमें आये हो । पापीपरपंच बाकी लोभके विकार भरो, मोहीसे अधम काज काहे विसरायेहो ।। मेरी तो बन्धछोर हौं मै तव निहोर, ताहीके कान आज तोही मैं गाये हो । सांचे कबीर धीर दीननको हरो पीर, दीनबन्धु दीनानाथ ताहिते कहाये हो ।। १३ ।।

सवैया ।

ज्ञानकरे बहुध्यानधरे, पोथी जो पढै बहु अर्थ लगावे । योग करै वश काम करै, दश इन्द्रिन आपन

कारि लावे॥ भूत भविष्य कहे वर्तमानसो, तीरथ काटि कहीं फिरि आवे। सतगुरु शब्द प्रसंग विना, फिर जन्म अनेकन काल नचावे॥ १४ ॥

कुण्डलिया ।

अधम उधारन नामहो, अधमन करो उधार, दीनबन्धु दुख हरन हो, दीनन लेहु उबार॥ दीनन लेहु उबार, आपनी ओर निहारो। औगुण मम अपराध, बख्सि स्वामी चित धारो॥ ताते अर्जी मैं करौं, तुम गुरु आनन्द धाम। पतितनको जब तारिहो, पतितउधारण नाम॥ १५॥

सवैया ।

हौ बड भूप धरयो जगरूप, ताहि न चीन्हे मतिके मन्दा। कारण सूक्षम देह नहीं, पांचहु तीन पचीसके संदा॥ शब्द स्वरूपको रूप लखो अब, ताहिको ध्यान धरो निज अंदा। तजि कुल

आस चरन कर वास, सो नाम सुदर्शन काटे फन्दा ॥ १६ ॥

अक्षर वृक्षको मूल लखो, फिर ताहि सो उपजी सब शाखा। पंच धर्म शाख वह जान सरे, शाख रमैनी पत्रहिं भाखा॥ ताहिको पुष्प कहो अत्र योग सो, तत्व पदारथ फल महँ राखा । मुक्ति पदारथ है फल तासु, सो संत सनेही निशि दिन चाखा ॥ १७ ॥

अकह अलिप्त अकामी सोऽहं, जिव देखि दुखी जग आये हैं । कलिमल हरणं जनम न मरणं, परमानन्द कहाये हैं ।हो अविनाशी परम विलासी, दीननबन्ध छुडाये हैं । हंसन हितकारी कर्म प्रहारी, गुरु सुरति सनेही गाये हैं ॥ १८ ॥

होइ अनुग्रह जापर साहव, ताको नहीं व्यापे कछु शंका । काटे फन्द मिटे दुख द्वन्द, सो ऐसा है निज नाम निशंका ॥ देहि परवाना छाप सही,

वह चाहे भूप होइ कि रंका । कुलपति नामको ध्यान धरो, अब काल बली शिर ऊपर डंका १९॥

जाको ध्यान धरो निशि वासर, सबविधि काम सुधारे सोई । अरसठ तीरथको फल मान, चरण ताको महि जानहु लोई ॥ चारि पदारथको फल भोग, सो मन कर्म वचन जपे जो कोई । कमल नामको नाम जपो, - सो काल बली तहँ बैठे रोई ॥ २० ॥

हितके चित्तके उरमें जो धरे, निशि वासर तासु चरणकर वासा । तीनहु देवको छोडिय आश, करो निशिवासर भक्ति विलासा ॥ है बड जाल महाबल कालसो, ताफर है चौरासी फासा । अमोल नामको मोल नहिं, फिर राखो जासुके नामको आशा ॥ २१ ॥

हक्कहि साहबको न्याव जहाँ, सो निसि करहीं अपने मनमाँहीं । नामके भक्तधरे हन शत्रु सो,

काल वली मनहार उजाहीं ॥ देखत रूप भजे यम भूप, सो औरहि जीवकी कौन चलाहीं। हक्क नाम को हाँक परे नहिं, दृष्टि परे दुष्टनकी छाँहीं॥२२॥

जे देवनकी सेवकरे फिर, आवागमन रहित नहिं ताहीं। वेद पुराणको गम्य नहीं, अवशेष रहे निशि वासर जाहीं॥ तीरथ व्रत करे तप नेम, सो मुक्ति पदारथ तामें नाही। दश औतारनको गम्य नहीं, सोई फल जानो सन्तन माहीं॥ २३ ॥

कवित्त।

सच्चिदानन्द ब्रह्म निर्गुण स्वरूप आप, पुहुप दीपको निवास तजि प्रगटे भवजलमें। महा भव-सिंधु घोर कालको देखे जोर, जीवनको बन्धछोर लीन्हों उबार पलमें॥ दीन्हों सुख सिन्धुवास सकल हंसको निवास, षोडश रविको प्रकाश सुमन सेज सलमें। अविचल देही पुरुष हैं विदेही, ऐसे सुरति-के स्नेही वन्दिये पल पलमें॥ २४ ॥

सवैया ।

ज्ञान समूह प्रकाश विभाकर, शील क्षमीकी मूरति जेही । आनन्द धाम कृपानिधि हैं प्रभु हंसन ईस जपो अब तेही ॥ जीव परे भवकूप पकारत, आय धरी तेहि कारज देही । देत अभय पद दीननजान, सो नाम सुधासम सुरतिसनेही ॥ २९ ॥

ब्रह्म अखंड अलौकिक जागृत, जीव चराचर सेवहिं जेही । देखि दयानिधि जीवनको दुख आय धरी भवसागर देही ॥ जीवन काज किये बहुभांति दिये सुख सागर अविचल तेही । कालहिं जीति अक्षय पद दायक, नाम अखडित सुरतिसनेही२६

गुरु ध्यान समान न योग कछू, भवभंजन नाम जपो नर तेही ।। भक्ति विराग उभय फल दायक, देहि कृपा करि शब्द विदेही ।। विधि विष्णु महेश सुरेश न पावत, सो पद देत विलोकत जेही । काग

मराङ्क करे पलभीतर, अधम उधारन सुरति-
सनेही ॥ २७ ॥

शब्द स्वरूप लखो गुरु मूरति, अक्षय रूप
धरे जग देही । ब्रह्म अखंड रमे सब माहिं, लखे
कोइ सज्जन शब्द सनेही ॥ जीव पुकार सुनी
सत्तलोकमें, आयगये करुणाकर जेही । शब्द
लखाय किये अपने जीव, दुःख निवारन सुरति-
सनेही ॥ २८ ॥

गुरु मूरति अक्षरमो दरशे, निःअक्षर रूप सो
जानिये तेही । जो पद शंकर शेष न पावत, ध्या-
वत हैं, निशि वासर जेही ॥ जाहि सुदृष्टि विलो-
कत हैं प्रभु, देहिं अभय पद नाम विदेही । हंस
उवार किये भव पार, सो नाम उजागर सुरति
सनेही ॥ २९ ॥

और गुरू सब स्वारथके, ये रस परमारथ पंथ
सनेही । अक्षर रूप रमे सबही जग, है निःअक्षर

शब्द विदेही ॥ दे सत शब्द करें अपने, जिव दूरते काल निहारत जेही । चीन्हि ताहि गहो पद पंकज, नाम सनातन सुरतिसनेही ॥ ३० ॥

अष्टक ।

चरणारविन्दं सद्गुरुं कृपालं नामं कबीरं नमामि नमस्त्व । जग कारण कर्त्ता प्रोक्तं सुसत्यं गुरु धारं च जीवं तरती ॥ १ ॥

अव्ययमर्चितं गुणातीतं नित्यं वर्णाश्रम ग्राम आकृस्समाप्तं । मुक्ति गुरु यामस्थापनाय न महं कृतोक्त मुक्तामणि सो ॥ २ ॥

अजन्मा अरूपाणि बहु रूपाणि धारयेत ।
अव्यक्तो सर्व व्यक्तो वां सुदर्शनं नमामित्वं ॥ ३ ॥
विरक्त सर्व दुःखानां रक्त सर्वेषु दुस्पदा ।
आनन्दा परमानन्द कुलपत्यच नमामिहं ॥ ४ ॥
विषयालिप्त लिप्तां च सर्व लोक नमस्तुते ।
सर्व भूत मयं ब्रह्म प्रबोध गुरुं नमामि ॥ ५ ॥

केवलं आलयं राज्य विदेहं प्रोक्त देह कृतं।
कवलानाथ भयमीसं कवल नाम नमामिहं॥ ६ ॥
अपनिर्भयं प्राप्ते च आभयं षटदर्शनं रवि।
नौधा भक्तिमेकया ममोल नाम नमामिहं॥ ७ ॥
अक्षरातीत रहितोयं स्वतः सिद्धिषोडशो सुतः।
अण्डोयमेक सिखरांतं सुरतिस्नेही नमामिहं ॥ ८ ॥
गिरं जनोयं तेजस्य अण्डा पुरुषं परं सर्वं स्व-
प्रास रहितं। स्वयं स पुरुषं सद्गुरुं कबीरं नम-
स्कृतं हक्कनाम सुअमरः ॥ ९ ॥

अथ पाक नामाष्टकम्।

भो दयाल ! जगत पाल काल जाल खण्डप-
नम्। पाप ताप दहनहार दिव्य ज्ञान मंडनम् ॥
भवापार करणधार पाकनाम अंकजम्। चरण
शरण देहिमे नमामि पादपंकजम् ॥ १ ॥
सत्तः प्रकाश चिदाभास नामरूप अक्षकम्।
जगत ब्रह्म आत्मसर्व साक्षा आदि लक्षणम् ॥ दया

धीर युक्त योग शुद्ध नाम अंकजम् । चरण शरण देहिमे नमामि पादपंकजम् ॥ २ ॥

हंस भूप परम रूप भक्ति मुक्ति दायकम् । दया क्षमा रक्ष प्रभो सर्व सन्त नायकम् ॥ परीक्ष अक्ष निर्मलं विशुद्धनाम अंकजम् । चरण शरण देहि मे नमामि पाद पंकजम् ॥ ३ ॥

बिरह कलोल ब्रह्म गोल तत्त्वमसि छेदकम् । वेद विद्यातीत तत्त्व चतुस्थान भेदकम् ॥ स्वयमक्ष साधु पक्ष शुद्धनाम अंकजम् । चरण चरण देहि मे नमामि पाद पंकजम् ॥ ४ ॥

परख भानु सत्य ध्यान षटपुटी विनाशकम् । आदि अन्त मध्य नाम नेति भास भासकम् ॥ कृपा सिन्धु शील इन्दु शुद्ध नाम अंकजम् । चरण शरण देहिमे नमामि पादपंकजम् ॥ ५ ॥

विश्व चित्र तासु मित्र तत पवित्र शासनम् । शुचि पवित्र त्वं विचित्र सार शब्द भासनम् ॥

करुणामय कबीर योग शुद्धनाम अंकजम् । चरण
शरण देहि मे नमामि पाद पंकजम् ॥ ६ ॥

योग जीत भव अजीत न्याय नीति कारणम् ॥
रिद्धि निद्धि सिद्धि दाता बृहद हस्त धारणम् ॥
सुखाब्धि दीन पालकं विशुद्ध नाम अंकजम् ।
चरण शरण देहि मे नमामि पाद पंकजम् ॥ ७ ॥

बुद्धि अंध ज्ञान मन्द हीन छन्द स्पष्टकम् ॥
पूर्णदास भाषते सु पाकनाम अष्टकम् ॥ त्वम्
प्रसाद सुगम सर्व शुद्ध नाम अंकजम् । चरण
शरण देहि मे नमामि पादपंकजम् ॥ ८ ॥

अथ प्रगट नामाष्टकम् ।

हो कृदाल दीन पाल दुष्ट काल भंजनम् ।
संशया धृतकिंच दिव्यज्ञान मंजनम् ॥ प्रगट नाम
वंसहंस सद्य मोक्ष फन्दकम् । चरण शरण देहि
मे नमः पदार विन्दकम् ॥ १ ॥

कर्मभ्रम नाशकञ्च धर्मराय गञ्जनम् । सार शब्द भासकञ्च सन्त चित्त रंजनम् । अन्तकाल रक्षकं च सत्य पियूष सिन्धुकम् । चरण शरण देहि मे नमः पदारविंदकम् ॥ २ ॥

सर्व हंस नायकंचऐक्य भक्ति धारणम् । ज्ञान बुद्धि दायकं च सन्त निर्विकारकम् ॥ अङ्ग सुङ्ग कारकंच विघ्न निकन्दकम् । चरण शरण देहि मे नमामि पदारविन्दकम् ॥ ३ ॥

सत्यलोक राजितं च तेजपुञ्ज रूपनम् । गीत हंस सिर्जकंच अंश भाव नूपनम् ॥ सद्गुरु कबीर नाम सद्य मोक्ष कंदवम् । चरण शरण देहि मे नमामि पदारविन्दकम् ॥ ४ ॥

भृंग रूप भावनंच जीव बुद्धि नाशकम् । ज्ञान बुद्धि भासकं च हंसधी प्रकाशकम् ॥ बंध मुक्त पत्रदंच कर्म चक्र छिन्दकम् ॥ चरण शरण देहि मे नमामि पदारविन्दकम् ॥ ५ ॥

आपदा निवारणं च माया विलासनम् । विष काल मर्दनम् च सद्यमोक्षकन्दकम् ॥ योग युक्ति मङ्गलं च देह कष्ट नाशनम् । चरण शरण देहि मे नमामि पदारविन्दकम् ॥ ६ ॥

वदनं वास्तिमान् हत सरोज अन्तरम् । काय वाच मानसिक सर्वदा निरंतरम् । सत्य कवीर सत्य कवीर दुष्करं निकन्दकम्।चरण शरण देहि मे नमामि पदारविन्दकम् ॥ ७ ॥

बुद्धि नष्ट चित्त भ्रष्ट दुष्ट तुष्ट सुष्टकम् । भजन दास गीयते सु प्रगटनाम अष्टकम् ॥ त्वं प्रसाद कथ्यतेपिनौ गुणारविन्दकम् । चरण शरण देहि मे नमामि पदारविन्दकम् ॥ ८ ॥

अथ उग्रनामस्तुतिपंचकम् ।

जय उग्रनाम अकाम मंगल धाम नित्य निराम-यम् । भव श्रमित शुभ विश्राम अति अभिराम पद प्रद निर्भयम् ॥ टेक ॥

मोह माया मान दम्भ मदादि मत्सर दूषणम् ॥
रहित नाना राग परम विराग सहित विभूषणम् ।
॥ १ ॥ जय उ० ॥

सानुरोध पराध हरण प्रबोध मय कारण परम् ।
विपत द्वन्द स्वच्छन्द परमानन्द कन्दति निरभरम्
॥ २ ॥ जय उ० ॥

काल शेष खगेश भव दुपदेश भो करुणाकरम् ।
भव्य वर वर देश अखिल अशेष श्रेय मुदाव-
रम् ॥ ३ ॥ जय उ० ॥

भक्त कंज दिनेश ज्ञान धनेशक्लेश जगद्भवम् ।
समन सकल अहेतु प्रभु वृषकेतु सेतु भवार्णवम् ॥
॥ ४ ॥ जय उ० ॥

शम्भु यस्य पदारविन्द पराग संचित कर्मजम् ।
व्याधि निखिल प्रभूत अति अनुभूत पावन भेष-
: ॥ ५ ॥ जय उ० ॥

अथ कबीर चालीसा।

ॐ नमो आदि ब्रह्माय शब्दे स्वरूपं। नमो जीव जावद्मय विश्वरूपं॥ गहू शरण प्राणी जो सुख सिन्धु चहुरे। कबीर कबीर कबीर कहुरे॥ १॥

क रूप कर्त्ताय निर्ताय देखो। ब रूप विस्तार नहीं आन पेखो॥ र रूप रमताहि सब मांहि रहुरे। कबीर कबीर कबीर कहुरे॥ २॥

क कृष्ण रूपं स्वरूपं अरूपं। ब विष्णु धारी सबे देव भूपं॥ र रुद्र रमताहि दमाताहि गहुरे। कबीर कबीर कबीर कहुरे॥ ३॥

क कुल कुला जो नहीं आन कोई। ब बेल बेलो अकेली न दोई। र रार मेटो समेटो न बहुरे। कबीर कबीर कबीर कहुरे॥ ४॥

क काही कैवल्य कर्ताहि आपे। बा बीज विस्तार हरे त्रयतापे॥ र रोम रोमाहि नर ताहि गहुरे। कबीर कबीर कबीर कहुरे॥ ५॥

क काल मर्दन सो हर्दम जपोरे । व बीज सेठ रान तप ना तपोरे ॥ र राह निर्वाह गुरु वाह गहुरे । कबीर कबीर कबीर कहुरे ॥ ६ ॥

क काहि डरपे जो अरपे शिरको । बा बोल बोले सो गहुरे गुरुको । र राह यही सो देही न दहुरे । कबीर कबीर कबीर कहुरे ॥ ७ ॥

क कोउ तेरी सो महिमा पढेहैं । बा के रूपे सरूपे गढे है ॥ र सर्व रमताहि सब मांहि रहु कबीर कबीर कबीर कहुरे ॥ ८ ॥

जिहि पाइ इच्छाय सतलोक कीन्हा । उपजाय कंजाय तहँ बास लीन्हा ॥ बहु भांति सुख धाम तहँ रास रहुरे । कबीर कबीर कबीर कहुरे ॥ ९ ॥

तहां एक अंडायतेजस भयऊ । करि लोक न्यारा सो त्रयलोक दयऊ ॥ तिहिं आय जग जीव यम राह दहुरे । कबीर कबीर कबीर कहुरे ॥ १० ॥

जीव श्वास यम फांस करुणा उचारे । हे पुर्ष हे पुर्ष वाणी पुकारे ॥ सुनि श्रवण झनकार रुर कार बहुरे । कवीर कवीर कवीर कहुरे ॥ ११ ॥

नर रूप धरि भूप गुरु रूप धाये। जिमि दाढ बाघेसे सुरभी छुडाये ॥ निज भक्त यम जीव गज-ग्राह गहुरे । कवीर कवीर कवीर कहुरे ॥ १२ ॥

सत्य शब्दे विदारी विथाहै । युगन युगन जीवकी बरनी कथा है ॥ कलियुग जिवकाज :दुख आप सहुरे । कवीर कवीर कवीर कहुरे ॥ १३ ॥'

है ब्रह्म आपे सो लीला करी है । नौ तत्व तत्त्व पांचो न देही धारी है ॥ सुख दुख न्यारे हैं कह-वेमें अहुरे । कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे ॥१४॥

साह सिकन्दर सु अन्दरमें लेखा ॥ कैसा फ-कीरहै चहिये सो देखा ॥ कर बांध कर पग बाँध बोरे सु दुहुरे । कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे ॥ १५ ॥

टूटे है जंजीर वैठे हैं तीरा ॥ बोला सो शाह यह सांचा फकीरा ॥ फिर बोल बोले कि गज मस्त अहुरे । कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे ॥१६॥

मातङ्ग माते न जाते ढिगे हैं । लखि रूप सिंघे सो चिक्कार भगे हैं ॥ दे शाह अजमत स्वामी सुव-हुरे । कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे ॥ १७ ॥

देख्यो सब काम करता विजूका।भर तोप गोला सो रोपा विजूका ॥ जिमी देह गज तूल गोली न लहुरे । कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे ॥ १८ ॥

हे दीन वन्धू दया देख अन्दर । गति जौन जैसी सो नाचत वन्दर ॥ तिमि आप शाह सि-कन्दर जो चहुरे । कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे ॥ १९ ॥

फिर शाह बोला यह गोला न डरपैं । देखेंगे अनेक चलायाहै डरपै ॥ जल धार जिमि सार मझि वहुरे । कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे ॥२०॥

कहाँ कहौं और केती कहानी । तजिस्वामी ऐसो भुलानोरे प्रानी ॥ निष्काम निःक्रोध निर्लोभ वहुरे । कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे ॥ २१ ॥

हारा है शाह सो दैनेग पीरा । नाहीं फकीर है यह आप पीरा ॥ जाना सो नरनाह शर नाह गहुरे । कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे ॥ २२ ॥

खूने अनेके जो शाह न कीन्हा । जाना जी अपने सो चित्तमें न दीन्हा ॥ जिमी तातसुत करे अवगुन न गहुरे । कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे ॥ २३ ॥

डारे सो शिर पेच ऐंचे जो मूँछे । कालेत कालेत बातें जो पूछे ॥ हे स्वामी सव केर सव मांहि वहुरे । कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे ॥२४॥

फिर एक और सुनोरे गुनोरे । तजि स्वामी ऐसो न सीसे धुनोरे ॥ कही है पूरी आप काशीमें रहुरे । कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे ॥ २५ ॥

गोपाल पण्डा सो भटका पसायो । फुटयो है फटका सु चटका वुझाओ ॥ काहू न ताको सो यह भेद लहुरे । कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे २६

बोधे दोई दीन तहाँ सो कीन्ह ऐसा । समझाय दर्साय जिहि जौन जैसा ॥ तजिदेह दोउ ओर हथियार गहुरे । कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे २७

दोऊ ओर क्रोधा सो योद्धा वढै हैं । अपने जो अपने सो प्रणपर अडे हैं ॥ तख तास नियरान यह वान गहुरे । कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे ॥ २८ ॥

देखो उधारी वहां है वह नाही । केहि काज लडते सो मरते वृथाही ॥ तब आय दोउ दीन देखा न अहुरे । कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे २९

स्थूल घर फूलभधु न मारी।हे ब्रह्म हे पीर रटना पुकारी ॥ सुनी दीन बानी तेहि दर्श वहुरे।कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे ॥ ३० ॥

पुनि एक औरो सुनोरे सुनाऊँ। लखि स्वामी ऐसो सो दिन रैन गाऊँ॥ तत्व जीवा प्राण ऐसो गहुरे। कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे॥ ३१॥

सूखो हता एक लकडा पुरानो। हरिपाय जेहि चरण चर्णोदि जानो॥ गडो है सोआय अँगनाय बहुरे। कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे॥ ३२॥

जुडि, आय वह्न वेष दग देख लीजे॥ पानी सो छानी औ गुरु जान कीजे॥ साधू सो है सूर प्रणपूर गहुरे। कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे॥ ३३॥

न्यारे सु न्यारे ले चरना पखारे। जेहि भाँति जिहि रीति कर प्रीतिढारे॥ हरियान नाहीं सो उर दाह हहरे। कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे॥३४॥

दा जानि जन भीति प्रणपूर आये। उरदाह लागी सो क्षणमें वुझाये॥ ले चरण चर्णोद मन-मोद वहुरे। कव्वीर कव्वीर कव्वीर कहुरे॥३५॥

ढरथोहै कर पीटि परतीति आई। हरियान निर्जीव सरजीव भाई ॥ दोउ भाइ निर्द्वन्द शरण सो गहुरे। कब्बीर कबीर कब्बीर कहुरे ॥ ३६ ॥

सो टूट ना आयजी उक्त केरे। जर भक्ति अंकूर सा यमराज पेरे ॥ सो आप गुरु रूप निज-स्वरूप बहुरे।कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे॥३७॥

चरणा दई मृत्यु समरत्थ केरो । करुणाऽक्षयकी कोर फिरि आप हेरो ॥ हरिमान सो पान नर ताहि गहुरे । कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे॥३८॥

नर धाय पदपंकज मन मौज कीजे । यह चैन वह चैन सुख वास लीजे ॥ दोउ ओर कर पक्ष सो स्वक्ष गहुरे । कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ ३९ ॥

कहि ताहि सुखलाल सुख लाल वरने । मिटि-जात जगजात जन्माद मरने ॥ यह जान मन

मान शरना सु गहुरे । कब्बीर कब्बीर कब्बीर कहुरे ॥ ४० ॥

दोहा ।

चालिस छन्द प्रवन्ध ये, बांचें डरपे काल ।
साधन प्रेम वढावई, यमदूतनको साल ॥ १ ॥

इति कबीर चालीसा ॥

अथ कबीरपञ्चाशिकाप्रारम्भ ॥

तोटक छन्द ।

जय सत्य कवीर कृपाल घनं । दल दुष्ट हनं पय पुष्ट जनं ॥ योगजीत अतीत पुनीत प्रभु । बपु धारन कारनं तारन भू ॥ १ ॥

सर्त सुकृत सत्य स्वरूप सदा । जन ध्यावत पावत मुक्तिपदा ॥ मुक्तामनि ते जिव जो युक्ता । मृत्यु लोक न भव भुक्ता ॥ २ ॥

हमदीन दुखी किमि त्याग चहौं । करुणामय हो करुणामय हो॥ करुणा तन धारि करी करुणा । करुणामय धौं करुणा वरुणा ॥ ३ ॥

सुर सिद्ध बखानत खान दया । जिव देखि अनाथ सनाथ किया ॥ जेहि ज्वाल जला यम भक्ष करे । विनु देव दयाल को रक्ष करे ॥ ४॰॥

यम जालिम जीवन जेर कियो । सुधि लेंन दयानिधि देर कियो ॥ सुख लेश न केत क्लेश भरे । जगदीस परे जगदीस परे ॥ ५ ॥

जिव काल करालके ज्वाल दहे । तर ऊपर भूपर धाय गहे ॥ हम जानि दयाल जो काल भजे । गुण ग्राम प्रनाम सो नाम तजे ॥ ६ ॥

घटवाह मलाह सलाह कहो । फिरि कैलकी गैलकी सैल न हो ॥ वह सिंह समान शिकार करे । प्रिय पीव विना कहँ जीव तरे ॥ ७ ॥

हरिके हरि देहरि पार करो । सरकार बडे वर कार करो ॥ भय भंजन रंजन दासनको । खल काटत फाटत फासनको ॥ ८ ॥

भवसागर झागर काल वली । तहँ जीव की युक्ति न उक्ति चली ॥ नहिं एक उपाय बनाय बनी । करु काज गरीब निवाजगनी ॥ ९ ॥

प्रभु पेखतही जिव शीतल है । क्षणमें भव-सिन्धुको पार लहै ॥ करुणा दृग कोटिन काल हनै । खुर-सिन्धु कणा गिरि बिन्दु बनै ॥ १० ॥

मति धीर कबीर कबीर भजो । हित नाम प्रिया वित वाम तजो ॥ तपखान किरसान शिलादहके । जरते प्रभु मारगते वहके ॥ ११ ॥

तलफै तपतीख समीतलमें । बिनुनाथके नेह नहीं पलमें ॥ निज शिष्ट निवाज सुदृष्टि लखो । शिरपै समरत्थ जो हत्थ रखो ॥ १२ ॥

नर बाल विहाल निहाल मही । दुख द्वन्द दँवारि न देह वही ॥ मन भौं मद मोचन लोचन है । जन रक्षक भक्षक पोचनहै ॥ १३ ॥

सब लायक लायक हंसनके । जिव मोषक पोषक अंशनके ॥ सर्वोपर साहब शीवनके । तुम जीवन नाथ हो जीवनके ॥ १४ ॥

प्रभुके भ्रमते जमते बजरे । यहि तप्त शिला पर आनि जरे ॥ न पिया जपिता न पिया परखे । विधि वेद वेदनते हरखे ॥ १५ ॥

जीव काज चले शिरताज सभी । महराज भया सुख साज लभी ॥ भव भार हनो करतार धनी । धरम राय न पाय कषाय दुनी ॥ १६ ॥

करि नेह विदेह जो देह धृतम् । शब्दामृत जीवं भै कृत्तकृतम् ॥ मृत नायक सायक तीख हते । पद प्रीति प्रतीति सहीत गते ॥ १७ ॥

परमारथि भारथि नाथ सदा । गहते लहते भव पाथ हदा ॥ जन जाय समाय अमान पदा । शुभ ज्ञान कुरान नसान मदा ॥ १८ ॥

मुनि मानस हंस मुनीन्द्र मता । समता लह पाय पता रमता ॥ तव नाम सुधा वसुधा जो पिया । न क्षुधा युगही युग जीव जिया ॥ १९ ॥

दुखिया हित आय महामुखिया । लखि पावहि जीव भये सुखिया ॥ कहुँ और न दौर तो और परे । शरनी परनी करनी न खरे ॥ २० ॥

पद तीर कवीर शरीर जिते ॥ लह शाह भै ब्रह्म अकार तिते ॥ जग योनि जहान महान महा । गुरु देवको सेव न भेव लहा ॥ २१ ॥

कमलापति धौं कमलापति हो । पदकी रति कीरति कीरति हो ॥ मृगव्याध समाध अगाध गहे। कल्यान सिरान न ध्यान कहे ॥ २२ ॥

गुण गाय फणीगणराय निति । नहिं पावत पार अपार गति ॥ लवलीन प्रवीन नवीन जसे । कलि पंक कलंक निशंक नसे ॥ २३ ॥

विषया बन राय भुलाय परे । दुख दवन विनाकर कौन धरे । कह कौन संदेश अंदेश बडा । मग भूलि गई ठग आनि अडा ॥ २४ ॥

जिव शोककी ओकमें भूलि रहा । करता भरता भ्रम झूलि रहा ॥ तिहुँलोक विलोक लगी अगिनी। यह जामिनी है यमकी भगिनी ॥ २५ ॥

तकसूरको नूर जहूर हुआ । ममता रजनी दुख दूर हुआ ॥ सगरे पगरे रगरे बगरे । पशुज्ञान गहे डगरे डगरे ॥ २६ ॥

बक चाल सभी न मराल गती । बिन एकरती बनन एक मती ॥ जब गर्भमें अर्भक अर्ज करे । तिहि गाढदे साहब गाढि धरे ॥ २७ ॥

इति औरहि ढालको ख्याल खिला । बुद्धि खफत पर यहि तप्त शिला ॥ वह औघ अचेत सुषोपति सो । कह पाय पराग बनारसको॥२८॥

निज धामते राम पयाम लिया । जगती भगती पद-पाय लिया ॥ कितहो पलकी मनसा मलकी । अरु अन्ध अचेतकी भय टलकी ॥ २९ ॥

दृगदानि कि बानि बिहानि इते । मकरन्दके फन्दको जीव जिते ॥ मृत सृंगन बिंग बिहार करे । कर्म रेख विशेष न देखपरे ॥ ३० ॥

नहिं क्रोधित अन्धकी गन्ध मिले । जीव दंडक भंडक भीर हिले ॥ गुरु पीर कबीर उजागरहै । भज बोहित ओहित सागरहै ॥ ३१ ॥

जग बन्दन भर्म निकन्दन है । शरनी सत लोक की सन्दन है ॥ सतनाम सनेह सुधाम चढे । कलिमां कलिमां कलिमांह पढे ॥ ३२ ॥

गुण ग्राम निकाम कबीर कवी । यश गावत पावत कोटि छबी ॥ धुरधर्मध रा धर धार कहो । भवतारक पंथ प्रचारक हो ॥ ३३ ॥

नर पामर धामर बुद्धि विना । यम ज्योति पतंगके ढंग बना ॥ जग व्याधि रु आधि असाध करे । चरणाम्बुज चूरण चारु हरे ॥ ३४ ॥

भवतारण हेत निकेत कृपा । यम गाम लियो सुखधाम नृपा ॥ सुर भूप स्वरूप अनूप छिपा । रवि सोम जो कोटिक रोम दिपा ॥ ३५ ॥

रु गुप्त कियो धुरको वरनन । भव भौंर मया वन तौ शरनन ॥ हमरे उरके पुरवास करो । निजु दासनको अब दास करो ॥ ३६ ॥

बिन कन्तके भवजल जन्त घने । दुख द्वन्दक फन्दक फन्द फने ॥ जगकी बांह निवाहः कहे । भ्रम भोडरमें भेडर भीरवहे ॥ ३७ ॥

दनुजात बलात निपात भये । रणधीर वहीर गहीर गये ॥ जिहि जानत जाम सुधाम धरे । मुनिके मन मन्दिरमें विहरे ॥ ३८ ॥

मन मत्त मतंग गते यहि गौं। तुहि रावत होय महाउत जौं । चित चञ्चर वंचर वञ्चक है । सम सञ्ञ विरंच न रंचक है ॥ ३९ ॥

यम वंकट संकट जीव महा । दमको गमको रमको न रहा ॥ भव सेत अभै पद देत तुही । कलि कण्टक कोटिक कर्म दही ॥ ४० ॥

चढि सेत पपीलन दील तहां । लंघेदीन पयोनिधि पीन महा । न वज्रको हाड न वाड रहो । मन वाक शरीर कबीर कहो ॥ ४१ ॥

गुरु नेह नदी सन दोष जिन्हैं । सुख वास न आस है त्रास तिन्हैं ॥ तुम दीनन बन्धु न पीननके । नित चाहो दास अधीननके ॥ ४२ ॥

मदमान भला न हिये भर भौ । नर नागर सागर मौ गरभौ ॥ करि पाय फलाय करे कनिया । विपबीज़ अमी फलको लुनिया ॥ ४३ ॥

हरिमें हरिमें हमही बरषे । लहरी भव भक्ति हरी हरषे ॥ दुख दारिद वारिद ज्ञान घनं । निर्भयकारि भय समनं समनं ॥ ४४ ॥

जीव कालके जाल परे बपुरे । सतनाम निकाम सदा जपुरे ॥ गुरु भक्ति निनार किनार गहे । चतुरे लुतरे भवधार वहे ॥ ४५ ॥

भ्रम भूलते भूलते जात भगे । बुध वालन डालन पासलगे ॥ मन वाचक जापक हैं दरको । तुम छोड अछोड सभी घरको ॥ ४६ ॥

प्रभु नामको दान निदान चहौं । कोई भास रु वास विकासन हो ॥ तरनी वरनी तव नाम , जहाँ । गहिये लहिये विश्राम तहाँ ॥ ४७ ॥

रसना रस रास रसै रस सो । जस तो वस और सबै कस सो ॥ चढ नाम रथा गई बीत विथा । रसना रस न विन कीर्त्ति कथा ॥ ४८ ॥

पद पंकज प्यार जो छूटि गया । अरु सूत
सनेहको टूटि गया ॥ ठग ठाकुर आनिके जूटि-
गया । जगजीवनकी बुधि छूटिगया ॥ ४९ ॥

रहगीर मते वडी भीर भई । संतपंथ विहाय
पंथ लई ॥ गुरु भक्ति विना भव भूलि पडे । शर-
ागत पाहि कवीर हरे ॥ ५० ॥

दोहा ।

यह कवीरपंचाशिका, पढै सप्रीति परतीति ।
रम पुरुष पद पावई, काल कष्टको जीति ॥ १ ॥

कवीरभानुप्रकाशांतर्गता श्रीकवीर पंचाशिका
स्तुतिः समाप्ता ।
स्तुति रत्नाकर समाप्तमिदं
समाप्तोयं दशमो विश्रामः ।

सत्यनाम।

विनय रत्नाकर।

(कबीरोपासना पद्धति अन्तर्गत)

एकादशविश्राम।

—<o>—

अथ आरती प्रारम्भः।

आरती १

संझा आरती नाम तुम्हारी। अनहद धुनि गुरु ज्ञान विचारी॥ तत्व कर तेल दया कर दीप। ब्रह्म अग्नि मन पवन समीप॥ पांचों बाती निरमल बारी। सुरति चँवर लइ सनमुख ढारी॥ प्रेमके पुहुप धूप धर ध्याना। चित चन्दन घसि आगे आना॥ अविगत रूप अधर प्रकाशा। आरती गावे कबीर धर्मदासा॥ १॥

आरती २

ज्ञान आरती अमृत वानी। पूरन ब्रह्म लेहु पहि-
चानी ॥ त्रिदेवा मिलि ज्योति वखानी । निरंकारकी
अकथ कहानी ॥ यही आशा सबही मिलि ठानी।
भरमि भरमि मुये नर प्रानी ॥ दृष्टि विना
दुनिया बौरानी । साहेब छाडि यम हाथ बिकानी।
कहहि कबीर कोइ संत सुजाना। जिन जिन शब्द
हमारा माना ॥ २ ॥

आरती ३

कैसे मै आरति करों तुम्हारी। महामलिन गति
देह हमारी॥ मैलेसे उपज्यो संसारा। हौं छुतिया
गुन गाउँ तुम्हारा ॥ झरना झरे दशोदिशि द्वारो।
कैसे मैं आवों निकट तुम्हारो ॥ जब तुम देहु
अम्रकी देही। तव हम होइहौं नाम सनेही॥ मलया-
गिरिमें वसे भुजंगा। विष अमृत गो एके संगा॥

तिनुका तोरि देहु प्रवाना । तब हम पाएव पद निर-बाना । धनी धर्मदास कबीर बलगाजे । गुरु प्रताप आरती साजे ॥ ३ ॥

आरती ४

अखण्ड आरती खण्ड न होई । कालहि मारी रसातल खोई ॥ खण्डित पिंड इकइस ब्रह्मण्डा । खंडित नदी अठारह गण्डा ॥ खंडित रघुपति खंडित रावन । खंडित कृष्ण वीर बलि बामन ॥ खंडित धरती पवन अकाशा । खंडित चांद सूरज कैलासा ॥ खंडित जहँलगि सकल पसारा । खण्ड अखण्ड कबीर पुकारा ॥ ४ ॥

आरती ५

मंगल रूप आरती साजे । अभय निशान ज्ञान धुनि बाजे ॥ निसि बासर जहँ सुरज न चन्दा । परम पुरुष जहां करे अनन्दा ॥ अछे वृक्ष ताकी

अमर छाया। प्रेम प्रकास अमृत फल पाया॥ जरा मरनको संशय मेटो। सुरति संतापन सतगुरु मेटो॥ तन मन धन जिन्ह अरपन कीन्हा। परम पुरुष परमातम चीन्हा। कहे कबीर हिरम्बर होय। निरख नाम निज चीन्हे सोय॥ ५॥

आरती ६

आरती सत कबीर तुम्हारी।
दया करो जाऊं बलि हारी॥

पहिली आरती पुहुमी आये। काशी प्रगटे दास कहाये॥ दूसर आरती देवल थपायो। आसा रोपि समुद्र हटायो॥ तीसर आरती चरण जलढारे। हरिके पंडा जरत उबारे॥ चौथी आरती तुरतहि धाये। तोर जंजीर तीर ले आये॥ पाचे आरती बलख सिधाये। चौरासी सिद्धके बन्ध छुडाये॥ छठई आरती अबिगती धारे।

मुरदासो जिन्दा करडारे ॥ सतयें आरती पीर कहाये । मगहर अमी नदी बहाये ॥ आठें आरती मंडल सिधाये । जन ज्ञानीको संशय मिटाये ॥ कहँ लगि कहौं बरनि नहिं जाय । धर्म दास आरती सचपाय ॥ ६ ॥

आरती ७

आरती कीजे बन्दीछोर समरत्थकी ।
चरन शरन सतनाम पुरुषकी ॥

आरती कर पुहमी पग धारे । सतयुगमें सत-नाम पुकारे ॥ आरती कर मुख मंगल गाये । त्रेता नाम मुनींद्र धराये ॥ कर आरती जग पंथ चलाये । द्वापरमें करुनामय कहलाये ॥ आरती युग २ बांधे आशा । कलयुग केवल नाम प्रकाशा ॥ चारों युग धरे प्रगट शरीरा । आरती गावें बंदीछोर कबीरा ॥ ७ ॥

आरती ८

आरती करहिं धनि धर्मदासा ।
पांच तत्व मुख भेद प्रकाशा ॥

प्रथमहि वायु तेज है पानी । रहत आकास निरंतर जानी ॥ गगन वायु गरजे असमाना । निजघर निती ध्वजा फहराना ॥ कोट ब्रह्म जहाँ कथे पुराना । कोट रुद्र जहाँ धरहीं ध्याना ॥ कोट विष्णु विनवे कर जोरी । औरहु देवते तीस करोरी ॥ शेष सहसमुख निशि दिन गावे । स्तुति करे पार नहिं पावे ॥ जो गुरु मिले तो भेद बतावे । पंच तत्व मुख भेद लखावे ॥ कहै कबीर हंसा पतिभाये । धर्म्मदास आरती सचुपाये ॥ ८ ॥

आरती ९

ऐसी आरती देउँ लखाई ।
निरखत अधर ज्योति फैलाई ॥

गहु निजाक्षर गहु निज डोरी । धरम रायसो तिनुका तोरी ।। जुग बांधो निरखौ टकसारा । जासे उतरो भवजल पारा ॥ फोट जनमको कर्म कटाये । चौदह काल जीत घर आये ॥ हीरा कोटि होय परकाशा । विना सुगन्ध पुहुपकी वासा । चन्द्र लगन गहि करो प्रकाशा । चौंदह यम माने त्रासा ॥ धरती धर्मनि उदित अकाशा । जापर सूरज करे प्रकाशा ॥ कहै कबीर सुनो धर्म्म-दासा । जम जालिम माने त्रासा ॥

आरती १०

आरति नामःनिरन्तर भावे ।
तेतीसो मिलि मंगल गावे ॥

चितकर थार ज्योति जीव गाजे । शब्द अ-नाहद झालर बाजे ॥ घटहीमें यंत्र बजावही बाजा । सत गुरु मिले भय सब भाजा ॥ झिन करताल

पखावज बाजे । श्वेत सिंगासन छत्र विराजे ॥ कर सनमान जीव भये आगे । (साहेब) कबीर गुरुके चरननलागे ॥

आरती ११

आरति सतनाम की कीजै ।
जीवन जनम सुफलि कर लीजै ॥

अम्रकी थाल अनूपम वाती । ज्योति प्रकाश वरे दिन राती ॥ मुरली ध्वनि अनूपम वाजे । शब्द अनाहद धुन तहाँ गाजे ॥ त्रिकुटी संगम झलके हीरा । चरन कमल चित राखु शरीरा ॥ सत सुकृत आरति चितदीजे । तन मन धनहिं निछा- वरि कीजे ॥

आरती १२

जाधर आरति दास करत है ।
जन्तम ज़नमको पाप हरत हैं ॥

कदलीदल पहुपनके द्वारा । सत सुकृत जा घर पग धारा ॥ परिमल अग्र गुलाल सुवासा । जा घर हंस करे सुखबासा ॥ अनहद ताल पखावज बाजे । सप्त सिंघासन छत्र विराजे ॥ नाम एकोतर सुमिरे जवही।सतगुरु बेठ सिंहासनतवही । तत्वमता नरियरप्रवाना।सत गुरु कृपा होथ निर्बाना॥ नरियर मोरत बांस उडाई ॥ पल एक साहेबविलमें आई ॥ सतगुरु दया प्रगट जब होई। पाय प्रसाद महाफल सोई ॥ महा प्रसाद तत्व विधि पावे ।.कहैं कबीर सतलोक सिधावे ॥

आरती १३

मंगलरूप आरति होई ।
शब्द सुरति चितराखु समोई ॥

दीप अमोल अगम उजियारा । संत पुरुषकीन्हो विस्तारा ॥ हंस हिरम्बर शब्द समाई । वृक्ष गुरुम्बर

बैठक पाई ॥ शीतल नीर सुरति भरलावै । हंस सोहंगम चौर ढुरावै ॥ मणि माणिक हंसनकी पांती। शब्द स्वरूप सुरतिकी क्रांती ॥ हंस सुजन जन आज्ञाकारी । हंसन काज देह निज धारी॥ मन बच्च कर्म जो आरति साजे । कहै कबीर सतलोक विराजे ॥

आरती १४

आरति सतगुरु साहेब कबीर बन्दी छोरकी । करत किलोल हंस पति आगर आनन्द बिमल विनोदकी ॥ त्रिगुण तेल पंच मुख बाती मानिक ज्योति अपार।हीरन धार संजोय सकल विधि पूरन नाम अधार ॥ संगति सकल सुकृत भये ठाढे कहत संदेश अपार । जाकी सुरति भई तन व्याकुल अति आतुर दीदार ॥ बाजत ताल मृदंग झालरी वीना शब्द रसाल । धुधुक धुधुक जहां तुरही बाजे गरजत शब्द अपार ॥ पूरण पुरुष सिंहासन राजे बहु

शोभा स्थीर । धर्म्मदास आरति कर जोरे गावहिं साहब कबीर ॥

आरती १५

संझा आरती कीजे गुरु सेवा ।
संपुट खोलि मिले गुरु देवा ॥

तेज पुंजके ज्योती उजियारा । घंट माल बाजे अधिकारा ॥ अनहद शब्द अखंडित होई । अगर वासमें रहे समोई ॥ सुकृत अंस पुरुषको धावे । सतगुरु चिह्न चरन चितलावे ॥ मन वच कर्म जो आरती गावे । कहैं कबीर सतलोक सिधावे ॥

आरती १६

संझा आरति सुकृत कीना । हंस उबार आपन कर लीन्हा ॥ गगन मंडल बिच फूल एक फूला । नर भये डार ऊपर भये मूला ॥ गगन मंडल बीच आरति साजे । सोहं हंसा आन विराजे ॥ तत निह

तत्वमें जाइ समाने । देखहु द्वीप अधर स्थाने ॥ कहैं कबीर सुनु साधू भाई । अजर अमर घर रहो समाई ॥

आरती १७

संझा आरति करो विचारी ।
काल दूत यम रहे झकमारी ॥

खुल गई सुषमनि कूँची तारा । अनहद शब्द उठे झनकारा ॥ सुरति निरति दोउ उलटि समावे । मकरतार जहँ डोर लगावे ॥ उन मनि शब्द अगम घर होई । अचाह कमलमें रहे समोई ॥ निगसे सित कमल होय प्रकासा । आरती गावे कबीर धर्मदासा ॥

आरती १८

संझा आरति सुकृत संजोई ।
चरन कमल चित राख समोई ॥

तिरगुन तेल भरो दुई वाती । ज्योति प्रकाश धरे दिन राती ॥ शून्य शिखर पर झालर वाजे ।

महा पुरुष घर राज विराजे ॥ शब्द सरूपी आप विराजे । दर्शन होय सकल भ्रम भाजे ॥ प्रेमप्रीतिके सेवा लावे । गुरु गम होय परम पद पावे ॥ सुख आनन्द है आरति गावे ! कहै कबीर सतलोक सिधावे ॥

आरती १९

जय जय सत्य कबीर ।

सतनाम सत सुकृत सतरत हत कामी । विगतकलेश सत् धामी त्रिभुवन पति स्वामी ॥ टेक ॥ जयति जयति कबीरं नाशक भव भीरम् । धार्यो मनुज शरीरं शिशुवर शर तीरम् ॥ जय ॥ कमल पत्र पर शोभित शोभाजित कैसे । निलाचलपर राजित मुक्ता मणि जैसे ॥ जय ॥ परम मनोहर रूपम् पर मुदित सुखरासी ॥ अति अभिनव अविनाशी काशीपुर वासी ॥ जय ॥ हंस-

उवारन कारण प्रगटे तन धारी॥ परख रूप बिहारी अविचल अविकारी ॥ जय ॥ साहब कबीरकी आरति अगणित अघहारी । धर्मदास बलिहारी मुद मंगल कारी ॥ जय ॥

आरती २०

जय जय श्रीगुरुदेव ।

पारख रूप कृपालं, मुद मय त्रय कालं। मानस साधु मरालं, नाशक भव जालं ॥ १ ॥ टेक ॥ कुन्द इन्दु वर सुन्दर, सन्तन हितकारी । शांताकार शरीरम्, श्वेताम्बर धारी ॥ जय जय श्रीगुरुदेव ॥ २ ॥

श्वेतमुकुट चक्रांकित, मस्तकपर सोहे । शुभ्र तिलक युत भृकुटि, लखि मुनि मन मोहे ॥ जय जय श्रीगुरुदेव ॥ ३ ॥

हीरा मणि मुक्तादिक, भूषित उरदेशं । पदमासन सिंहासन, स्थित मंगलवेशं ॥ जय जय श्रीगुरुदेव ॥ ४ ॥

तरुण अरुण कञ्जांघ्री, जनमन वशकारी । तम अज्ञान प्रहारी, नखदुति अति भारी ॥ जय जय श्रीगुरुदेव ॥ ५ ॥

सत्यकबीरकी आरति, जो कोई गावे । भक्ति पदारथ पावे, भौमें नहिं आवे ॥ जय जय श्रीगुरुदेव ॥ ६ ॥

आरती २१

संझा आरती कीजे सेवा । संपुट खोलि मिले गुरु देवा ॥ १ ॥ तेज पुञ्जकी ज्योति उजियारी । घंटा ताल बजे झंकारी ॥ २ ॥ अनहद नाद अखंडित होई । अग्र वासमें हंस समोई ॥ ३ ॥ शब्द स्वरूपी आप विराजे । दर्शन मुक्ति सकल भ्रम भाजे ॥ ४ ॥ सुकृत हंस अगमको धावे । सतगुरु सेइ चरण चितलावे ॥५॥ मन वच कर्म जो आरति गावे । कहहिं कबीर सत लोक सिधावे ॥ ६ ॥

आरती २२

आरति निज नाम तुम्हारी। अविगति अगम अलेख मुरारी ॥ १ ॥ पहली आरति पियाजीको पाये। रोम रोममें अलख लखाये॥ २॥ दूसरी आरति दुतिया नहीं कोई। जहाँ देखौ तहाँ हरि हरि होई ॥ ॥ ३ ॥ तिसरी आरती त्रिगुण नाई। चौथे पदमें रहे समाई ॥ ४ ॥ चौथी आरती चहुँ दिशि भरपूर। गगन मंदिल बाजे अनहद तूर ॥ ५ ॥ पँचये आरति पूरन प्यार। कहँहि कबीर साहेब सबसो न्यार ॥ ६ ॥

आरती २३

संझा आरति सुमरण सोई। सुमिरण करत महा फल होई ॥ १ ॥ पहिली आरती प्रेम प्रकाशा कर्म भर्म सब कीन्ह विनाशा॥ २ ॥ दूसरी आरति दिलहीमें देवा। योग युक्तिसे करलें सेवा ॥ ३ ॥

तीसरि आरति त्रिभुवन सूझैं । गुरुगम ज्ञान अगोचर बूझे ॥ ४ ॥ चौथी आरति चहुँ युग पूजा । गुरु सम देव और नहिं दूजा ॥ ५ ॥ पचयें आरति पद निरवाना । कहहिं कबीर हंसा लोक समाना ॥ ६ ॥

आरती २४

आरति परम पुरुष निजदेवा । अनन्त कोटि । जहां लावहिं सेवा ॥ १ ॥ ओंकार घंटा धुनि बाजे । सतगुण विष्णु आरती साजे ॥ २ ॥ शेष महीकर लीन्हों भारा । सूर असंखन ज्योति अपारा ॥ ३ ॥ शिव सनकादिक मुनि ऋषि सारे । अस्तुति ब्रह्मा बेद उचारै ॥ ४ ॥ ध्रुव प्रहलाद चवर लिये ढारे । धूप दीप गणपति विस्तारे ॥ ५ ॥ वरुण इन्द्र पुहु पनके माला । नाना रूप अनंत विशाला ॥ ६ ॥ व्यास वशिष्ठ कपिल सत धारी । विविधि विधान सबसाज सँवारी ॥ ७ ॥ शुकदेव नारद वेनु बजावैं । साहेब कबीर आरति गावै ॥ ८ ॥

आरती २८

ऐसी आरति घुरै निसाना । सुनहु चितदैसन्त सुजाना ॥ १ ॥ जिह्वा वचन झूठ मति भाखो।सत्य शव्दमें चितदे राखो ॥२ ॥ परधन त्यागो और परनारी । शव्द अनाहद लेहु विचारी ॥ ३ ॥ काम क्रोध छांडो यह लक्षण । हंसदशाधरि होहु सुलक्षण ॥ ४ ॥नतमनसे परचे करु भाई । बिन परचें यम हाथ विकाई ॥ ५ ॥ छाडहु दूर दुरकेर वसेरा । उलटा मिले सो हंस है मेरा ॥ ६ ॥ पक्ष वंप तजो चतुराई। सतसुकृत तब होहिं सहाई ॥ ७ ॥आशा तृष्णा तजहु विकारा । सो ज्ञानी कहिय तत्त्व सारा ॥ ८ ॥ संत विवेकी शीतल अंगा । अगर वास जैसे चन्दन संगा ॥ ९ ॥ प्रेम प्रकाश भक्ति लौलीना । निर्मल कवहुँ न हीरा मलीना ॥ १० ॥ निर्मल सोई जाके संशय नाहीं ।

आपामध्ये आप समाही ॥ ११ ॥ कहहिं कबीरसंतन सुखदाई । अजर अमर स्थिर वर पाई ॥ १२ ॥

आरती २६

ऐसी आरती गुरुहि लखाई । निरखत शब्द सुरति ठहराई ॥ १ ॥ ऐसी आरती आत्म पोर । आगे पला न पकडे चोर ॥ २ ॥ गहो शब्द निः- अक्षर जोडी । धर्म्मरायसे तिनका तोडी ॥ ३ ॥ तन धरती चितलग्यो अकासा । विना पुहुप सुगंध निवासा ॥ ४ ॥ उलटि अगोचर अमीरस चाखे । दरिया पार सुरति लै राखे ॥ ५ ॥ अनन्त जन्मकी उरझ मिटावे । चौदहकाल जीति घर आवे ॥ ६ ॥ कहहिं कबीर भाग नर तेरा । सतगुरु किये अमर पुर डेरा ॥ ७ ॥

आरती २७

कैसे मैं आरति करौं तुम्हारी । महा मलिन साहब देह हमारी ॥ १ ॥ छूतहिसे उपजे संसारा । मैं

छुतिभा गुनगांव तुम्हारा ॥ २ ॥ झरना झरे दशो दिशि द्वारा । कैसे मैं आऊं साहव निकट तुम्हारा ॥ ३ ॥ जो प्रभु देह अग्रकी देही । तब हम पायव साहेव नाम स्नेही ॥ ४ ॥ मलयागिरिपर बसे भुअंगा । विप अमृत रहे एकै संग॥ ५ ॥ तिनुका तोडि दियो प्रवाना । तब पाये साहेब पद निर्वाना ॥ ॥ ६ ॥ धनि धर्मदास कवीर वल गाजे । गुरू प्रताप आरती साजे ॥ ७ ॥

आरती २८

आरति सतगुरु करो तुम्हारी । कलह कलन हरहु हमारी ॥ १ ॥ पहिले पुरुप पीछे भौ नारी । तेहि पाछे तिहुंलोक सवारी ॥ २ ॥ जो नारी सो अंग छुवावे । सो चौरासीमें भमांवे ॥ ३ ॥ जो नारी सो न्यारा रहैं । ज्ञान ध्यान योग सव दहैं ॥ ४ ॥ साहेव कवीर कहे समुझाई। आपन अपनि निवरहु भाई ॥ ५ ॥

आरती २९

सिरपर राखिय सोई परमगुरुदेशा । सुमिरन भजन आरती पूजा सन्मुख करले सेवा ॥ १ ॥भव नदिया विन नावरी, गुरु अधर उतारे पार ।तिनसे भी ऊपर लेराखे, घटहीमें निज सार ॥ २ ॥मान सरोवर मंजन करिले, त्रिबेनीके घाट ।अनहद धुनि सुनि पांचो मोहे, खुलिगै ज्ञान कपाट ॥३ ॥अजपा जाप जपे बिनु जिभ्या, मूल मंत्र औराधि । स्थिर ध्यान दृढ आसन, लागे सहज समाधि ॥ ४ ॥ चांद सूर निसि वासर नाहीं, नहि तहां विद्यावेद । साहेब कबीर मिले सुखसागर, बिरलापावे भेद॥५॥

आरती ३०

आरति कीजे आतम पूजा।प्राण पुरुष सो अवर न दूजा ॥ १ ॥ ज्ञान प्रकाश दीपकर उजियारा । घट घट देखो प्रान पियारा ॥२॥ भाव भक्ति अवर

न भेवा। दया स्वरूपी करिले सेवा।।३।।सत संगति मिलि शब्द विराजे। धोखा द्वंद मर्म सब भाजे ।। ४ ।। काया नगरी थिर होय भाई । आनन्द रूप सकल सुखदाई ।। ५ ।। शून्य ध्यान सबके मनमाना। तुम वैठो आत्मऽस्थाना ।। ६ ।। शब्द सुरतिले हृदय वसाओ।कपट क्रोधको दूर वहाओ।। ।। ७ ।। कहहि कवीर जिन रहनि सम्हारी । सद आनद रहते नर नारी ।। ८ ।।

आरती ३१

सत स्वरूपकी आरति कीजे। साहव चीन्हि चरण चितदीजे।। १ ।। चिन्हों चिन्हों मन चित-लाई।विन चिन्हे कह जाओ भाई ।। २ ।। जिन्ह चिन्ह तिन निर्मल अंगा।विन चिन्है ते भये पतंगा।। ।। ३ ।। जव लग साहेव सो नहिं भेंटा। तवलग भाव भक्ति सव झूठा ।। ४ ।। शन्य सेज आरति

करई । विन कन्त वथा पूरी परई ॥ ५ ॥ भूपण पहिरौ रूपकी रांसी । फूलन सेज महलमें प्यासी॥ ॥ ६ ॥ आरति लिये कन्तको जागे । पति विनु प्रेम कहो केहि लागे ॥ ७ ॥ केतिक पंडित मुनि जनयोगी । केतिक नागे भक्त वियोगी ॥८॥ सूने २वहुत जमाती। विन दुलहेकी कवन वराती ॥९॥ खोजो गगन शून्य अखंडा । सात द्वीप पृथ्वी नव खंडा ॥ १० ॥ गृह माया तजि भये दिवाना।आप अपनपौ मर्म न जाना ॥११॥ जिनके दूख नाशिरा नाहीं । आपामध्ये आपहिं आहीं ॥ १२ ॥ चेत चेत संशय कर दूरी ।वटही माहिं संजीवन मूरी ॥ ॥ १३ ॥ साचे सतगुरुकी वलिहारी । जिन एह कुंजी कुलफ उघारी ॥ १४ ॥ नख सिखंत पूरण भरपूरी । ते साहवको कहिये दूरी ॥१५॥ निरखि२ अमृतरस पीजे। तन मन शीश सब अर्पण कीजे॥ ॥ १६ ॥ दिलदरियामें हिरामणी । काया कवीर

बोलता धनी॥ १७ ॥ लौकी बाती पवनसे वारी। दीपक ज्ञान शब्द उजियारी ॥ १८ ॥ कहहिं कबीर यह ख्याल हमारी । बिनु समुझन हम सबते न्यारी ॥ १९ ॥

आरती ३२

आरति कीजै अन्न ब्रह्मकी । सकल कला सुख प्रान पतिकी॥ १ ॥ धनि २ अन्न धनि २ पानी। अन्नकी भक्ति नारायणठानी ॥२॥ अन्न भयो गिर-धरही ध्यान । अन्नमें बसे सबहिके प्राण॥ ३॥ अन्न अहेरी पुरवे जाला । अनहिं जिआवे अन्नहिं काला॥ ॥ ४ ॥ अन्नहि माया अन्नहि गावे।अन्न विना मुख बात न आवे ॥५॥ अन्नकी भक्ति ले कीजै कामा । कहत कबीर तब रीझे आत्मरामा ॥ ६ ॥

आरती ३३

आरति अन्न देव तुम्हारी । जाते काया पले हमारी ॥ १ ॥ जलकी उत्पति यह संसारी ।

भोजन करे सकल नर नारी ॥ २ ॥ ब्रह्मा विष्णु और महादेवा । यह सब करे अन्नकी सेवा॥ ३ ॥ राजा प्रजा और मठधारी । ये सब आशा जिये तुम्हारी ॥ ४ ॥ पीर औलिया अजमन धारी । सुर नर मुनि सब अन्न अहारी ॥ ५ ॥ अन्न बनावे अन्न भुलावे । अन्न बिना मुख बात न आवे ॥ ६ ॥ अन्न अहारी पूर्व जियाला । अन्न जिआवे अन्नहीं काला ॥ ७ ॥ जहां जहां लागी अन्नकी ढेरी । सुर नर मुनि सब बैठे घेरी ॥ ८ ॥ दयाकी दीप भावकी बाती । सब अन्नलो आरति साजी ॥ ९ ॥ अन्न आरति आतम पूजा । कहहिं कबीर याते देव न दूजा ॥ १० ॥

साखी ।

अन्न नाम निज मूल है, सोई हमारा कीन्ह ॥
एक अन्नको बिछूरे, कोइ काहु नहिं चीन्ह ॥ १ ॥

आरती रत्नाकर समाप्त ।

एकादश विश्राम अन्तर्गत—

विनय रत्नावली ।

दोहा ।

सत्य कबीर कृपायतन, तन धरि जिवके काज। मोहि सम वायस मलिन भव, तव पद नलिन जहाज ॥ १ ॥ भक्ति गरीबी दीजिये, नाथ कीजिये नेह । और दौर मन चौर भय, हौस रही यक एह ॥ २ ॥ तुम विन जीव विलकत फिरे, खिलकत भई बिहाल। चिलकत प्रभु जग यम मजे, ढिलकत बन्धन माल ॥ ३ ॥

सवैया ।

जगमें बहु सूर सती जपिया, तपिया सो पिया पद पावत नीके। हमतो सबही विधि हीन महा, शुभ धर्म कहा गुण ज्ञान न फीके॥ नहीं उपाय सहाय करो यक, आश किये करुणामयजीके।

कछु जोर नहीं दगकोर लखो, दलिहो दुविधा चलिहो गुरुलीके ॥ १ ॥

मोहिसो नहिं हीन मलीन कहूँ, गुरु धर्म न जो शुभ कर्महिं जानी । दम संयम नेम न क्षेम क्रिया, भव भोग प्रिया नहिं योग निशानी ॥ पति राखिलियो पति राखिलियो, जगमें मम लाज इलाज लहानी । अब किंकर काल दयाल मिले, निज किंकरको महि किंकर मानी ॥ २ ॥

कोइ मागत मुक्ति है युक्ति कोई, कोई चाहत है युगही युग जीजे । कोइ देवसे स्वर्गकी टेवधरे, उधरा धन धान्य धरा धरि लीजे ॥तव दासन आस वही सवही, पदही सदही लदही रति कीजे । जेहि चाह न अन्य है धन्य वही, गुरु भक्ति अनन्य दया कर दीजै ॥ ३ ॥

सुख साज घनो गज वाजि घनो, सब शोक समाज घना जिवकेरो । धन द्रव्य ले नर्कमें गर्ककरे,

कुल रूप सुजाति कुटुम्ब बडेरो ॥ वर विद्या जहां लगि चातुरता, ज्योंहिं ज्यों जीवमें होय घनेरो। तेवहिं त्यों भक्तिसे दूर करे, मद पूर कहे विषया वन घेरो ॥ ४ ॥

सुख स्वर्गलहो अपवर्गलहो ऋधि, सिद्धि समृद्धि जितेजग मांही। जप योग रुयुक्ति औ उक्ति सभी; पद इन्द्र उपेन्द्र जहां लगि आही ॥ जेहि जीव मदे वर वेद वदे, अभिमान लहे भ्रमकी सबछांही। धन्य धन्य सोई पद लागु जो, गुरु भक्ति समान कहूँ कछु नाहीं ॥ ५ ॥

कर लेकर काह मिले प्रभुसे, कर भेंट कहा करदाम न कोई। जहँ द्वार तपोधनके धनिका, दवार तुम्हार रहे द्रग जोई ॥ जिमि हंसनमें बकुला अकुला, देहि देखत मैं अपनो मुख जोई। विनती हमरी बुढियादपरी, करुणा कर नाथ कबूलहु होई ॥ ६ ॥

नहिं सायर हौं कुलकायर हौं परि, पाय रहो नित नाथ भरोसे । कहुँ मोसम तुच्छ न और कोई, गुन ज्ञान न छूछ बने प्रभु पोसे ॥ करजोरि विनय प्रभु मोर सुनी, जन राखहु पायन पंकज गोसे । यक पूत कपूत प्रसूत प्रसू, जठरा जठरा भरको तजि तोसे ॥ ७ ॥

यमदूत कपूत बडे रिसिहा, खिसिहा वसिके कसि लीनेहु दण्डी । घिघियात दया कसिबात जिन्हे, अभिको वधिको विधि कूटत मुण्डी ॥ बल वाह न साहस आतुरता, सब चातुरता तहवाँ भइ भुंडी । कोइ यार नहीं हथियार नहीं, यक देह रही विनु शस्त्रके लुण्डी ॥ ८ ॥

नहिं लेश दया हृदया तनिको, जब छेदतहै यम बांधि गटैया । इतही उत हेरके टेरसवै, कहु मोर नहीं चहुँओर उपैया ॥ परिवार सगे न गोहार लगे,

तजि मौन भगे दुख कौन घटैया। सुनि आरत बैन पुकारत धाय, सहायक रामहै बन्धि कटैया॥९

भवपाट महा अतिपीन जहाँ किमिदीन पपीलहिं पार करीजे। बल भंग मतंग भयो जिहिंमें, गुरु संगविना तेहिमाँह मरीजे॥ कह मुक्ति कोई जग युक्ति कोई, नहिं नाथ जो साथ तो पाथमें छीजे। भवश्वेत अभयपद देत तुही, प्रभु आस यही कर दास गहीजे॥ १०॥

भव सिन्धु अगाह न थाह कहूँ, मम नावतरी यक नाथ निहोरे। झर झोर झकोर न ठौर कहूँ, भल भायचरी यक नाथ निहोरे॥ मद मोह तरंग कुरंग रहे, वड भाग भरी यक नाथ निहोरे। महि खेस चले मण नेन गहे, कर धाय धरी यक नाथ निहोरे॥ ११॥

जेहि सिन्धु में पौन प्रचंडचरे, पलमें शत खंड करे तृणतूरी। खगराजहुके बलको दलजो, हमरो

वन थाहन पाहन पूरी ॥ हम धूल थराजहँ सूल नरा, दुर्गम्य दुकूल परा अति दूरी । शरणागतहूँ शरणागतहूँ, शरणागत नाथ हरो भय भूरी ॥ १२ ॥

समरत्थने हत्थ गहीर गही, जल रत्थ मेरी गुरु सत्यतरीहैं । समवाय वहाय सहाय करी, त्रलपापहरी थल धाय धरीहै ॥ मम पात टुटी गुणसो न जुटी, जेहि कोट दरार करार करी है । बिनु सत्यकबीरको पीर हरे, भवभौरभयावन भीर परीहै ॥ १३ ॥

कलिकाल विहाल कियो जिवको, पिवको पद सो केहि भांति सो पावे । जहँ जाप नहीं जहँ ताप नहीं, जिव पाप महीं दिन रैन गमावे ॥ अति बुद्धि मलीन जो लीन विषय, नहिं शुद्ध सतोगुण एकहु आवे । यमफन्दपरे नहिं द्वन्दटरै, उबरे जब सत्य कबीर बचावे ॥ १४ ॥

अमरावति नग्र बसो जेहि में, तेहिदर चार सुधार बनाये ।. वैराग्य विवेकहु ज्ञान गनाय, विचार

सो चार गुरू बनि आवे ॥ तेहि मध्य सिंहासन आसन तव, जगे ज्योति सोहंगम चौर ढुराये । सोइ द्वार ते जाय सो पाय तुम्हे, दुतिया बुधिसे पुनि यों कहि गाये ॥ १५ ॥

पद पादुक और पद त्रान तेरो, पद धूल पदामृत चार विचारे । पद पादुक ते मुक भर्म सबै, पदकी पनही धनही जिवतारे ॥ पद धूल हरे तिहुँ शूलनको, चरणामृत कर्महि धोय पँवारे । गुरुचारहु जक्त उवार लियो, यम जीतन नाथ प्रताप तुम्हारे ॥ १६ ॥

गुण सिन्धु यथा तुम आगर हौ, तिमि औगुण सागर मो सम नाहीं । दोउ मेल मिले यम जेल ढिले, अस खेल खिले करुणामय वाही ॥ कण तुच्छ मिला मण अम्मर जो, तब रेणु हिरम्वंर वेणु कहाहीं । विपगादि समीर शरीरन छै, भव तीर लगे नहिं भावहिं जाहीं ॥ १७ ॥

दिल देवल देव दया दरिया, थरिया भरि संतत नैननिहारी। दुख दारिद कम्पत चम्पत भौ, सुख संपति संपति सो भरभारी॥ सुखसाज सघट्ट अघट्ट दई, फिर आवन हट्ट या पनसारी। बयपारकरी बयपारकरी, बयपारन संगमें ये बयपारी॥ १८॥

हिरम्मर चीर कबीर कवी, कविता सविता गुण गावत पायो। न टुटै न फटै न कटै कबहू, रुचि राउरकी पहिराउर आयो॥ न मुनिन्द्र भरे न सो इन्द्रघरे, भगवान कृपा भगवान भगायो। सतनाम निकाम ररो सुधरो, उधरो दृग दिव्य दयाल बतायो॥ १९॥

गज ज्ञान अपानकी पीठ चढे, दल दैत्य विकार विषय विहराना। गहि वज्र विवेककी टेक हिये, निज नाम निशानको मारुव्याना॥ सहसक्ष प्रतक्ष स्वरूप लखे, तम भक्ष कृपा भ्रम कूप विहाना॥ जन राउर यद्यपि बाउर है, पदपंकज पास कियो निज थाना॥ २०॥ इति।

अर्जनामाप्रारम्भः।

(१)

(अर्जनामा धर्मदासजीका)

करतहौं पुकार मेरे तुमही हौ अधार, सुनिये वेगही गोहार, बार काहेको लाये हौं। बडे २ संकटमें सन्तन सहाय कीन्हो, राखि प्रन जनको निज पैजहू वढायेहौ॥ जनको दुःख दुखित देखि, आप सन्तनको कला पेखि, दुख दहनदाप सुख, सागर देन आये हौ। सेतुबन्ध वान्धिवेको रामचन्द्र व्याकुल भये, लिखि सत्यरेखा जल पाहन उतराये हौ॥ द्वापर पगधारे निस्तारे नृपवधू, व्यालविषम विडारे यम फंदते छुडाये हौ। पांडुके कुमार विकल यज्ञके प्रकार, पडे संशयकी धार हारि शीस भूम लाये हौ॥ वाको यज्ञ सारयो बिडारयो दुख दारुणते, सकल शेष भूपन मिली जयजय उचराये

हौ । कलऊ तन धारे सब वेपनके काज सारे, प्रथमे पुरुषोत्तम पुरि देवल थपाये हौ ॥ सागर हटाय भ्रम भोजन मिटाये परगटे अनंतरूप चकित द्विज कराये हौं । वलख सिधाये छुडाये वहु वेषन दढाइ सुलतान भक्तिमारग लखाये हौ ॥ सिन्धु वो हित बचाये दाह पांडवको बुझाये, आये नगरकाशी पुरवासी गुणगाये हौ ॥ चर्चा भई भारे काजी पंडित पचिहारे,इसमकूँ फेर शाह सिकन्दर समुझाये हौ ॥ शेखतकी वार बार कसनी लेके रह्यो हार, कुदरत कमाल सुत मृतक जिवायेहौ ॥ गोरखपुर मगहर बोधे दोऊ दीन परबोधे, वांधो गढ वघेला रानाखाना सचुथाये हौं । कौतुक दिखाये नदी आमी बहाये तहाँ ध्याये नरनारी मन वांछित फल पायेहौ ॥ जीवनके धनी हौ गुनी प्रभुताके लायक जैसी जाकी आशा वैसेही ताको पुराये हौ । बटक बीज बोवाये खोजि हटाये संशय मिटाये जन

ज्ञानी समुझाये हौ ॥ हेरि तको अपनी ओर कृपा करो चक्षुकोर निरखत हौं तुम्हारी ओर काहू न ध्याये हौं । हौं सपूत और कपूत होउ लाज पिता औ जननीको अपनो प्रणपक्ष जानि नाहीं विल लगाये हौ ॥ जाको जन विकल फल कैसो ता साहवको, दासकी हँसाई ठकुराई हँसी जायहौ । वन्दी छोर नामतेरो वेग वन्दी छोर मेरो, हौं तो अधीन तेरो चेरो कहा अनेरो ठहराये हो ॥ तुम्हरो वल जान ठान जीवनको दीन्हौंपान, सुनिलीजे विनतीमान धर्मनिं गोहरायेहो ॥

तव प्रगटे सत्यगुरु कबीर, धर्मनि चित्त धारो धीर तन पुलकित चक्षुनीर धाय पाय लागे हो ॥ निरखि वदन विकल बोले पग प्रकाश मन मुकुर डोले, हिय उमंग मन मुदित खोलेहो ॥ पग पैकर गयो छूट, गुफाद्वार निपट गयो टूट, भयो यमराज घर लूट लखि दुर्जन सब जागेहो ॥ द्वारपाल

कीन्हों शोर सबै धाये चहुँ ओर, करत कलाप हाय रोर पुत्र दुखित शाह अभागेहो। दंपतिकहैं करजोरि पुत्र इन मारा मोर, हमहू कस करब घोर पुत्र बिना अनुरागेहो॥ तब बोले सत्तनाम बैन शाह हृदय राखुचैन, तेरोसुत मिले ऐन तजु कुबुद्धि कागेहो। साजि आरति अनुमान शाह सुतको दीनोपान, तब बालक गोहारान लोक शोभा अनुरागेहो॥ धर्मनि चित्त भये आनन्द, मिटे सकल कालफंद, छोरेउ सत्तनाम बन्दि चूक बखशाये मांगे हो। धर्मनिदासानुदास सत्तनाम गह्यो विश्वास, सत्यकबीर आय प्रेम उमंग पागेहो॥ इति अर्जनामा॥ १॥

अर्जनामा।

(२)

(गरीबदासजीका)

सतगुरु मिहरबान् कीजे सहाय। जल थल सकल संग मौले मलाय॥ जल बुन्दसे साज

कीन्हा निशान । जठराग्नि बीच राखे अमान ॥ १ ॥ जठराग्नि बीच राखे सही । अमृत अमी खीर प्याया तुही ॥ नापैदसे पैद कीन्हा है पिण्ड जामैं भवर अर्श कुर्सी है अण्ड ॥ २ ॥ स्वासा सहस धुन शरीकत सरार । वह कौल विसरा जो कीन्हे करार ॥ कुर्बान कुर्बान कुर्बान जाह । भयकी दरिया बीच पकडी है बांह ॥ ३ ॥ निश्चल निराकार निर्गुन अनूप । स्थिर अनाहद सलाहद सरूप ॥ रहता अर्श पें जो पडदे अदेख । है वेचगून वेनमून अलेख॥ ४ ॥ खालिक खलक वीच हाजिर हजूर । बाजे सुहंगम विहंगम जो तूर ॥ मोले मुरारी अटारी जलाल । ताविच साहब सुब हाँ विशाल ॥ ५ ॥ खानेच रवादार बाँदीका जाम । लटका करूँ मेरा लीजो सलाम ॥ मौला साहब मेरी मेटोन शंक । मोसे पतित तै उघारे असंख्य ॥ ६ ॥ साहिबा [illegible] सतगुरु अलेख । मोसे पतित तै

उधारे असेख ॥ अगह अगम दीप ऊँचा सुमेर । कैसे चढौ जुफिरंगी है फेर॥७॥तुहीहै तुहीहै तुहीहै सुभान । नापैदसे पैद कीन्हा जहान ॥ तुहीहै तुहीहै तुहीहै अजोख । ना पैदसे पैद कीन्हा है लोक ॥ ॥ ८ ॥ तुहीहै तुहीहै तुहीहै हकीम । नापैदसे पैद कीन्हा मुकीम ॥ दुनिया दिवानी बिगानी विकार । समझे न बूझे अनारी गँवार ॥ ९ ॥ साहब दया-वन्त अविगत अपार । सोऽहं सोऽहं भवँर गुञ्जार॥ दुनिया विलोमान हो तीन होज । कीजो वे यारो परमहंस खोज ॥ १० ॥ फना है फनाहै फना है लगार । माटी मिलैगा जो करता सिंगाँर ॥ हस्ती घोडे रु जोडा जहान । फनादीन दुनिया जमीं आसमान ॥ ११ ॥ राजा न रैयत रहेगा न कोय । रहेगा चिदानन्द उपजा न सोय । भाई भतीजे रु जोरू जमाल । देखैंगे लडके जो होगा हवाल ॥ १२ दादी फुफी बहिन रोवैंगी रूह । यम आनि पक-

ड़ेगा जन ढूंढ़ढूंह ॥ मौसी रु मामा अलामा जहान । शुकदेवको पूछो विरक्त परमान ॥ १३ ॥ हजार वार तोवा जो खेंचे हदीस । कहो कौन मेटेगा यमकी कशीस । काफिर करद बाँधि खातेबकरीद । यमकी तलब कैसे होगी रसीद ॥ १४ ॥ मुरगी रु बकरी ढाढा रु ढोर । खूनी भखैं हैं शरभके जो चोर । चाकर चरवाहा रु देखैं खवास । जब आन वीतैंगी यमकी त्रास ॥ १५ ॥ करियो वे यारो कुछ चक्षमेका सूल । दरगह न पहुँचें नवी ओ रसूल ॥ मुहम्मद नवीकू न पायाहै राह । अर्शपन्थवाकाहै अग मो अथाह ॥ १६ ॥ शरेकी शर्तकत तजाहै न दीन । उलटा अपूठा परा है जमीन ॥ दोजख विहिश्तका जो देखाहै अन्त । या विच यमराय तोडेहैदंत॥१७ दोजख विहिस्तको जो देखा उनमान ।याविच यम रायकाटे जुवान ॥ दो जख विहिस्तहै जो वाँकी उजाड । या विच यमराय तोडेहै जाड ॥ १८ ॥

करियो बे यारो खजाना खरीद । संग ना चलैंदेखो दीद बरदीद ॥ संग ना चलैगा सूई रु सुमेरु । काफर कुठन करते घरोहि घेर ॥ १९ ॥ झूमू करम क्रूर काफिर करजान । औ हिरनकी चोरी सुईका जो दान ॥ मूजी मुजावर व पापीप्रेत । सूमका ससुरा साईंसे न हेत ॥ २० ॥ सद्गुरु चिदानन्द अविगत अपार । पाजीखानेजाद तुमरे आधार ॥ सतोगुनका सामां जमैयत जमाल । देखे तमाश सब कुदरत कमाल ॥ २१ ॥ शीलके सर-वरमें नहाना हमेश । प्रेम पदपारसका दीजे उप-देश ॥ बुद्धिका दे बखतर और पाखर प्रतीत । सोहं जपमाला भज अविगत अतीत ॥ २२ ॥ बुद्धिकी बन्दूक और दृढकी दे ढाल । चित्तकी चकमक भरदारू दर हाल ॥ पवनका पलीता व गोला गुलणार । दोदलकी खिडकीसे उतरूंगा पार ॥ २३ ॥ ज्ञानकी शादी समाधी ग़लतान ।

दयाकी ढुलीचे पै धरमका निशान ॥ द्वादश दल-
जीतनको तत्त्वकी तलवार । अर्द्ध उर्द्ध तकीय विच
दुर्जनको मार ॥ २४ ॥ नामकी नवका कर मनकूँ
मलाह । चित्तका चम्पु ले सुरतिसे चलाह ॥ अर्शमें
आसन सिंहासन समोय । उदित भानु चन्द्र संख
कला जोय ॥ २५ ॥ उनका तो तिनक करले गायत्री
लाय । शून्य शिखर गढमें तुम जपो अजपाजाप ॥
असरव कान्हाना त्रिवेणीके तीर । सर्वशी साहब
मनका यम कबीर ॥ २६ ॥ मानसरोवर दरिया
जहाँ चुगते है हंस । लगे गैबगोता जहाँ भेटे परम-
हंस ॥ अक्षय वृक्ष अर्श बीच फूला गुलजार । अर्थ
धर्म काम मोक्ष पाये दीदार ॥ २७ ॥ पात पात विष्णु
बैठे शिव विरंचि शेषा । सतगुरु कुर्बान जाऊँ ऐसे
उपदेशा ॥ सद्गुरु चिदानन्द माय न मोह । निर्गुन
निरालम्ब जानाहे तोहि ॥ २८ ॥ कासे कहूँ भेव
परवरदिगार । जान्या हम जाना है अवि-

मत अपार ॥ अर्श बीज बैठा जो मारे गिलोल । देखो वे यारों कुछ नहीं तोल मोल ॥ २९ ॥ पीताम्बर पटमेंहै सूक्ष्मस्वरूप । सुरति नाल चलता है छाया अनुरूप ॥ सतगुरू अवाजी निवाजी लिलाट । सुनो अर्जनामा पढनके जो छाट ॥ ३० ॥ ब्रह्म तेजताली हमाली हजूर । अग्रपन्थ पाया समाय जहूर ॥ सतगुरु शरीकत हकीकत जुवाव । कहो कौन लेगा शरेमें हिसाव ॥ ३१ ॥ मौले मिहरवान मालिक मुरारि । हीरा हिरम्बर तुही वार पार ॥ सतगुरु दिगम्बर विश्वम्भर दयाल । पलमें निवाजे जो नजरे निहाल ॥ ३२ ॥ अगम ज्ञानलासा खुलासा जो सैल । पपीली न पहुँचे जो लादेहै बैल ॥ कहता है गरीबदास छाना है नीरखीर । कुर्बान कुर्बान कुर्बान कायम कबीर ॥ ३३ ॥

इति अर्जनामा गरीबदासजीका ।

अरजीनामा।

सतगुरु मिहरवान कीजे करम। गाफिल खुदी दूर दिलका भरम॥ १॥ वहुत रोजवीते मैं तेरीशरन। स्याही गई अव सफेदी वरन ॥ २॥ मुझे वहुत अँदेशा किया मैं जो फेल। वदी वहुत कीता जो नेकी निसेल॥ ३॥ मैं क्या करूँ संगेवुरे सोहवती। किया चाहते थे मुझको ये दुरमती॥ ४॥ आजिज मैं तनहा दुशमन जवर। अर्जी मैं करू मेरी लीजै खवर॥ ५॥सतोगुनकी चौकी व अपनी भगति। इतनी नाथ कीजे सो मेरी मदत॥ ६॥ काया कोट माहीं मैं निशिदिन लडूँ। दुशमनकी लशकरसे नाहीं डरूँ॥ ७॥ नवे मोरचा खूव कायम करूँ। देशमें जमैयतसे लागाकर रहूँ॥ ८॥ तुम्हारी तवज्जुह से दुशमन डरे। हटा आपना माने न मुशकिल करे॥ ९॥ निर्भय हरप होय संशय मिटे। सवे रोज दिल वीच रटना रटे॥ १०॥ अन्तःकरन

प्रेम नैना पगे । जगत सब स्वादफीका लगे ॥ ११ ॥
तुम्हारी विरह अग्निमें निशिदिन जरूँ । चौथी अव-
स्थाको हासिलि करूँ ॥ १२ ॥ मेरी अरज होवे
दरगह कबूल । दिलकी मुराद दाद कीजे रसूल
॥ १३ ॥ सदगार सकल सन्त रोशन जमीर ।
सेवक तलबदार दाया कबीर ॥ १४ ॥

कवित्त ।

पावन पतित जीवनके हित प्रभु तूही गुरु पुरुष
कहलायो धूँ ओर है । कहत कबीर धर्म धरत न
धीर करे अचल शरीर न लगे हिम जोर है ॥ पशु
पंछी तारत है निगम पुकारत है आरतको देखिके
निहार रिगको रहै । पीरो पय वेद वाणी हूँ विरह
बन्दीछोर है ॥ १ ॥

तजत न वानी सुर मुनिन बखानी प्रभु शरणमें
आनी जो करत निहोर है । तीन लोक ढूँढ जाये
दूसरे कहूँ न पाये लग सो चरण दुख हरण जो

शोर है ॥ नहीं शुभ करनी है वह्न दुख भरनी है उस गुरु शरनी है कलिकाल घोर है । अधम उधारनको जगत सुधारनको भक्ति मुक्ति धारन कबीर वन्दीछोरं है ॥ २ ॥

बूडे वड ज्ञानी सिद्ध साधक जो ध्यानी बिनु नाम सहिदानी जिन्हें आशा न तोर है । बल वीज चूसत है सिद्ध साधु दूसत है, निसिदिन मूसत है अनचिह्न चोरहै ॥ जीवकोहै ठौर नहीं सुर मुनी दौर नहीं परमानन्द पौर नहीं पावन जो दौडहै । वन्दीछोर वन्दीछोर वन्दीछोर एक मजु· साहब कबीर टेक सोई वन्दीछोर है ॥ ३ ॥

विनय–अष्टपदी ।

:प्रभुजी तुम विन कौन छुडावे ।

महा कठिन यम जाल फांस है तासों कौन बचावे ॥ १ ॥ नाना फांस फँसाय जीवको आपन रूप

छिपावे । पंच कोश होय प्रगटग्रासे तेहिको कोन लखावे ॥ २ ॥ आपहि एक अनेक कहाई त्रयविधि रूप वनावे । सैनपांत होय दुष्ट नष्ट सो परलय अन्त दिखावे ॥ ३ ॥ विषय विकार जगत अरुझावे जहां तहां भटकावे । योग ध्यान विगुर्चन भारी ताहि सुरति अटकावे ॥ ४ ॥ आशा नाम नौक बैठावे भौकी धार बहावे । तत्त्वमसि कहि ताहि डुबावे अन्त कोई नहिं पावे ॥ ५ ॥ चारिमुक्ति योनि चौरासी तेहि मिलि हेत वढावे । नेम धर्म पूजा और सञ्जम बहुविधि लागलगावे ॥ ६ ॥ भेष अलेख करेको पावे जीवहिं चैन न आवे । चारिवेद षट् अष्ट दशौलै शून्यहि शून्य समावे ॥ ७ ॥ काल चक्र वशि उत्पति परलय जीव दुसह दुख पावे । साहब दया कीन्ह परखाये राम रहस गुण गावे ॥ ८ ॥

साखी ।

कपट चतुरता कालवशि, सन्मुख प्रभुके ना होय । भ्रमहारी साहब शरण, निश्चय भया विलोय ॥

विनय छन्द ।

तुम होहु जाहु दयाल सकलो जाल ताकर नाशि हो । तुम विना नहिं मिटिहैं काल सुक्रपाल परख परकाशि हो ॥ काकरौं मैं स्तुति आज सतगुरु कियो बहु उपकार हो । तुम बन्दी छोर कबीर साहब मेटयो भवभार हो ॥ १ ॥

सब करौं निछावर तोहि परम गुरु तनमन धन सब खेह हो । मम सुरति राखो चरणमें यह नाश-मान है देह हो ॥ परख पदको पाय साहब मिटि गयो सब भास हो । जगत ब्रह्म अनेक स्वामी रही न काहुकि आश हो ॥ २ ॥

अर्जीनामा ।

(पूर्णसाहबकृत)

हूँ सेवक अज्ञान मोपे दया दृष्टि निहारियो । बाल जान कृपाल मोको सुरतिसे नहिं टारियो ॥ १ ॥ निपट बुद्धि मलीन जगत आधीन मैं ताते भयो । होय तुम पद लीन सोई विप्रीति मन काहे ना रह्यो ॥ २ ॥ वे जक्त जाल कराल मोह विशाल मोहि अछो लग्यो । कनक कामिनी नाल देखि वैराग सब चितते भग्यो ॥ ३ ॥ नहीं काम हे धन धाम सब वेकाम स्वप्ना सो दीखे । परचित्त छोडत नाहिं आशा का भयो बहु पढि लिखे ॥ ४ ॥ अब करत दास पुकार बारमवार गुरु सुनलीजियो । सकल राग छुडाई दृढ वैराग मोको दीजियो ॥ ५ ॥ तुव नाम पतित आधार मोतें ना पारि कोई दीनहो । अन बनो हैं

युगचार तुम आधार ताते कीनहो ॥ ६ ॥ बानेकी लाज तुम्हार परख विहार सुख साहेब धनी । मैं पतितहूँ लाचार दास तुमार गुरु साहेब गनी ॥ ७ ॥ दास पूरन कीन्ह विनती सुनहु दीन उधारना । पड्यो जग जंजाल मांहीं मोहे साहेब तारना ॥ ८ ॥

अष्टक ।

सुख साहेब सुखरूप सुखघन, दुष्ट दुख निवारनं । परखके प्रकाश करता दीन जीवन तारनं ॥ ॥ १ ॥ भ्रम जक्तको शोक सकलो, धोख भ्रम विडारनं । महा मोह कराल नाशक, सकल भौ भैटारनं ॥ ५ ॥ वेद शास्त्र पुराण एक अनेक जालहि खंडनं । झांई संधी ओ काल नाशक, दया धीरज मंडनं ॥ ३ ॥ एक जीवको अनुमान सब तोफान जग तामें फँस्यो।सोगांस फाँस छुडाय,निजपद पाये

पारख दृढ ठस्यो ॥ ४ ॥ नहीं कल्पना अनुमानसो परमान अबको करी सके । प्रत्यक्ष पारख छोडि वेद नाहक मरि बके ॥ ५ ॥ सोई होहु आप कृपाल तब सब जाल जीवन छूटि है । निज दास होय हुलास तबही भास शकलो टूटि हैं ॥ ६ ॥ मैं चरन सेवक दीन तुव, परदीन दाया कीनहो । मैं हीन छीन मलीन प्रभु बांह ग्रहीके लीनहो ॥ ७ ॥ बांह ग्रहेकी लाज पूरन, शरन तुमको आजहै । नहीं अवर कछु काज, गुरु पद सकल सुखको साज हैं ॥ ८ ॥

अर्जीनामा ।

ज्ञान स्वरूप अनूपम पूरन । पूररह्यो जडचेतन माहीं ॥ तीरथ वर्त रु कर्म करेबहु । अंध भयो शठ सूझत नाहीं ॥ १ ॥ काल महाबलवंत बडो रिपु । डारत ले भवसागर मांहीं । ताहिते सुधि भयोमोहीको । अब आइरहो चरणों माँहीं ॥ २ ॥ कहा कछु केवल नाम कबीरही । जीव रटे सब चातिक

सोही ॥ सर्वमें व्यापक आप कवीरहि । स्था-
वर जंगममें पुनि वोही ॥ ३ ॥ रंग रटना सब
लागरहो घट, ताहि बिना नहीं औरही भासे ॥नित
वहे हमरे उर मांही । सु तारक बुद्धि प्रकासे ॥४॥
जौन प्रकार कटे रजनी तम, सोई उपाय कहो निर-
धारा ॥ काम रु क्रोध रु लोभ अमावत, ताहिसे दास
जो कीन्ह पुकारा ॥ ५ ॥ आप विना नहीं कोई
हमारे । जो पुत्र कलत्र पितु परिवारा ॥ अब मोही
तुही सहाय करो प्रभु बूडतहूँ भवसागर धारा ॥६॥
माताकूं बालक जो दुख देतही । सो जननी नहीं
सोच विचारा ॥ खैंचत केस करे नख घात जो ।
तोहूं न छोडइ गोदमें धारा ॥ ७ ॥त्यों जननी गुरु-
देव कबीरहि । शिष्यसमान जो बालक होई । डूबत
बांह गहो गुरु देवजु । आप दयाल दयानिधि
सोई ॥ ८ ॥ आपकृपाविन भाग जगे नहिं ।
आप कृपाविन पातक लागे । आपकृपाबिन शुद्धही

रदे नहीं । आपकृपाविन मोक्ष न आगे ॥९॥आप कृपाविन डूब मरे भव।जीव अनेक पडे जम त्रासा॥ ऐसी कृपा जो करो हम ऊपर। पारख बुद्धि सदाजु प्रकाशा ॥ १० ॥ योग रु यज्ञ करे नानाविधि । कायाहु कष्ट करे वहुतेरा । आंखहु मुन्दत कानहु रुंधत । प्रान चढाय गगनमें घेरा॥ ११॥ नेती धोती कर्म करे वहु । घ्यान धरे पुनि काहु न हेरा ॥शुद्ध स्वरूपको ज्ञान विना शठ । मेटत नाहिं चोरासीको फेरा ॥ १२ ॥ मैं अपराध कियो वहुते गुरु । सो अपराध कह्यो न जाई ॥ आप दयाळ दयानिधि साहव । मम अपराध क्षमा करो साँई॥ १३॥अन्तर्यामी जु जानत हो सव।कहा कहूं मुख वारम्बारा ॥ भूल मिटाये परखाई दियो सव । संधिक झाई जु काल पसारा ॥ १४ ॥ जादिन वन्ध छुडाई दियो सब । ता दिन नाम पड्यो वंदीछोरा ॥ तैसेही बन्धन मोर छोडावहु । वारम्बार करूं जो निहारा

॥ १५ ॥ दासको संकट आयपरे तब।आयके तत-क्षण लीन संभारा ॥ वीजकदास यहीबर मांगत । नित्तहृदयमांहि रहु ध्यान तुम्हारा ॥ १६ ॥

इन्द्रविजय ।

आपेही आप गोसाईं सुसाहब होहु दयाल दया करि हेरी ।ऐसी कृपा जो करो हम ऊपर जे विधि होहु तुमारो हिचेरो ॥ औरहि व्रत मिटायके साहेब, एकही व्रत तुम्हारोहि प्रेरो । शिष्य कहे गुरु देव सुसाहेव, येहि विधि ध्यान तुह्मारेहि मेरो ॥ १ ॥

भांति अनेक करे यह चित्तसो कर्मविकर्म करे तेहि काजा । तीरथ व्रत करे बहुते विधि, ताहिके काज लगावत साजा॥जो गुरु यज्ञ करे क्रिया तप, करे पुनि ध्यान कहे महाराजा । भारि भरोस हिये गुरु आपसो, आप गुसाईं सुहो शिरताजा ॥ २ ॥

नानाहि भांति विचार करौं,बहु एकहुँचित्त ना आवत मेरो । जाल अनेकन हाल विहालसो, काल

कराल करे वनवेरो॥जीवन मारि कियो पिसमानसो, कोईके चित्त न आवत हेरो। मोकहं तो एक आश तुम्हारिहि, भांति अनेक कहों वहु तेरो ॥ ३ ॥

जा दिनसे मोहि आप मिले प्रभु, तादिनसे वहु दुःख निवारा। होय आधीन गह्यो शरणागत, भाजि गयो सव अंग पसारा ॥ आप पर्खाइके मास मिटाईके, जीव छुटाये कियो निस्तारा। शिष्य कहे गुरु देवसु साहेव, मोकहँतो एक आप अधारा ॥ ४ ॥

ऐसी कृपा जु करी हम ऊपर, होय अधीन गह्यो जव चर्णा। जन्म रु मर्ण रहे अव कोनको, येकहि चित्त तुम्हारो हि शर्णा ॥ सांझइक संधिक काळ सो ग्रासिक, मिटि गयो सव मनको भर्णा। शिष्य कहे गुरुदेव सुसाहिव, और उपाय नहीं मोहिं तर्णा॥५॥

करुणानिधि आप वनाइ दियो, सकलो संत विवेकको आथी। मेरे हृदये दुःखसाल अनेकन्ह, आप

मिटाइ कियो सुख साथी ॥ मास मिटायके फांस छुटाइ दियो, प्रभु कालहि तू भवनाथी। ऐसो दयाल को छाडिके रे शठ, तू बहुदेव भुले देह माथी॥६॥

जो प्रभु आप सहाय करो नहिं, तो यह जीव रहे भौ भीरा। अवगुन बापजी माफ करो अब, मैं कछु शील विचार ना धीरा॥ बालपुकार करे बहुते सर हे सुख सिंधु करो मन थीरा। साहेब संत समाज मिले जब आय लगूँ गुरु ज्ञानके तीरा॥ ७॥

तुमही सब लायक जानतहो सद वेद पुरान कुरान अनेका। बुद्धि हीन मलीन पुकारतहों अब ही प्रभु राखहु वेषको टेका॥ यद्यपि आप विसारहुगे तब लोक हँसे नरनारी तरेका। ताहिते शिष्यको भाव धरो शिष्य भरोस करै गुरु देका ॥ ८ ॥

करसे सुतमात ना छांडित है शिर दुःख हजार परे मन जोखा। जोपै पूत कपूत सही जननी न विचार धरे उर धोखा ॥ कबीर गोसांइ मेरे

शिरताज दूजा कहां जाये करों तनपोखा । विपति शरबान ढरैं अतिसे तुवदास लडे चढि ज्ञान झरोखा ॥ ९ ॥

कवित्त ।

बालक ज्यो वोले वात तोतरी बनाय करी मातु पितु वाके सुख माने प्रेम सानिके । ज्यों पै सुत भूल्यो आय जननी पुकारे धाय, मारे मुख वचन कहत सहुं आनिके ॥ रोदन करत पूत चलो जात दूर धाय, झांझांही विलाप धारि लोटे नहु ठानके । हाथही अम्बर लेई पोछि कर उर देइ, पीर सब छिन करी गोद लेवे जानके ॥ १ ॥

दोहा ।

; तैंसे गुरु तुम देव प्रभु, देहु सकल सुख साज । भवबन्धन जाते मिटे, सो चाहत मैं आज ॥ पारख शुद्ध विचार करी, ताहि मांहि सुखधाम । ताते कह- तहूँ आपसो, मोको राखहु ठाम ॥ २ ॥

सोरठा।

खबर लीजिये मोर, परख रूप किरपाल प्रभु।
तुम तजी अन्त न ठोर, अब तो आश तुमार है
॥ १ ॥ तात मात मित्रादि, नहिं कोइ मेरो जग-
तमें। तुम सुहिरदे वर आदि, भवनिधि तारो गाथ
हम ॥ २ ॥ अवगुन देखहु मोर, नहिं कल्यान जु
कल्प सुधि। दया दृष्टि कर तोर, अवगुन चित
न विचारिय ॥ ३ ॥ साहब परम उदार, सुखसा-
गर सुखरूप घन। ताते करत पुकार, जो गुरु
होहु सहाव अब ॥ ४ ॥

कवित्त।

दीनोंके दयाल आप कियो है निहाल मोहि,
करो प्रतिपाल सुख सागर समान हो। नागर
विराजमान आगर कहत सब, जनके दयाल मोही
हियमें सोहात हो ॥ कहत अगम वेद पार नहि

पावत सो, मन मरमात मेरो आप सुख सार हो ।
शुद्ध बुद्ध ज्ञानभारी सन्तनके रूपधारी, कहे सहदेव
भव पारहुके पार हो ॥

कवित्त ।

आपही पूरन गुरु, साहेव कव्वीरहीसो, तिनको
नम्र होय वन्दनी हमारी है। सुखही सरूप रूप,
ज्ञान ही अनूप भूप, परख प्रकाश जहां, नसे अन्ध-
कारी है ॥ दरश ही पाप टारी, झांई संधि काल
जारी, निजपद आपदेहीं, वडे उपकारी है । दीनको
दयाल प्रभु, सन्तनके उरगाल, कहे सहदेव गुरू;
ऐसो सुखधारी है ॥

छन्द त्रोटक दुइपदी ।

गुणवन्द निधान सर्वज्ञ प्रभुं । त्रियताप निवा-
रण धीर्य विभुं ॥ कर्णधार उवारन जीवधनी । त्व
यंपारखं श्रोद्धय सुवाक्य मणी ॥ १ ॥

त्रिगुणं रहितं सतभाषण हे। नित परख प्रकास ुसासनहैं॥ सुगिरामृतधार प्रवाह सरी। पुट श्रावण ानको ‘शास हरी॥ ३॥

मुझ दासको देव तुहि प्रभुहो। दीननाथके नाथ रखो शर्णु हो॥ २॥

छन्द भुजंगी।

गुरुजी कृपालो वडो तुं दयालो। करो प्रतिपालो मिटों दुःखसालो॥ करूँ विनती मे शिशु जानि तारो। डरों दुःखदेखि भवोंके अपारो॥ १॥

परम सुजान महागुनखान। शीलके निधान सब सुखस्थान॥ कोई ना कोई ना कोई ना हमारो। रोंड दुःख देखी भवोंके अपारो॥ २॥

परंविरागी क्षमा उरपागी। मैं तो हूँ अभागी तेरो पाव लागी॥ हूँ अनारी अनारी मेरो दुःख टारो। डरों दुःख देखी भवके अपारो॥ ३॥

गिराहे तुमारी हरे शूल भारी । माया मोह डारी देही सुख सारी ॥ अनाथा अनाथा हियोहे अंधारो । डरों दु:ख देखी भवके अपारो ॥ ४ ॥

मेरा तुहीं स्वामी तुहीं अन्तर्यामी । नहिं काम कामी प्रभुजी अकामी ॥ दयाळा दयाळा गुरुजी तुं सारों । डरों दुख देखी भवोंके अपारों ॥ ५ ॥

मेरी बात मानो कहु सो तुं जानो । तेरो ज्ञान भानो करे अन्ध हानो ॥ डारो अंघ जारो उजारो उजारो । डरों दु:ख देखी भवोंके अपारो ॥ ६ ॥

मेटो भ्रांति झारी भुमां शोकफारी । ग्रही टेकयारी करी प्रीति भारी ॥ चहुं साथ तेरो मेरेकुं उबारो । डरों दु:ख देखी भवोंके अपारो ॥ ७ ॥

अहो देव देव करुं तेरो सेव । अबे गुरुदेव देहु सुख मेव ॥ प्रकाशी प्रकाशी प्रभुजी पुकारों । डरे दु:ख देखी भवोंके अपारो ॥ ८ ॥

अथविनयशब्दावलिप्रारम्भः ।

शब्द १–देखों अति सुन्दर छविनीकी। मंगल-दायक सब सुख लायक, निरखि सकल छवि लागत फीकी ॥ टे० ॥ कृपाकरत लखि दीन दयाकर भ्रान्ति मिटाव सकलो जी की ॥ शरण गये सकलो दुख मेटत सुख उपजावत देवत सीकी ॥ निज पद मांहि लेत बैठारी गांठ छुडावत मैं ममतीकी ॥ गुरु सम को उदार जगमाहीं पूरन कीन्ह परख अति-नीकी ॥ १ ॥

शब्द २–शरण तुम्हारी आयोजी गुरु ॥टे०॥ त्रिगुण मायाके फन्दा परि युगन युगन जहँ डायो॥ चाह न योगध्यानकी अब मोहि, नाम जागीरी पायो ॥ १ ॥ लोक परलोक कछु नहिं चाहों । सगुण निर्गुण नहिं भायो ॥ पूरण ज्ञान ज्ञान, विज्ञा-नको भयो जब पारख थिति पायो ॥ २ ॥

शब्द ३—हौ प्रभु दीन जनन प्रति पालक ॥ टे० ॥ हौं मति मन्द छन्द विषयनको महा अज्ञ इन्द्रिनको चालक ॥ औगुन हरन नाम प्रभु तेरो, मैं औगुणी अधम कुल घालक ॥ मैं अति दीन शरण तुव आयो, क्षमो अपराध जीवनके पालक ॥ ना मोहिं योग, भोग मद नाहीं वन मद नाहिं बाँह बल बालक ॥ पूरन दासके तुमहिं अधारा, और सकल जगमें यम जालक ॥ ३ ॥

शब्द ४—पतित पावनको सुन्दर ध्याना । निरखत बदन प्रसन्न सुखदायक देह आदि विसरत जग भाना ॥ टे० ॥ चक्रांकित शिर टोपं विराजे ताऊपर दस्तार बखाना ॥ तिलक लिलाट शुभ अति नीको, तुलसीको माल गले विच नाना ॥ १ ॥ ज्ञानको अचला मुक्ति मेखला अष्ट सिद्ध हेली प्रमाना ॥ दया सिंहासन आइ बैठे पूरणदास चरण लपटाना ॥ ४ ॥

शब्द ५—कहांलो कहौं गुरुपद प्रताप ॥ टे० ॥ जो मुख होय जीव दश लाखा तऊ न वरनिसकत प्रभुजाप ॥ अनेक जन्मको जीव विहाला, तिनको मिटयो महा भ्रम दाप॥ सङ्कटमें सनतनको तारा, साधुरूप धरे पुनि आप ॥ वादशाहको कसनी दीन्हं, सिंहरूप धरे पुनि आप ॥ भेषकी टेक राखि करुणामय, पूरण कहा कौन धौ पाप ॥ ५ ॥

शब्द ६—तेरा दिल चाहे उधरे देख मैं देखूँगा तुझे ॥टे०॥ तुमतो मुखत्यार यार स्वतःसिद्ध आपी आप, और को न जाने एक आशरा तेरा है मुझे ॥ ॥ १ ॥ चाहे तो चन्द्रमा चकोरनको त्याग करै, पर चकोरनकी आग कहु चन्द्रविन कैसे वूझे ॥ चाहेतो प्रकाश सकल नेत्रको त्याग करै, पर विनु प्रकाश नेत्रनको जगमें कहु कैसे सूझे ॥ सतगुरु दयाल तेरों सेवकहूँ वाल, वालपूरणको तुमही एक और कोई नहिं दूजे ॥ ६ ॥

शब्द ७—तेरी खुशी देख या न देख मैं देखूं तेरे चरणोंमें ॥ टेक ॥ माय बाप सकल टारे, जांति पांति सकल सब विसारे सकल आशछाडि, गुरु ! आन पडा शरणोंमें॥ १॥त्यागदई सकल लाज, काहूसे न राख्यो काज, घर घरके भिखारीहूँ नाम सुना करनोंमें ॥ २ ॥ हरदम तेरा अभ्यास, और कछु नहीं भास, सबसो ह्वै गयो निराश, जो तनही भरनोंमें॥ ॥ ३ ॥नाम तेरा है दयाल, पूरण फिरत विहाल कबधौं करिहौ निहाल, जावे जब रनोंमें ॥ ४ ॥७॥

शब्द ८—मेरी प्रीतके निवाहन हारे, लीजे खबरिया हंसपियारे ॥टे०॥ हौं अनाथ कहलावत तेरो, काहे निकारि बाहिर मोहिं डारे ॥ १ ॥ जो दूरि आव मोहिको सतगुरु, तोहू न छोडों चरण तिहारे ॥ २ ॥ तुम्हारा नाम सुना प्रभु श्रवणन, कि प्रभु पतित अनेक उबारे ॥ ३ ॥ करहु दया निज टेक निवाहो, जो तुम विरद जगतमें धारे ॥ ४ ॥ जो

कहो मोहि न जगतसे काजा, रहत अलिप्त सबनसों न्यारे ॥ ५ ॥ तो उपदेश की न गहि बाहीं, अब हम जाब कौनके द्वारे ॥ ६ ॥ धारी देह जीवन हितलागी, दै परचे अनेक उबारे ॥ ७ ॥ तार भार दीन्ह तोहि पूरण, क्षमाकरो अपराध हमारे ॥ ८ ॥ ८ ॥

शब्द ९—धन सतगुरु तुमरी वलिहारी ॥ मैं मति हीन लीन निज कर्मनि, दीन उधारन लीन उबारी ॥ टे० ॥ जिमि अंकुर तपै विनु वारी, बाकी अम्बुज सिद्ध खरारी ॥ आनिके वेगहिं लीन जगाई, नहीं तो परते मर्म विगारी ॥ परम दयाल दयाके सागर, महाकष्ट दुख द्वन्द निवारी ॥ सदा रहत दासनके संगा, पूरण परखावत मर्म विकारी ॥९॥

शब्द १०—मम बोहित तुम खेवनहारा । जग समुद्र अज्ञान भरयो जल, तृष्णा तरग करत ललकारा ॥ टे० ॥ काम क्रोध जल जन्तु अपर

बल, बैठया मगर भरि हकारा ॥ १ ॥ मोह भर्म बिच आनि पराहूँ, सूझिपरे नहिं वारो पारा ॥२॥ बूडत नाव उबारो साहब,आदि अन्तके हौं कडिहारा ॥ ३ ॥ अशरण शरण विरद सम्भारो, पूरण आयो शरण तुम्हारो ॥ ४ ॥ १० ॥

शब्द ११–तुमरिहि दरसको बनाहू भिखारी॥ मधुघर इव सब फिरत जगतमें, कब धौ मिलौगे कमल सुखारी ॥ टे० ॥ काम क्रोध मद लोभ अपरबल, तृष्णा उठत लहरि अति भारी ॥ मन रात्यो नाना विषयनमें, इन्द्रिन वाट निरट मोरि पारी ॥ चित्त चञ्चलको समुझावे, खाँड छाढि फांकत है छारी ॥ गुरु विचार पर छिनहूँ रहत नहिं, जग अनित्यमां भई मतवारी ॥ ई नाना औगुनमोंमें रहतहै, मांगो दर्शन करि ढिठियारी ॥ जेहि हित मुनिजन योग करत हैं, त्यागि राज कुटुंब धन नारी ॥ पूरन एक भरोसो आवत, हौ

प्रभु जीवनके हितकारी ॥ शरण आयेको त्यागत नाहीं, वन्दीछोर विरद अतिभारी ॥ ११ ॥

शब्द १२—मैं लाचारके तुम रखवारी ॥टे०॥ नहिं मोहि द्रव्य बाहु बल नाहीं, नहिं मोहि विद्या-बल अधिकारी ॥ ना मैं सिद्ध न साधनको बल ना मैं मन्त्री ना व्रतधारी ॥ तपसीहौं ना मैं हौं दीन परम गुरु, बाँह गहेकी लाज तुम्हारी ॥ बालकके दुलार निबाहन, तुम बिनु कौन पूरण सुख कारी ॥ १२ ॥

शब्द १३—परयो है कष्ट अति भारी मोको कष्ट अतिभारी ॥ टे० ॥ पाखंडिन पाछो बहु कीन्हो, ाते चोट लगत हैं कारी ॥ दीन जनि उपहास केया, चाहै मैं लाचार गरीब विचारी ॥ ना मैं सिद्ध । साधनको बल, मुझ कंगालके तुम रखवारी ॥ ागरी जाल तुम्हारी परमगुरु, पूरण तुव पद केर नेखारी ॥ १३ ॥

शब्द १४–तुव चर्णाम्बुजविशद प्रयागे ॥टे०॥ मम मन कठिन भवँर अतिदारुन, कारन कौन तन्त्र नहिं लागे ॥ अब यह मागों तोहि दयानिधि, कर जोरे प्रेमन वहुपागे ॥ जो रज पावन करत जगतको, सोई आइ मस्तकपर लागे ॥ और न इच्छा होय कबहुँ कछु, निशिदिन रहुँ चरणनके आगे ॥ चरण परताप होत ज्ञानगम्य, वहुत जीव जाते होत सुभागे ॥ महिमा तुव चरणनकी साहब, बिनु जाने सब जिव भागे ॥ ताते काया रहे जब लौं जग, तोलौं रहों मैं चरणमें लागे ॥ आखिर चरणचर होय तैहीं जैसे सीप बुन्द सो लागे ॥ साहब कबीर सुखरूप कृपाघन, पूरणदास यही वर मांगे ॥ १४ ॥

शब्द १५–तुम्हरे नामको भरोसो भारी ॥ हो प्रभु सेवकके सुखकारी ॥ टे० ॥ सिद्ध चौरासी बन्दि परे सब, गुरु गुरु करि कीन्ह पुकारी ॥तुर॰

तही जाइ छुडायो तिनको, साह सुलतान कीन्ह सुखकारी ॥ यक दिन काशीके मांहीं कुष्टी सांह आयो अतिभारी ॥ पद्मनाभने परचे दीन्हा, नाम प्रतापते कष्ट निवारी ॥ नाम लेत तारे बोहित प्रभु, साह दामोदरको भयहारी ॥ इन्दु मती जब टेर कियो है, नाम प्रताप उतरथो विषकारी ॥ नाम तुम्हारा अटल प्रभु युग युग, जीव अधम अनेक उवारी ॥ याहिते निश्चय भयो पूरण अब, करि हौ सुखी सब दुःख विडारी ॥ १९ ॥

शब्द १६–कैसे रहों जगमाहीं। करुणायतन बिनु, कैसे रहौं ॥ टे० ॥ जैसे जल बिनु मीन दुखित होय, तलफि तलफि मरिजाई ॥ कोइ तो आपे ब्रह्म बतावे सूर प्रभाकी झांई ॥ कोइ तो कहै यह आतम स्वयम्, जल तरंगकी नाई ॥ कोइ तो कहत दूजा है कर्त्ता, कोइ तो कहत कछु नाहीं ॥ कोइ तो कहत यह देहही ब्रह्म है, मेरोमन न पति

याई ॥ कोई योग कोई ध्यान बतावे, कोइ कोइ अलख लखाई ॥ कोइ कहै ज्ञान विचार करो, फिर आप ब्रह्म जग माई ॥ गुरु कबीर पारखकी राशि, सब सुखको सुखदाई ॥ ता पदसे कैसे होय न्यारा, आपहि पूर्ण कहाई ॥ १६ ॥

शब्द १७—क्यों न जपो मनलाई, अक्षर दोउ नीको क्यों न जपो भलाई ॥ टे० ॥ गुरु गुरु यह महामंत्र है, और मंत्र कछु नाहीं । ब्रह्मा जपत अरु विष्णु जपत हैं, और जपत शिवराई ॥ शास्त्र पुराण यह साख बखानत, गुरुते परे कोइ नाहीं ॥ गुरुते सकल सिद्धि रिद्धि होत है, गुरुते परम पद पाई ॥ गुरुते ज्ञान अरु गम्यहोत है, गुरु विनु कछु न बसाई ॥ गुरु विनु काहुको काज सरे नहिं, बहुत भय जगमाहीं ॥ राम कृष्ण तिनहूँ गुरु कीन्हा, मूरख चेतत नाहीं ॥ और मंत्र सब काल स्वरूपी, जीवन देत भुलाई ॥ गुरु मन्त्र यह पूरण कृपाघन, जीवनके सुखदाई ॥ १७ ॥

शब्द १८—गुरुते और नहिं कोई, मन देख विचारि ॥ टेक ॥ ज्ञानी मुनि सब ज्ञान बखानैं, रीते गये सब कोई । गुरुके गुण सब गावहिं हो गज अन्धेरेकी नाई ॥ टोइ टोइ पारनहिं पावे मन माने मति भाई ॥ कोई ब्रह्मा कोइ विष्णु कहे गुरु, कोइ कहै सिवजोई ॥ कोइ कहै सतगुरु पारब्रह्म है, याविधि गैल विगोई ॥ कोइ तो परम गुरु पुरुष वखाने, ईश कहत कोइ लोई ॥ कोइ कहै गुरु अन्तर्यामी, सबमें भरयो है सोई ॥ कोइ कर्ता कोइ माया कहै गुरु, मति बुद्धि सब गई खोई ॥ पूरण त्रिपद लाघे नाहीं, कैसे गुरु पद होई ॥ १८ ॥

शब्द १९—वक वक सब वौराने, गुरु कोई न जानें । अंधा धुन्ध मत प्रगट कियो है, सब जीव-नको ताने ॥ टेक ॥ घर घर तो सब गुरुआ बनें हैं, कीन्हें बहुत बहुत वन्धाने ॥ वन्दी छोर बिनु नहीं उवारा, ये सब जग मलताने ॥ वन्दी छुडा-

वन जगमें निकसे, आइपरे बन्दी खाने ॥ जो पूछौ गुरु कासो कहिये, तौ कहत आनकी आने ॥ कोई कहे गुरु सच्चिदानन्द, कोई कहै पुरुष पुराने । कोइ मानुष कोइ देव कहते हैं, यहि विधि भर्म भुलाने ॥ कोई शब्द कोई वेद कहते है, कोई आतम अनुमाने ॥ विपदपरखाय विनु पूरन, कैसे परे पहिचाने ॥ १९ ॥

शब्द २०—आप न बूझे कहै और बुझावे; विनु पारखं नर भटका खावे ॥ टे० ॥ ग्रन्थपुराण बहुत जग वांचे, याते कहै आवागमन नसावे। रहनी विना सव कहनी कांची, विनु भोजन कभु भूख न जावे ॥ वेटी वेटा चेली चेला, मोह जाल कहँ जानि वढावे घर छोडे मठकी करै आशा, पूरण व्याधि कहँ सीस चढावे ॥ २० ॥

शब्द २१-गुरुजी तेरो भजन भरोसोभारी ॥टे०॥ शरणागतकी बाँह गहतहौ, भवसे पार उतारी ॥

बडे २ अपराधी तारे, हिंदूतुरुक नर नारी ॥ गुण औगुण एकौ नहिं जानत, हौं पशु मूरख अनारी ॥ जगसे भागि आये तुम शरण, पूरण दीन भिखारी ॥ २१ ॥

शब्द २२--मेरो मन वैरागी आज । बसिये साहब चरन ॥ टे० ॥ चरण प्रताप महा अघ नाशत मेटत जनम मरण ॥ दुख दारिद्र विनाशक गुरुपद, होय रहो अशरन शरन ॥ परख परकाशी सब सुखराशी, जीवन मुक्ति करन । सबहिनके सुखदाई पूरन, सहाइ भव भय रोग हरन ॥ २२ ॥

शब्द २३--होय रहु साहब शरण, मन छाडि जगतकी आस॥टे०॥जग आशा औ स्वर्गकी वासा, यही कालकी फाँस ॥ नर नारी औ माल खजाना, छाडु आयुर्वल गांस ॥ सुन्दर तन अरु सुन्दर जग यह, सब सुपनेको भास ॥ पूरण पारख जौलौं नहिं पावे, तौलो भरम विलास ॥ २३ ॥

शब्द २४–भजुरे मन सद्गुरु कृपालको नाम ॥ टे० ॥ नाम प्रताप अटलितिहुँ लोकमें,सब विधि मङ्गल धाम ॥ और नहीं कहुँ जाऊं महा प्रभु,लागि रहो निशिजाम॥ नाम रटन जिन जगमें कीना, ते पाये विश्राम ॥ नाम असंग सकल सुख दाता, करि हैं पूरण काम ॥ २४ ॥

शब्द २५–(रागपिस्ता) जायके सनमसे कहियो मेरी वात । वेगि खवरिया लीजे अव जान निकरी जात । जाय सनमसे ॥ टे० ॥ तेरे विरहके मारे मोहिं नीन्द न आवे । नयनोंने झरि लाई जीव चैन नहिं पावे ॥ एक राहके दरियाव बूड़ा है मेरा मन । एक वक्त गश्त आवता जाता विसर तन ॥ सुरता सहेली जायके तूने कहना अहवाल । वेगिसे दर्श दीजै दासु होत है विहाल ॥ सुख निधान समरत्थ सव सुखको बीज है । तेरी शरणमें आयके पूरण अजीज है ॥ २५ ॥

शब्द २६–प्रभु विनु दुख नरको कौन हरे ॥ ॥टेक॥जहँ जहँ कष्ट पडत दासनको तहँ तहँसाहव होत खरे ॥ गर्व करै तो मरी ढरकावे होत अधीन तौ फेरि भरे॥भाव भक्तिके सदा समीपी दम्भ पाखण्डते रहे परे ॥ दीन दयाल विरह है जाको, ताको पूरण ध्यान धरे ॥ २६ ॥

शब्द२७–सुनिय दयानिधि अरजदासकी । कृपा किये वहु भर्म मिटाये, शंका रही न गरभवासकी ॥ वडे भाग मैं आपन जान्यो, आयपरयो प्रभु चरण खासकी॥ देह अनित्य कहा अब मानो,नाश होयगी रक्त मांसकी ॥ यहि जगतकी मोह कहाँ वढावई, कहा कथा जडवांम भासकी ॥ रिद्धि सिद्धि और मान वडाई,मनमें इच्छा नहिं तासुकी ॥ अमृत भोजन पाय अघाय पुनि कस इच्छा होत वासकी ॥ यह संशय मेरे मन आई,मेटहु साहव कठिन फांसकी ॥ परख विलासी सव सुखराशी, जानत हौ सव जीव पासकी ॥

काहछिपा तुमसे कहे पूरन, टेक निवाहो मोर आसकी ॥ २७ ॥

शब्द २८—तुमविनु समरत्थ कौन रखवारा ॥ जीवनको दुख मेटन हारा ॥टेक॥ जव जव कष्ट परत दासनपर, होत विहाल जीव करत पुकारा ॥ धारिदेह तुरत तहां प्रगटत, दुख द्वन्द्वज सव दूरि विडारा ॥ कियऊ सुखी निज दासन लागि, काहे उपेक्षा कीन्ह हमारा ॥ पूत कपूत लाज जनिताको, शरणपरे निर्वाह विचारा ॥ करुणामय कवीर गोसाईं, दीन दयाल विरद अति धारा ॥ दीन जानि अव दाया कीजे, आनि गह्यो अव शरण तुम्हारा ॥ जगमें कछु न मोर अधिकाई, साहव शिर सेवकको भारा ॥ पूरण दुखित होय जो समरत्थ । तौ लाजत सव विरद तुम्हारा ॥ २८ ॥

शब्द २९—याहीते प्रभु नाम दातारा, सेवक पुरावन हारा ॥ टेक ॥ हीन दीन अति दीन

भयो तव, याचक आयके कीन्ह पुकारा ॥ जो नहिं आश पुराओ ताकी, तौ लाजतहै विरद तुम्हारा ॥ हम ऐसे याचक तुम्हरै घनेरे, मेरे तो एक तुमहि अधारा ॥ तजव प्रान जो याचत तुमसो, तव हम जाव कवनके द्वारा ॥ हंसन नायक सव सुखदायक, सुनिके अरज भली चित धारा ॥ जो नहिं हमरी वांछा पुराओ, तो हंसि हैं सकलो संसारा ॥ जाके सेवक होत विकल अति, ताके साहव कस कल धारा ॥ पूरण याहि अन्देशा मोही, जानि बूझिके सहत विसारा ॥ २९ ॥

शब्द ३०—तुम विनु अरज करौं केहि आगे । स्वर्ग मृत्यु पाताल लोक लौ, असको जो मोहि करत सुभागे ॥ टे० ॥ करुणामय कवीर कृपानिधि, साधु सन्त गावत सव जांगे ॥ कि प्रभु अजर अमर अविनाशी, सुमिरत जाहि सकल दुख भागे ॥ याहिते मोहि भरोसा आवत, औ प्रतीति भई वहु जागे ।

अबकीबार कस विलम्ब कियो है, यह अचरज मनमें अति लागे ॥ तुम सब लायक हो सुख दायक, अचरज करत मोरे मन पागे ॥ चाहो तो आपनो टेक निबाहो, नाहीं तो हम बने हैं नागे ॥ पूरण अचरज करत सुख साईं, तुम कीरति मोको हितलागे ॥ इतनी विनय मानहु मोरी, जो मम सुरति निशाना दागे ॥ ३० ॥

शब्द ३१–कृपादृष्टि कब हेरो गुरुजी कृपादृष्टि कब हेरो॥टे०॥ तुम अस समरत्थ शिर पर राजत, दुख पावत है चेरो ॥ सब लायक प्रभु हो सुख दायक, मम अपराध घनेरो ॥ क्षमो अपराध दयाके सागर, आय परे शरण अब तेरो ॥ पूरनकी यह अरज दयानिधि, चरणन देहु बसेरो ॥ ३१ ॥

शब्द ३२–कभी तोभी दरस दिखाओ गुरुजी मोको, कभी तोभी ॥ टे० ॥ चात्रिकवत मैं पंथ निहारों, स्वातीह्वैके छुडाओ । जिमि चकोर चन्दा-

तन चितवत, और नहीं चित भावो ॥ तुम्हरे दरसं विनु अति विहाल जिय, मिलत न परख परभावो॥ पूरणके साहब सुख दाता, विनवत हैं गहि-पावों ॥ ३२ ॥

शब्द ३३—लीलाप्रभु तुम्हारी कही न जाय ॥ टे० ॥ राई सो पर्वत करि डारत, पर्वत राई तुल्य दिखाय ॥ सुर नर मुनि सब खोजत हारे, कृपा मात्रमें सो परखाय ॥ जो पद इन्द्रादिक नहिं पावत, सो पद माँहि दास बैठाय ॥ साहब कबीर जीवन सुखदाता, पूरण निज पदमाँहि रहाय॥३३॥

शब्द ३४—मिलेहैं दयाल कृतारथ भये हम ॥टे०॥ शब्द लखाये कियो प्रभु मेरे, निजकरते डारी उरमाल ॥ धोखा द्वन्द सबै मिटि गयऊ, टूटि गयो सब जमको जाल ॥ स्वर्ग मोक्षकी आशा नाहीं, पारख पाय भयेहैं निहाल ॥ पूरण प्रकाश और नहिं आशा, सर्वत्र दयाल बन्दीछोर कृपाल ॥ ३४ ॥

शब्द ३५—मनहर लीन्हों सत्य कबीर ॥ मन० ॥ टेक ॥ लोग कहत जगमई है बावरी, कोई न बूझत पीर ॥ गावन नाचन कछुओ नहिं भावे, व्याकुल भयो है शरीर ॥ बहु विचार केतिक समझाऊँ, जियरा धरत न धीर ॥ पूरन सुख प्रभु आप विराजे, पञ्चकोशके तीर ॥ ३५ ॥

शब्द ३६—मन हर लीन्हो दीन दयाल, जीवनके रक्षपाल ॥ टे० ॥ कहौं कहा मोहि कल न परत है, अन्तर होत बिहाल ॥ सुख सम्पति मोहि कछुवो न सुहावै, लोग कुटुम्ब यमजाल ॥ तनकी सुधि बुधि सबही विसरी, जब दीन्हीं उरमाल ॥ पूरण सुख जे पूर रह्यो है, कहाकरे भर्म काल ॥ ३६ ॥

शब्द ३७—गुनी अगुनो हौं तिहारो प्रभुजी, गुनी० ॥ टे० ॥ पुत्र अजान करतु है औगुण, तोहु पिताको प्यारो ॥ जो मम औगुण लखहू साहब,

तौ सब विधि हम हारौ॥ मिहर करहु जो दास जानिके, तौ हम जग निस्तारो॥ विरदकी लाज राखु प्रभु मोर, पूरणदीन विचारौ॥ ३७॥

शब्द ३८–हमारी लाज तुम्हारे हाथ, गुरुनाथ के नाथ॥ ह०॥टे०॥ खर्ची खुटगई वर्षा आई, देश वुरो गुजरात॥ तुम विन कौन हमारो वाली, जो अब करत सनाथ॥ तेरे नामको भरोसा मोको और न कोई संग सगात॥ लेहु खवरि कवीर कृपानिधि, पूरण नावज माथ॥ ३८॥

शब्द ३९–तुम विन कौन हमारो देश, कठिन कालको वेप॥ टे०॥ जोरे मिला सो अपनी गरजको, राजा रंक नरेश॥ हमरे तो गुरु तुमहिं अधारा, दीन दयाल घरेश॥ वेग खवरि लेहु प्रभु आई, दुचित भयो जिय रेश॥ निजदास प्रतिपालन करत प्रभु, साहव कवीर दुर्वेश॥ ३९॥

शब्द ४०-गुरु तेरे दर्शनकी बलिहारी । गु० ॥ ॥ टे० ॥ तुम्हरे दरसते कष्ट हरत है, करम मिटत है भारी ॥ सन्त स्वरूपी आप कृपानिधि, खोलत भ्रम किवारी ॥ जिन्हें दरस सुख दियो दयानिधि, आवा गमन निवारी ॥ सुख स्वरूप कबीर कृपानिधि, पूरण पारख विहारी ॥ ४० ॥

शब्द ४१-तुम बिनु कौन खबरिया मोरि लेवे ॥ टे० ॥ देश विराना कोइ नहि आपन, कौन सेवकको सेवे ॥ मेरे तो सतगुरु एक अधारा, जो चाहौ सो देवै ॥ यह जग सबही द्वन्द्व पसारा, कैसे नवरिया खेवै ॥ परख विलास कबीर कृपानिधि, पूरण जानत भेवै ॥ ४१ ॥

राग बिलावल ।

शब्द ४२-तुमहौ सतगुरु दाता मेरे, मैं अधीन चरननके चेरे ॥ टे० ॥ तुमको माँगे तुमको जाचे,

निशिदिन रहत चरनके नेरे ॥ चरण छाडि अनते नहिं जावें, जैसा भँवर कमलको घेरे ॥ तुमरो ज्ञान ध्यान जप तुमरो, तुम तजि औरे तन नहिं हेरे ॥ जिमि पतिव्रता पतिव्रत ठाने, आज्ञा जुगवे सांझ सवेरे ॥ हरि हर ब्रह्मा आदिदे देवा, रिद्धि सिद्धि दातार घनेरे ॥ हमको नहीं इन सवते काजा, एक तुम्हारी दयाके मेरे ॥ वेगि खबर लेहु करुणामय, काहेको अन्त लेत प्रभु मेरे ॥ तुमही जानक तुमहीं प्रेरक, तुम कबीर हौ सुखके डेरे ॥ ४२ ॥

शब्द ४३—सबके जनैयाको कहा जनैये, जानतही सकलो सुख पैये ॥ टे० ॥ तनकी मनकी सकल लोककी, जाननहारसो कहा छिपैये ॥ निर्मल संगति करहु संतकी । निर्मल होयके निर्मल समुझैये ॥ जो जानत तिहुँ लोक रैन दिन, ता साहबको कहाजनैये । जाग्रत सुषोति तुरिया, तुरियातीत नहिं जहँ पैये ॥

वाच्य लक्ष मनकी चतुराई, जहाँ नाहिं तहँ कैसे कि जैये ॥ बिनु परख कछु जानि परै नाहिं, उनकी कृपा बिनु परख न पैये ॥ हौं लाचार सकल विधि साइब, विनय करो तोको चित लये ॥ सुख स्वरूप कबीर कृपानिधि, पूरनको मन ना भर्मैये ॥ ४३ ॥

शब्द ४४–वेगि खबरिया प्रभु लीजे दीन दयाला ॥ टे० ॥ आनि परयो परदेशमें, देख्यो यमको जाला ॥ इहाँ न कोई आपनो, तुम बिनु रक्षपाला ॥ मोहि तो आधार तेरे नामको, हौ दासन प्रतिपाला ॥ अब कछु विलम्ब न कीजिये, जीव भये हैं विहाला ॥ हौ गुणी औगुणी पर, तेरोई कहावत वाला ॥ जो तुम खबरि न लेहु, तौ मम कौन हवाला ॥ साहब कबीर सुखके राशी, हौ करुणाके आला ॥ सुनियो अरज निज दासकी, अब करिये निहाला ॥ ४४ ॥

शब्द ४५—अपने हम भोगे निज भोग ॥ टे० ॥
जानि बूझि कैसे अन्त लेहौ, यह नहिं तुमको योग॥ जगमें दास कहाये तुम्हारे, लागयो भयेको रोग ॥ अस समरत्थके शरन आयके, छूट्यो नहीं मम सोग ॥ साहब कबीर विरदके पालक, हँसन लागेंगे लोग ॥ ४५ ॥

शब्द ४६—करुणामय नाम तिहारो ॥ टे० ॥
निठुर भये कछु काज न सरि हैं, आवत विरदको हारो ॥ जग हँसिहै तव कहाँ बडाई, ताते वेगि सम्हारो ॥ तुमरी शरण आयऊँ मैं साहब, और न कोई सहारो ॥ साहब कबीर दया अब कीजै, पूरण आइ पुकारो ॥ ४६ ॥

शब्द ४७—दीननके हो दयाल दया जनपै करो ॥ शरण आयेकी लाज गई, प्रभू अस जनि

करो ॥ दशहुँ द्वार विकार धार नौका बहे, सुरति नहिं ठहराय लगन कैसे लगे ॥ पाँचतत्त्व गुणतीन साज सब सांजिया, याते रहे भुलाय तो फन्द फँदे ॥ त्रिगुण मायाके फन्द फँदी जिव आइके, गहु साधनको संग गुरु ते लौलायके ॥ मोक्ष मुक्ति जब होय दया दिल आवई । परिपूरण कारि देवमहासुख पावई ॥ साहब कबीर बन्दी छोर अरज एक माखिये । हमसे अधम उधार शरण प्रभु राखिये ॥ ४७ ॥

आराधना (गद्यमय)

हे सत्यपुरुष ! आपकीहीं सत्तासे सर्व जड चैतन्य स्थित है सर्वके जीवन आपही हो । आपके अतिरिक्त जो कुछ गुप्त परगट है, नाशमान,

असत्य और अनित्यहै, एक आपही सत्य और अविनाशी हौ ।

हे सत्यसुकृत ! आपके अतिरिक्त जितनी कीर्तिहै सब क्षणिक और मायिकहै । सब कीर्ति आपके अतिरिक्त कालने रचे है और काल स्वयम् नाश होनेवाला है इस कारण आपकीही कीर्त्ति सत्य और नित्यहै ।

हे आदि अदली ! आपकाही नियम सत्य और सुखदायकहै, आपकाही नियम सर्वसे पूर्व प्रकाशित होता है । उसीके सहारे सत्य आनन्दकी प्राप्ति होती है ।

हे अजर ! आपको जरा नहींहै अर्थात् आप जन्म मरण और उसके मध्यकी बाल किशोर युवा प्रौढ और वृद्धावस्थासे परे सदा एक समानंही रहनेवाले हे ।

हे अमर ! आप कालके जालसे छुडाकर अपने हंसोंको अमर करते हौ । स्वयम् कालभी आपसे भय करता है ।

हे अचिन्त ! आप शुद्ध आनन्द स्वरूप हौ, चिन्ताका आपसे कोई सम्बन्ध नहीं, तथापि हम जैसे दीनोंकी सहायताकी चिन्ता आप सदाही करते हो ।

हे पुरुष ! आप यद्यपि सर्वत्र एक समान स्थित हो तथापि सच्चे सन्त, सच्चे भक्त, सच्चे हंस और सच्चे पारखियोंके हृदयमें आपका विशेष प्रकाश प्रगट होता है ।

हे मुनीन्द्र ! सत्य सुकृत स्वरूपसे आप सदाचारका उपदेश देकर मुनीन्द्र स्वरूपसे सत्यासत्य सारासारके मननका मार्ग बताते हो ।

प्रकारके मनन करने पर भी जब यह जीव कालके जालसे नहीं निकल सका, तब आप करुणामय स्वरूपसे पारखका मार्ग बतलानेको टंकसारकी प्रवृत्ति कराते हौ । और जब टंकसारद्वारा अन्तःकरण शुद्ध होजाता है तब आप साक्षात् सत्यकबीरके स्वरूपसे प्रत्यक्ष पारख बतलाकर कालजालसे छुडा देते हो ।

हे बन्दीछोर ! आप वारम्वार कहते हो पुकार२ कर जतलातेहो कि, तुम्हारी शरण विना हमारा ठिकाना कहीं भी नहीं है, जिस समय आपका शरण प्राप्त होता है उसी समय कालसे तिनका टूट जाती है । ऐसी सर्व सुखदाई शरणको भी पाकर—

हे अधमउधारण ! हम ऐसे अधम हैं कि, आपका शरण नहीं पकडते । वरन् केवल मुखसे बातें बना-

कर दम्भसे अपनेको आपका दास कहते कहलाते हैं परन्तु दासपनका नियमतक नहीं जानते ॥

हे दीननाथ ! आपही सबके सहायक हो हम दीन और अनाथहैं जिसको नाथ करके पकडतेहैं वे सभी स्वयम् आपके शरणकी अभिलाषा रखते हैं इस कारण हे प्रभु ! आपही सत्यनाथ हो, आपको छोड कहां जाऊँ ।

हे ज्ञानमय चैतन्य पुरुष ! आपकीही अस्तित्वसे सर्व जड चैतन्य भासमान होरहाहै, सबकी कुञ्जी आपहीके हाथमें है । कालभी आपके डरसे डरताहै । सर्व ब्रह्मांड आपकी ही आज्ञा पालन करते हैं। जब आप कालके प्रभु हो तब हमारा आपके अतिरिक्त दूसरा क्या सहारा है ।

हे निर्भय ! जबतक आपका सत्य-पारख मेरे हृदयमें वास नहीं करेता तबतक हम कालके कर-

तूतोंको जान नहीं सके। जबतक उसे जानकर हम उससे अलग नहीं होते तबतक आपकी आज्ञाओंका विरोध करतेहैं, तभीतक हमको सर्व प्रकारका भय प्राप्त होता है। परन्तु आप जब दया करोगे तभी सर्व भयसे छुडाकर निर्भय करदोगे॥

हे आनन्दसिन्धु! जब तक हमारी ज्ञानशक्तिमें आपके पारखका प्रकाश नहीं होता तबतक हम आपके सत्यस्वरूपको किसप्रकार जानसकें। जब आप दया करोगे अपनी सारासार विचारिणी ज्ञानशक्तिको प्रेरणकर मुझे अपने शरणमें लोगे तभी आपकी आज्ञानुसार कालके जालको परखकर आपकी शरणसे निराश नहीं होंगे॥

हे सत्यसिन्धु! ऐसी कृपा करो जिससे कि, सर्व असत्यसे छूट कर आपकोही प्राप्तहो जाऊँ।

हे प्रेममयी! अपने कृपाकटाक्ष द्वारा ऐसी दया करो कि, आपके सत्यप्रेममें मग्न होजाऊँ ।

हे अमृतमयी ! ऐसी दया करो जिसमें आपकी अमृतरूपी आज्ञाओं पर चलनेकी हममें शक्ति हो ।

हे शांतिनिकेतन ! आपकी कृपाके अतिरिक्त हम उस सौभाग्यताको कैसे प्राप्त हो सकेंगे जो आपके सच्चे दासको प्राप्त होताहै । हम कैसे भी हैं परन्तु अबतो आपके कहलातेहैं, यदि हमको सत्य शान्ति प्रदान न करोगे तो आपकीही विरह लज्जायमान होगी ।

हेपुण्यमयी ! हे सच्चे भ्राता ! हमको ऐसी सुमति दो जिससे परस्परके विद्वेषको त्यागकर आपकी सेवा में लगजावें ।

हे हंसननायक ! भपने ऐसे हंसोंकी संगति मुझे प्रदान करो जिससे आपके अतिरिक्त दूसरेकी वासना हृदयसे उठजावे ।

हे सत्य ! असत्यसे बचाकर सर्वदा सत्यकी ओर लेजाओ ।

अविश्वासकी जालसे निकालकर विश्वास और श्रद्धाको प्राप्त करा दो । अप्रेमसे बचाकर प्रेममयी देशमें पहुँचादो. अपवित्रतासे निकालकर पवित्रताको दिखादो । स्वेच्छाचारीपणासे निकालकर, अत्याचारसे छुडाकर तुम्हारी इच्छा और आज्ञाके अधीन करके सदाचारी बनादो ।

हे कल्याणमयी ! अकल्याणके मार्गसे हटाकर कल्य.ण की राह दिखादो ।

हे सत्यगुरु ! अंधकारमय देशसे उठाकर प्रकाशमय देशमें डालदो ।

हे सत्याचार्य्य ! आपके सत्य धर्म्म सत्यपंथ और आपके स्थापित आचार्य्यमें ऐसीश्रद्धा दो जिस्से अवनतिके भवनसे निकलकर सत्योन्नतिकी सडकपर चढजाऊँ ।

हमलोगोंको ऐसा उत्साह और ऐसी उत्कंठा दो जिस्से आपकी आज्ञाओंको पूर्ण करने, आपके स्थापित सत्यधर्म्मको फैलाने, आपके सत्यराजकी महिमा प्रगट कर अपनी तथा और दुखियोंकी आत्माको कालजालसे बचानेमें समर्थ होवें ।
शांतिः शांतिः शांतिः ।

सत्य कबीरो जयति ॥

॥ इति एकादश विश्राम ॥

मकनजी कुबेर पेन्टर,

कबीर पंथी द्वारा प्रकाशित ।

क[illegible]ीरोपासनापद्धतिः समाप्तेयम् ॥

पुस्तक इसके समान दूसरी नहीं है।
इसमें सुमिरण, स्तोत्र, अर्जनामा, आरजी
संज्ञा, चिंतावनी, ज्ञानगुदरी, दयासा-
गर आदि सैकडों विषय हैं। अन्तमें
पूर्णसाहबकृत विनयके शब्द दिये हैं) १)

कबीर कसौटी-(कबीर साहिका जीवन
चरित्र बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थहै) .... ।=)

कबीरैकोत्तरशतक सटीक-इसमें "कबीर"
नामकी महिमाको महादेव पार्वतीके
सम्वादमें १०१ श्लोक दिये हैं जिसपर
अखयरामने घनाक्षरी छन्दमें भाषा
टीका की है। यह ग्रन्थ कबीर पन्थि-
योंका प्राण समान है .... ।-)

हंसमुक्तावली सटीक विवेकसागर सहित.... २)